1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-6, अंक-3, दिसम्बर-जनवरी 2023, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सफलता के पथ पर निरंतर अग्रसर
सार्थक 26 वाँ वर्ष...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

सांस्कृतिक अनुष्ठान का विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय

25 वर्षों के महत्वपूर्ण विशेषांक...

सांस्कृतिक धड़कनों का जीवंत दस्तावेज

सभी विशेषांक कला समय की वेबसाईट www.kalasamaymagazine.com पर देखे व पढ़े जा सकते हैं।

सांस्कृतिक यात्रा का 26 वाँ वर्ष...

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+06=26) पूर्णांक-120

वर्ष-6, अंक-3, दिसम्बर 2022-जनवरी-2023, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

रेखांकन : सिद्धेश्वर

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
अरुण तिवारी
समसामयिक
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

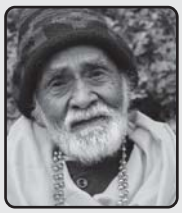
आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

प्रो. आनंदकुमार सिंह

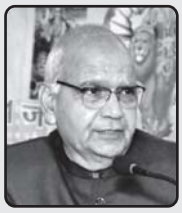
डॉ. धर्मेन्द्र सरल शर्मा

लक्ष्मीनारायण पयोधि

कैलाश चंद्र घनश्याम पांडेय

डॉ. सुमन चौरे

अश्वनी कुमार दुबे

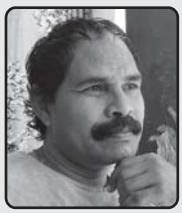
चेतन औदिच्य

मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश'

जगदीश कौशल

इस बार

- **संपादकीय** 05
  भारत के युग-पुरूष महान संत स्वामी विवेकानन्द
- **आलेख**
  सांची के शिल्प: मानवीय आस्था के पाषाणी साक्ष्य/नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 07
- **अद्वैत-विमर्श**
  शक्ति- उपासना और 'सौन्दर्यलहरी' / प्रो. आनंदकुमार सिंह 12
  आचार्य अभिनव गुप्त और उनका... / आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल 21
- **आलेख**
  गोकुल-संस्कृति / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 26
  क्रांतिकारियों का शहज़ादा:अशफ़ाक़-उल्ला खाँ / डॉ.धर्मेन्द्र सरल शर्मा 31
- **आदि संस्कृति**
  मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति / लक्ष्मीनारायण पयोधि 33
- **आलेख**
  दशपुर का ऐतिहासिक परिदृश्य / कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय 35
  सीप नदी का पानी: पानीदार मुक्ति बोध / मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश' 40
- **कला-अक्ष**
  कलाओं का उत्स-बिंदु / चेतन औदिच्य 43
- **आलेख**
  सूरियाभान - लोक का सूरज / डॉ. सुमन चौरे 45
- **मध्यांतर**
  कवि फ़ेदेरिको गार्सिया लोर्का की कविताएं/ मणि मोहन 51
  गीत : डॉ. वीरेन्द्र स्वर्णकार 'निर्झर' के नवगीत 52
  कविता : सदाशिव कौतुक की कविताएँ 53
  ग़ज़ल : महेश कटारे 'सुगम' की (त्रिपदी) गजलें 54
  कविता : राष्ट्रकवि श्रीकृष्ण सरल की कविता 55
- **आलेख**
  प्रवासी भारतवासी मिशन के सूत्रधार... /डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 56
- **सिनेमा**
  प्रकृति प्रेम और उनका दार्शनिक पक्ष / अश्वनी कुमार दुबे 58
- **पुस्तक समीक्षा**
  'बिन गाए गीत' - बहुआयामी लेखन का गद्य / सुरेखा गायकवाड़ 63
  महज़ आदमी के लिए (कविता संग्रह) / प्रो. डॉ. प्रभा मुजुमदार 65
  'इस दौर से गुजरते हुए' / डॉ. संध्या जैन 68
- **रंगमंच**
  रंगमंच यायावर ब.व. कारंत और भारत भवन / रघुवीर होल्ला 70
  ब.व. कारन्त का जीवन वृत्त और रंगमंच की सीख / रामवीर शर्मा 79
- **स्मृति शेष**
  डॉ. दीप्ति गेडाम परमार / सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' 82
- **सांस्कृतिक समाचार** 83

  आयोजन : स्व-रोजगार, उद्यमिता भारत के डीएनए में है: वित्त मंत्री श्रीमती सीतारमण/ डॉ. श्याम सुंदर दुबे को राष्ट्रीय कबीर सम्मान / प्रभा खेतान फाउंडेशन का कलम के 50वाँ सत्र का उत्सव / राग मल्हार उत्सव- बरखा ऋतु आई / मूर्धन्य गायक गुरु पंडित मणि प्रसाद जी को संगीतमय श्रद्धांजलि / उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी की नृत्य संगीत प्रतियोगिता धूमधाम से संपन्न

  समवेत : काव्य पुस्तक सूर्यांश का प्रयाण का लोकार्पण / कैलाश घनश्याम पाण्डेय द्वारा दिव्य दशपुर पुस्तक राज्यपाल मंगुभाई पटेल जी को भेंट / श्री राजेन्द्र गट्टानी की कृति 'एक पाव सच' का लोकार्पण / भालू मोंढे द्वारा कला समय के अक्षर ब्रह्म विशेषांक का लोकार्पण / रोहमिश संगीत संध्या सम्पन्न / भारतीय संस्कृति में पशु पक्षियों के प्रति दया रखने का संदेश: व्यास
- **संस्मरण**
  आधुनिक नाट्य कला के कर्मयोगी : हबीब तनवीर / जगदीश कौशल 92
- **समय की धरोहर**
  हबीब तनवीर 93

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र एवं अंतिम आवरण पेंटिंग** - डॉ. ममता रोकाना | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** सिद्धेश्वर
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

संपादकीय

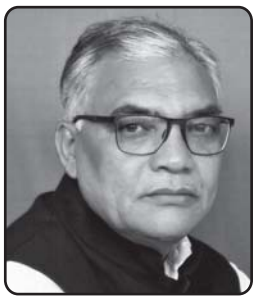

भारत के युग-पुरूष महान संत स्वामी विवेकानन्द

मेरे जीवन की निष्ठा तो मेरी इस मातृभूमि के प्रति अर्पित है, और यदि मुझे हजार जीवन भी प्राप्त हों तो प्रत्येक जीवन का प्रत्येक क्षण मेरे देशवासियों! मेरे मित्रो! मैं तुम्हारी सेवा में अर्पित करूँगा।

- स्वामी विवेकानन्द

भारत ही है! जिसने 'न भूतो न भविष्यति' और कर्म का दर्शन देकर समग्र मानव जाति के कल्याण का समाधान दिया। स्वामी विवेकानन्द जी की रग-रग में भारत भूमि के प्रति अटूट श्रद्धा और प्यार था। उन्होंने जिस प्रकार भारत-भूमि की प्रतिभा और योगदान का बखान विश्व के समक्ष किया, वह प्रचण्ड राष्ट्रभक्ति का अद्भुत उदाहरण था।

उन्होंने मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, के साथ दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव अर्थात अपने माता-पिता के साथ गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दुखियों को भी ईश्वर के तुल्य माना। वे मानते थे कि देश का बल युवाओं की ऊर्जा में है। स्वामी जी का विश्वास नौजवानों पर था तभी तो वे कहा करते थे- यदि उन्हें वीर हृदय विश्वासी, चरित्रवान, बुद्धिमान युवक मिल जाएं तो वे भारत माँ की तकदीर पलट सकते हैं। स्वामी जी ''माँ शक्ति'' के उपासक थे। उनका पूर्ण विश्वास था कि मातृशक्ति जीवन को संचालित कर रही है। मगर स्वामीजी हिन्दुस्तान के एकमात्र धार्मिक वाङ्मय सन्यासी थे जिन्होंने चमत्कारों का सहारा कभी नहीं लिया। संपूर्ण विवेकानंद साहित्य में ऐसा कोई वाक्य नहीं होगा,जब उन्होंने किसी समस्या के लिए किसी चमत्कार की व्याख्या की हो। यह विश्व मानवता के बौद्धिक, धार्मिक विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। 1881 में नरेन्द्र कोलकाता में छात्र थे। उनके प्राध्यापक श्री हेस्टी ने समाधि के संदर्भ में समझाते हुए कहा था कि जब विशुद्ध मन किसी विशेष विषय पर एकाग्र होता है, तब ऐसे अनुभव होते है। ऐसे अनुभव आधुनिक युग में विरल है। मैंने केवल एक ही व्यक्ति देखा है जिसने इस दिव्य आनंद पूर्ण मानसिक अवस्था का अनुभव किया। वे है दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण परमहंस। यदि तुम वहां जाकर स्वयं देखोगे तो समझ सकोगे। बाद में श्री रामकृष्ण परमहंस ही नरेन्द्र के दिव्य गुरु बने। अपनी महासमाधि के तीन-चार दिन पूर्व श्री रामकृष्ण जी ने अपनी दिव्य शक्ति अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्र में प्रविष्ट कर दी और कहा ''इस शक्ति के द्वारा तुमसे महान कार्य होंगे।''

स्वामी विवेकानन्द का साहित्य सर्वविदित है कि स्वामीजी के लिए उनका स्वदेश सर्वोपरि था। उनकी सम्पूर्ण चेतना भारतमय थी। उनके प्राणों के अन्तर्तम् में भारत बसा हुआ था। यही नहीं वे स्वयं भारत थे। अपनी प्रखर एवं ओजस्वी वाणी से उद्घोषित दिव्य संदेशों के रूप में वह विश्व पुरूष अपनी उत्प्रेरणाओं का विशाल भण्डार लिए हुए आज भी हमारे बीच है।

स्वामीजी के ही शब्दों में -''अगर मैंने विश्व के किसी भी कोने में सत्य या अध्यात्म के एक भी शब्द का उच्चरण किया है तो उसका श्रेय मेरे गुरु को ही है और अगर मैंने कोई भूल की है तो वह मेरी है। यदि मैंने कभी मनसा, वाचा, कर्मणा, किसी भी चीज की उपलब्धि की है, यदि मेरे मुँह से कभी एक भी शब्द निकला है जिससे संसार में किसी को लाभ हुआ हो तो इस सबके प्रति मैं यही कहूँगा, इसमें मेरा कुछ

नहीं है, सब कुछ उन्हीं का रहा है।

''सानन्द वायुमण्डल को बस एक गूँज से भर दो- ऊँ तत् सत् ऊँ''।

'कला समय' का यह ''26वाँ वर्ष का ''120वाँ विशेषांक'' कई मायनों में अद्भुत है। इस बार का अद्वैत-विमर्श स्तम्भ के लेखक प्रो. आनंदकुमार सिंह जिन्होंने ''शक्ति उपासना और सौन्दर्य लहरी'' पर अपना आलेख डूब कर लिखा है। साथ ही ''अद्वैत शैव आचार्य अभिनव गुप्त'' पर आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल जी का महत्वपूर्ण आलेख भी ससम्मान प्रकाशित कर रहे हैं। इसी अंक के और विद्वान रचनाधर्मी विख्यात साहित्यकार डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी जी जिनके दो आलेख ''गोकुल संस्कृति'' और ''प्रवासी भारतवासी मिशन के सूत्रधार पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी'' पर महत्वपूर्ण आलेख भी इस अंक की उपलब्धि है। ''क्रांतिकारियों का शहजादा अशफाक उल्ला'' पर बहुत सारगर्भित आलेख डॉ. धर्मेन्द सरल शर्मा जी एवं ''सीप नदी का पानी : पानीदार मुक्तिबोध'' पर वरिष्ठ कवि, गीतकार, संपादक श्री मुरारीलाल गुप्त ''गीतेश'' का आलेख भी पठनीय है। इसी के साथ नियमित स्तम्भों में गीत, ग़ज़ल, पुस्तक समीक्षा के साथ रंगमंच पर विशेष सामग्री 'कला समय' के पाठकों के लिए रूचिकर होगा।

जैसा कि आप जानते ही है कि 'कला समय' के संरक्षक, मार्गदर्शक परम आदरणीय मेरे गुरु श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी का विशेष आलेख हमें निरन्तर कृपापूर्वक प्राप्त होता ही है जिसकी प्रतिक्रिया हमें पाठकों से लगातार मिलती है।

''समय की धरोहर'' स्तंभ में संगीतकारों, कलाकारों के संस्मरण एवं जीवनी वरिष्ठ छायाकार श्री जगदीश कौशल जी द्वारा समय-समय पर उनके द्वारा खींचे गये दुर्लभ छाया चित्रों से युवापीढ़ी की समझ पुष्ट हुई है। इससे पत्रिका का गौरव भी युवा और वरिष्ठ पीढ़ियों में बढ़ा है। ''मध्यान्तर'' में भाषान्तर स्तंभ के वरिष्ठ कवि श्री मणिमोहन जी हमें विश्व कविता के चर्चित कवियों का अनुवाद कर ''हिन्दी'' में उपलब्ध कराते है। उनकी समय पाबंदी के हम कायल है हम उनके प्रति भी कृतज्ञ है। यह अवसर भी है, 'कला समय' पत्रिका के 25 वर्षों की यात्रा पूर्ण होने पर यह हमारे रचनाकार, स्तंभकार, विद्वानों की कृतज्ञता ज्ञापित करने का। आप सबने मिलकर अपने रचनात्मक सहयोग से 'कला समय' को देश के बुद्धिजीवियों में एक विशिष्ट पहचान दिलाई है। हम सभी ऐसे रचनाधर्मी साहित्यकारों के शुभचिंतकों के प्रति आभारी है।

हमें बताते हुए हर्ष है कि ''कला समय'' में जनजातीय संगीत और चित्रकला के नये स्तंभ की भी शुरूआत कर रहे है। इन तीनों स्तंभों के विषय विशेषज्ञ सर्वश्री लक्ष्मीनारायण पयोधि, जो जनजातीय शब्दकोण और विषय के विद्वान लेखक है। ''संगीत'' पर 'संगीत' पत्रिका जो पिछले 88 वर्षों से हाथरस (उ.प्र.) से प्रकाशित हो रही है, इसके संपादक डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल जी ''संगीत'' स्तंभ के लेखक होंगे तथा चित्रकला स्तंभ के लिए वरिष्ठ चित्रकार चैतन औदिच्य ने भी कृपापूर्वक अपनी सहमति प्रदान की है। अपने नये स्तंभ 'आदि संस्कृति' श्री पयोधि जी एवं औदिच्य जी ने 'कला-अक्ष' इस अंक से स्तंभ की शुरूआत कर पत्रिका का मान बढ़ाया, निश्चित ही इन विद्वानों द्वारा दिया गया रचनात्मक योगदान हमारे सुधी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

आप सभी सुधी पाठकों एवं लेखकों को गणतंत्र दिवस एवं बसंत पंचमी की अशेष मंगलकामनाओं सहित यह अंक आपकी प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा के साथ सादर।

- भँवरलाल श्रीवास

■

आलेख

सांची के शिल्प: मानवीय आस्था के पाषाणी साक्ष्य

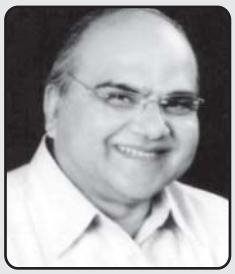

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

यदि रौशनी नहीं बोलती तो बुद्ध क्यों बोलते ? बुद्ध उजास के बोल हैं। उजाले की पहिचान बुद्ध से बनती है इसलिए बुद्ध देह नहीं दीप्ति हैं। यह अलग बात है कि हमने दीप्ति की पहिचान एक ऐसी देह के रूप में कर ली जिसके ओठों पर खेलते स्मित और आंखों से बरसती करुणा हमारी आंखों से कभी ओझल नहीं होती। लेकिन यह भी हुआ कि बुद्ध का अनुभव देह से नहीं प्रतीक से हुआ। जब बुद्ध धर्म दो भागों में विभक्त हुआ तो हीनयान संप्रदाय के अनुयायियों ने बुद्ध को प्रतीकों में ढाल दिया। कहीं हाथ, कहीं कमल तो कहीं पदचिन्हों में बुद्ध देखे जाने लगे। स्तूप भी बुद्ध के स्वरूप बन गए।

सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता फर्गुसन ने बौद्ध स्मारकों को पांच भागों में बांटा है। लाट, स्तूप, रेल्स अर्थात पत्थर के ऐसे घेरे जो स्तूपों के चारों ओर बनाए जाते थे, जिन पर बारीक़ नक़्क़ाशी का कार्य किया जाता था इन्हें प्रदक्षिणा पथ भी कहा जाता है, चैत्य अर्थात प्रार्थना मंदिर व विहार अर्थात बौद्ध सन्यासियों के रहने के स्थान। इनमें सर्वाधिक निर्माण स्तूपों के हुए।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके पार्थिव शरीर के अवशेषों को आठ भागों में बांटकर आठ स्थानों में संरक्षित किया गया। इनमें उनके प्रिय शिष्यों के पार्थिव शरीरों के भी अवशेष रखे गए। स्तूपों के आकार भी आठ प्रकार के बनाए गए जो बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग के प्रतीक थे। ये अवशेष पुन: विभाजित कर स्तूपों में संरक्षित किए गए। सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्तूप की अवधारणा के पीछे का दर्शन समझाते हुए यह कहा कि पानी में उठने वाले बुलबुलों की तरह मनुष्य जीवन नश्वर समझा गया है। इसी जीवन की नश्वरता का स्मरण कराने के लिए बौद्धों ने जितने स्तूप बनवाए वे सब बुलबुलों की शक़्ल के बनवाए।

कहा जाता है कि अशोक ने 84 हजार स्तूप बनवाए लेकिन यह अतिरंजना है। तथ्य यही है कि स्तूप बुद्ध के महापरिनिर्वाण के प्रतीक के रूप में बड़ी संख्या में निर्मित किए गए। आरंभ में लकड़ी के आकार बनाए जाते थे तथा बाद में ठोस पत्थरों को इन आकारों के आधार पर स्तूप के रूप में मूर्त कर दिया जाता था। कार्ले, कान्हेरी और बेदसा के आरंभिक स्तूप इसके उदाहरण हैं। यह स्तूप पूरे भारत में बने। जग्यापेठा, भट्टीप्रोलू और गृन्थसाला जैसे दक्षिण भारत के स्थानों में मनोहारी स्तूप निर्मित हुए। ये स्तूप गंगाघाटी से दक्षिण के दोनों छोरों तक निर्मित किए गए। अजंता की चित्रावली में स्तूप चित्रित है तथा वहां स्तूप भी निर्मित किए गए।

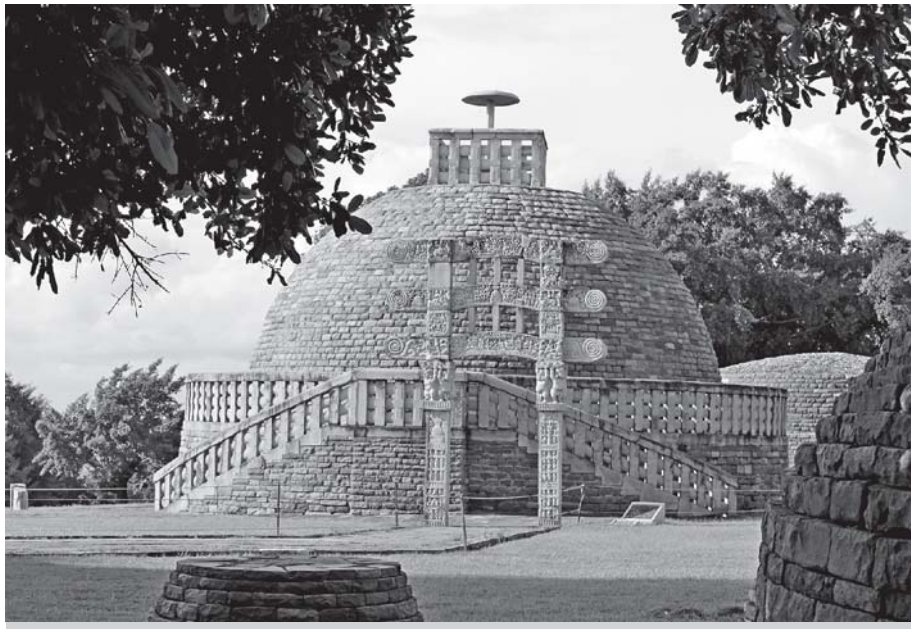

साँची-स्तूप क्रमांक-2

स्तूप मंदिर स्थापत्य की आधारशिला हैं। स्तूपों की

अवधारणा का विकास कालांतर में मंदिरों के रूप में हुआ और विशेष रूप से नागर शैली में गुप्तकाल से मंदिर बनने आरंभ हुए। सांची में भी गुप्तकालीन मंदिरों व एक मौर्यकालीन मंदिर के अवशेष मिले हैं।

सांची में उत्खनन के दौरान एक मंदिर (क्र. 40) मिला जिसकी योजना राजस्थान के बैराठ के मंदिर के प्राय: समान थी। पुराविदों का यह मानना है कि पत्थर से बने इस मंदिर की अर्द्ध गोलाई वाली योजना में इसके चारों ओर प्रदक्षिणा पथ भी था तथा यह मंदिर एक ऊँची आयताकार अधिष्ठान पर बनाया गया था तथा दोनों छोरों पर बनी सीढ़ियों से इसमें प्रवेश करना संभव था। समय के साथ अब बहुत परिवर्तनों के कारण इसकी मूल रूपरेखा में परिवर्तन हो गया है तथा लकड़ी की संरचना भी समाप्त हो गई है।

सांची में ही ईस्वी सन् 400 में निर्मित एक मंदिर (क्र. 17) मिला है। यह एक छोटा सा मंदिर है जिसमें लगाए गए पत्थर छोटे हैं लेकिन व्यवस्थित पंक्तियों में हैं। छत भी पृथक है वह इसलिए ताकि ड्योड़ी की ऊंचाई गर्भगृह की तुलना में कम हो। इस मंदिर में पानी की निकासी के लिए भी परनाले बनाए गए तथा चार स्तंभ निर्मित किए गए जिन पर सुंदर नक्काशी है।

एक अन्य मौर्यकालीन मंदिर (क्र. 18) पत्थर से बना हुआ व अर्द्धवृत्ताकार स्वरूप में निर्मित सांची में मिला जिसका आंतरिक भाग संभवत: लकड़ी से बनाया गया था। इस मंदिर का निर्माण ईसा पूर्व दूसरी सदी का है। भव्य स्तंभों और भित्ति स्तंभों वाले इस वृत्ताकार मंदिर के वर्तमान अवशेष काफी बाद की अवधि के लगभग सातवीं सदी के हैं तथा यह कहा जाता है कि इस मंदिर में मध्य काल तक पूजा अर्चना की जाती रही।

स्तूप शिल्प के आधार पर शारीरिक, पारिभोगिक, उद्देशिका और पूजावर्धक, इन चार आधारों पर वर्गीकृत किए गए। लेकिन ये प्राय: छोटे पत्थरों से ऐसे गोल स्मारक के रूप में निर्मित हुए जिनमें बुद्ध और उनके अनुयायियों की अस्थियां, बाल तथा दांतों को रखा गया। इनमें सांची अमरावती, भरहुत, नागार्जुनकोंडा, सारनाथ, पिपरहवा और गांधार के स्तूप प्रमुख स्तूप हैं।

वैसे तो जैन परम्परा में भी स्तूप निर्मित हुए किन्तु स्तूप की अवधारणा बौद्ध परम्परा की ही देन है। स्तूप को बुद्ध के निर्वाण का स्वरूप माना गया। उसके प्रमुख हिस्सों के रूप में वेदिका या रेलिंग बनाई गई ताकि उसकी सुरक्षा हो सके। एक मेधी या कुर्सी निर्मित की गई जिस पर स्तूप आधारित हो तथा एक गोलाकार हिस्सा निर्मित किया गया। स्तूप में रखी गई अस्थियों की सुरक्षा के लिए हर्मिका, धार्मिक चिन्ह के रूप में छत्र व उसे सहारा देने के लिए यष्टि व मेधि पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों के रूप में सोपान बनाए गए। इनमें सांची के स्तूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

सांची विदिशा से लगभग 9 कि.मी. दक्षिण पश्चिम में बीना और भोपाल के बीच अवस्थित है।

सांची के स्तूपों को विश्व धरोहर के रूप में सम्मिलित किया गया है। सांची के नामकरण के संबंध में विद्वानों का मत है कि सांची के प्रधान स्तूप की दक्षिण दिशा में स्तंभ पर प्राचीन पाली भाषा में 'शान्ति-सड्डम' खुदा हुआ है। इसे 'सन्तसड्घम' अथवा 'सन्ता-सड्घम' भी पढ़ा जाता है इसलिए सांची इसी शान्ति अथवा सन्त शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। यह माना जाता है कि चूंकि बौद्ध भिक्षु स्तूपों में नहीं अपितु विहारों में रहते थे इसलिए 'शान्ति-सड्कम' युक्तियुक्त शब्द है। चीनी बौद्ध यात्री फाहियान ने इसे शा-ची के नाम से संबोधित किया है तथा उसका कथन है कि जब वह भारत आया तब सांची एक बड़ा राज्य था तथा यह वही जगह थी जहां गौतम बुद्ध ने ऐसा पवित्र पीतपर्णा पेड़ लगाया था जो सदैव सात फुट ऊंचा बना रहता था तथा काट देने के बाद भी उसकी ऊंचाई यथावत हो जाती थी।

सांची को प्राचीन समय में काकणाव तथा बोटाश्री पर्वत के नाम से जाना जाता था।

सांची के स्तूपों का निर्माण अनेक कालखण्डों में हुआ तथा विद्वानों का मानना है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी से बारहवीं सदी के बीच ये स्तूप निर्मित हुए। एक ब्रिटिश अधिकारी जनरल टेलर को यह श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने ईस्वी सन् 1818 में इन्हें खोजा था। ख़ज़ाने ढूंढने वाले लोगों ने और कुछ पुरातत्ववेत्ताओं ने यहां काफी विध्वंस किया। सन् 1818 में इनके जीर्णोद्धार का कार्य आरंभ हुआ तथा विशेष रूप से सन् 1912 से 1919 के बीच इस स्थल को लगभग पूर्ववत स्थिति में लाया गया। सांची के स्तूप जिस पहाड़ी पर निर्मित हैं यह वही पहाड़ी है जिसका वर्णन कालिदास मेघदूत में नीचगिरि के नाम से करते हैं। इस पहाड़ी को सुमेरु पर्वत भी कहा जाता है।

सांची के स्तूपों पर विशेष कार्य प्रख्यात पुराविद जॉन मार्शल ने किया। उन्होंने इस स्थल का जीर्णोद्धार कराया तथा इसे अपनी मूल अस्मिता में लौटाने का सफल प्रयत्न किया। उन्होंने सांची पर विस्तार से अपने ग्रंथ लिखे।

यह एक बौद्ध क्षेत्र था इसलिए सांची के निकट सोनारी के पास 8 बौद्ध स्तूप, सतधारा में 7, श्रीधर में 3 तथा भोजपुर के निकट

37 बौद्ध स्तूप हैं। सांची में पहले बौद्ध विहार भी थे। सांची में 3 मुख्य स्तूप हैं। इनके अतिरिक्त 7 अन्य छोटे स्तूप भी हैं। सांची के स्तूपों की मरम्मत भी की गई। स्तूप के दक्षिणी और पश्चिमी तोरण गिर पड़े थे वर्ष 1882-83 ईस्वी में उनकी मरम्मत की गई तथा उत्तरी और पूर्वी प्रवेश द्वारों की भी फिर से जुड़ाई कराकर उन्हें सुदृढ़ बनाया गया व स्तूप के चारों ओर के प्रदक्षिणा पथ को भी सीधा किया गया। यह तथ्य भी ज्ञात होता है कि सांची के तोरणों के दोनों ओर बहुत सुंदर उत्कीर्णन थे तथा बुद्ध के संपूर्ण चरित को यहां

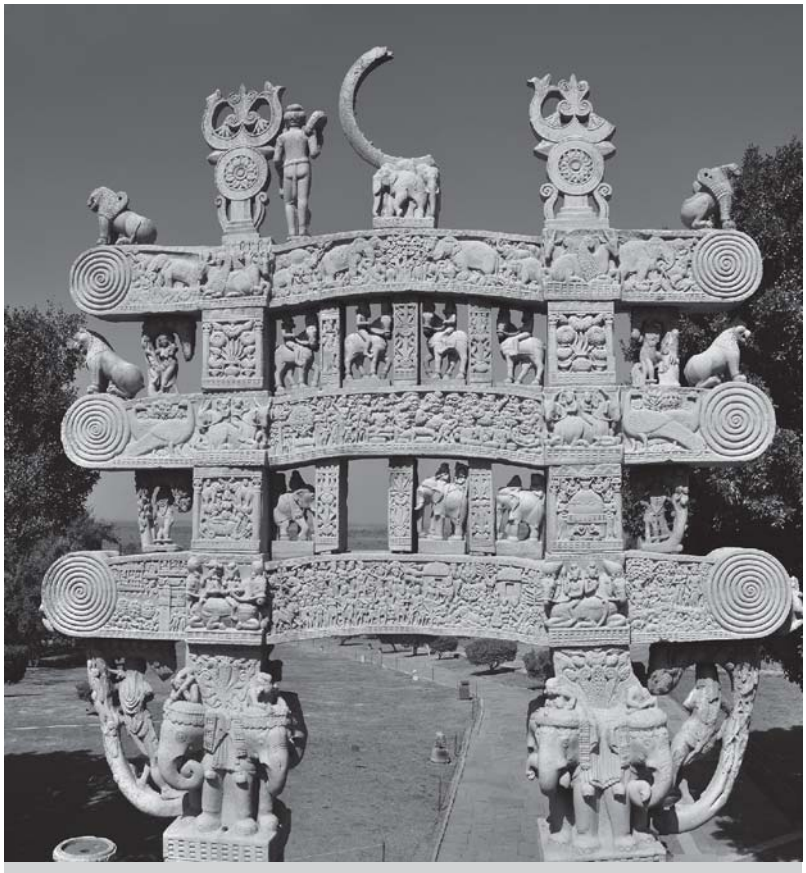

सांची का उत्तरी तोरणद्वार

उकेरा गया था। किन्तु अब यह सब उत्कीर्णन उपलब्ध नहीं हैं। सांची के तीन प्राचीन स्तूपों में महा स्तूप में भगवान बुद्ध की अस्थियां, द्वितीय स्तूप में अशोककालीन धर्म प्रचारकों की तथा तीसरे स्तूप में भगवान बुद्ध के दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्र व महामोदगल्यन की अस्थियां संरक्षित हैं।

सांची के स्तूपों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है सांची का महान मुख्य स्तूप व उसके तोरण द्वार। यह महान मुख्य स्तूप मूलत: सम्राट अशोक ने तीसरी सदी ईसा पूर्व में बनवाया था। अशोक के समय में इस स्तूप का निर्माण ईंटों की सहायता से हुआ था तथा उसके चारों ओर काष्ठ की वेदिका बनी थी। कहा जाता है कि इस स्तूप में एक स्थान पर दूसरी सदी ईसा पूर्व में कुछ ध्वंस हुआ तथा इसे संभवत: सम्राट पुष्यमित्र शुंग ने करवाया। लेकिन विद्वान मानते हैं कि बाद में उसके पुत्र अग्निमित्र ने इसे पुनर्निर्मित कराया होगा। शुंग काल के अंतिम वर्षों में स्तूप के मूल रूप का पाषाणी शिलाओं से विस्तार किया गया। जिसके कारण इसका व्यास 70 फीट से बढ़कर 120 फीट व ऊंचाई 54 फीट हो गई। इसके गुंबद को भी परिवर्तित किया गया। उसे चपटा बनाया गया तथा उसके ऊपर एक के ऊपर दूसरी छतरी निर्मित कर एक वर्गाकार मुंडेर के भीतर तीन छतरियां बनाई गईं। इसके शिखर पर धर्म का प्रतीक, जिसे विधिचक्र कहा जाता है स्थापित किया गया। शुंगों ने इस वेदिका को पत्थर का बनवा दिया। यह वेदिका सादी व अलंकरण रहित है तथा भरहुत की वेदिका से भिन्न है।

इस स्तूप में समय-समय पर परिवर्तन भी हुए। इस स्तूप के अंदर कोई वस्तु नहीं है इसलिए यह माना जाता है कि इसका निर्माण भगवान बुद्ध की स्मृति को अक्षुण्य रखने के लिए किया गया। इसके चारों प्रवेश द्वारों पर बुद्ध की चार मूर्तियां भी हैं। यह भी मान्यता है कि स्तूप के आसपास के निर्माणों की भित्तियों पर रंगीन चित्रों की चित्रावली रही होगी किन्तु अब वह नहीं है।

तोरण पहली शताब्दी ईसा पूर्व में सातवाहनों के काल में बने। वेदिका को तोरणों से जोड़ने वाले अतिरिक्त जंगले भी इसी काल में बने लेकिन स्तूप की आखिरी वृद्धि तब हुई जब ईस्वी सन् 450 में गुप्त शासकों के समय में बुद्ध की चार ध्यानस्थ प्रतिमाएं स्थापित की गईं तथा उनके प्रभामण्डल पर विस्तार से नक़्क़ाशी की गई।

सांची की विश्वव्यापी ख्याति का कारण इसके अलंकृत भव्य तोरण हैं। प्रत्येक तोरण अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है।

मुख्य स्तूप के अतिरिक्त दूसरे और तीसरे स्तूप शुंग काल में नहीं बने किन्तु वहां मिले शिलालेखों के अनुसार जो ब्राह्मी लिपि में लिखे गए शिलालेख हैं उनका वर्णन 1837 में जेम्स प्रिंसेप ने, जिसने ब्राह्मी लिपि पढ़ी, किया है। इन शिलालेखों से यह ज्ञात होता है कि उच्चस्तरीय उत्कीर्णन वाले तोरण शुंग काल के नहीं थे बल्कि इन्हें

बाद के सातवाहन वंश के राजाओं ने बनवाया था। तोरण परिक्रमा पथ 70 ईसा पूर्व के पश्चात बने थे। एक शिलालेख के अनुसार दक्षिण के तोरण की सबसे ऊपर की चौखट राजा सतकर्णी की ओर से उपहार स्वरूप मिली थी।

ये अद्भुत तोरण जो भारतीय पाषाण शिल्प के आरंभिक उदाहरण हैं, इस प्रकार उत्कीर्णित किए गए थे जैसे वे लकड़ी पर उकेरे गए हों। इनमें बुद्ध के जीवन की घटनाएं उस समय के लोक जीवन से जोड़कर इस तरह दिखाई गईं ताकि इन्हें देखने वालों को भगवान बुद्ध का जीवन और उनके उपदेश भलीभांति समझ में आ सकें।

तोरण द्वार बनाने की परम्परा भारत में पुरानी है। तोरण किसी बड़े भवन, दुर्ग या नगर के बाहर का वह बाहरी बड़ा द्वार है जिसके ऊपर का भाग मण्डप की तरह होता है तथा जिसे पताकाओं, मालाओं आदि से सजाया जाता है। ये तोरण हिन्दू, बौद्ध तथा जैन वास्तुकला के प्रमुख अंग हैं तथा पूर्वी एशिया, दक्षिण एशिया व दक्षिण पूर्व एशिया की पुरानी संरचनाओं में ये दिखाई देते हैं। प्रख्यात पुरातत्वविद् पर्सी ब्राउन के अनुसार ये नगर के बाहर खड़े किए जाते थे तथा इनका उद्देश्य नगर को अलंकृत करने का था।

सांची के तोरणों का निर्माणकाल पहली शताब्दी ईसा पूर्व का सातवाहन काल है। विद्वानों का यह कहना है कि सांची के ये तोरण ईसा पूर्व तीसरी सदी के पहले की भारतीय वास्तुकला की एक लोकप्रिय संरचना की नकल थे जिन्हें अपनी कल्पनाशीलता और कौशल से उस समय के कारीगरों ने इन्हें संवारा था।

सांची के चारों तोरण द्वारों पर उनके भेंटकर्ताओं के नाम अंकित हैं। पश्चिमी तोरण का दक्षिण स्तंभ तथा दक्षिणी तोरण का मध्य प्रस्तर पाद आर्य-चुड के शिष्य वलमित्र ने भेंट किया था। इसी प्रकार कुरार के निवासी श्री नागपिय ने पूर्वी तोरण के दक्षिण स्तंभ तथा पश्चिमी तोरण के उत्तर स्तंभ का दान किया था। समय का प्रभाव दक्षिणी तोरण पर अधिक पड़ा जबकि उत्तरी तोरण ठीक अवस्था में है।

प्रत्येक तोरण में दो चौकोर स्तंभ हैं जो चार शेर, हाथी या तुंदिल बौनों के समूहों से उत्कीर्णित हैं। स्तंभों के शीर्ष फलक के बाहरी भाग तथा सबसे निचले प्रस्तर पाद के किनारों को सहारा देते हुए शालभंजिकाओं की मूर्तियां निर्मित की गई हैं। प्रस्तर पाद के किनारों के बीच के रिक्त स्थान में छोटी-छोटी मूर्तियों को रखा गया है। ऊपरी प्रस्तर भाग के बीच में धम्मचक्र है जिसके बगल में चामर लिए हुए यक्ष तथा सुंदर नक़्क़ाशी किए हुए त्रिरत्न बने हुए हैं। ये बुद्ध, धम्म और संघ के प्रतीक हैं। प्रस्तर पाद के निचले भाग में कमल की कतारों को उत्कीर्ण किया गया है।

तोरण की पूरी सतह विभिन्न दृश्यों और नक़्क़ाशी से भरपूर है। यह नक़्क़ाशी अलग-अलग भागों में दृश्यों के रूप में विभाजित की गई है जिनमें भगवान बुद्ध के जीवन प्रसंगों के दृश्य, जातक कथाओं के दृश्य, बौद्ध धर्म के उत्तरकालीन इतिहास की घटनाएं, अलंकरण तथा मानुषिक बुद्धों से संबंधित दृश्य अंकित किए गए हैं।

सांची में मिले शिलालेखों पर दानदाताओं के नाम भी अंकित हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि सम्राट अशोक का विवाह विदिशा के एक समृद्ध श्रेष्ठि की पुत्री से हुआ था। उस समय विदिशा हाथीदांत की कारीगरी के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध था तथा सांची के तोरण द्वारों पर उत्कीर्णन उन कारीगरों ने किए थे जो हाथीदांत पर विदिशा में उत्कीर्णन का कार्य करते थे। यही कारण है कि सांची के तोरण द्वारों पर किए गए उत्कीर्णन विवरणों और बारीक़ी से भरपूर हैं। इन पाषाणी नक़्क़ाशियों में बुद्ध को कहीं मानव आकृति में नहीं दर्शाया गया है। कहीं उनके पादचिन्ह, कहीं वह अश्व, कंथक जिस पर बैठकर उन्होंने गृह त्याग किया था और कहीं उस बोधि वृक्ष के नीचे के चबूतरे के रूप में बुद्ध की उपस्थिति दर्शाई गई है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक अंकनों में यूनानी पहनावा भी दिखाई देता है। सांची के तोरण द्वार विशिष्ट हैं। इन पर लोकजीवन को उत्कीर्ण किया गया तथा धवलीकर जैसे विद्वान मानते हैं कि इन तोरण द्वारों पर उस समय का लोक मूर्तिमान किया गया है। इन तोरण द्वारों पर बुद्ध की जातक कथाओं को भावप्रवण रूप से उत्कीर्ण किया गया है तथा वे नयनाभिराम शालभंजिकाएं उत्कीर्ण की गई हैं जो विश्व कला की अमर धरोहर हैं।

सांची के तोरण द्वारों पर किए गए अंकन बड़े मनोहारी और जीवंत हैं। पशु-पक्षियों का सुंदर चित्रण किया गया है। एक उत्कीर्णन ऐसा है जिसमें पशुओं के ऐसे चिकित्सालय को चित्रित किया गया है जहां एक तोते की आंख का एक वानर मनोरंजक ढंग से परीक्षण कर रहा है। एक उत्कीर्णन में एक कटोरे में खीर लिए हुए एक वानर को अंकित किया गया है। यहां ऐसे खेत भी चित्रित किए गए हैं जिनमें अपनी पत्नी के साथ पति खेत में बोने का कार्य सम्पन्न कर रहा है। सांची की मूर्ति कला अद्भुत है।

सांची के स्तूपों के ये चार प्रवेश द्वार हैं। इन प्रवेश द्वारों में प्रत्येक स्तंभ के शीर्ष पर चार सिंहों का एक समूह स्थित है। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि जब ये स्तूप निर्मित हुए तब इनकी संरचना में इन प्रवेश द्वारों अथवा तोरणों को सम्मिलित नहीं किया गया था। किन्तु बाद में इन्हें निर्मित किया गया। ये चारों तोरण द्वार ईसा पूर्व पहली शताब्दी के हैं इनमें दक्षिण द्वार प्रमुख प्रवेश द्वार है जिसका

निर्माण सबसे पहले हुआ था। इस तोरण पर गौतम बुद्ध के जन्म से संबंधित तथा एक बौद्ध के रूप में सम्राट अशोक के जीवन की घटनाओं को दर्शाया गया हैं इस द्वार के पश्चात उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी तोरण द्वार निर्मित किए गए। पाषाणी शिल्प के इन उदाहरणों को निर्मित करने में हज़ारों स्थानीय शिल्पी रात-दिन लगे तथा ये पच्चीस बरसों में बने। कपिलवस्तु और कश्यप पैनल के निर्माण में सबसे अधिक समय लगा।

सांची के मुख्य दक्षिणी तोरण द्वार पर मुख्य उत्कीर्णन हैं। इस तोरण पर पांच जातकों के दृश्य हैं, ये हैं छद्दन्त जातक, महाकपि जातक, महावेस्सन्तर जातक, अलम्बुस जातक और साम जातक।

स्तूप दो का कोई तोरण द्वार नहीं है किन्तु इसकी वेदिका पर उत्कीर्णन हैं। इस स्तूप में तीन वेदिकाएं थीं एक भूमि तल पर, दूसरी मध्य में तथा तीसरी हर्मिका पर। भूमि तल की वेदिका पर कोई अलंकरण नहीं मिलता। बुद्ध को चार प्रतीकों में पद्म, पीपल वृक्ष, चक्र तथा स्तूप के माध्यम से उत्कीर्ण किया गया है। इसके साथ ही त्रिरत्न, श्रीवत्स, सिंह ध्वज व गज स्तम्भ आदि के अंकन भी मिलते हैं।

सांची के तीसरे स्तूप में केवल एक तोरण द्वार है जिस पर अनेक अलंकरण बने हैं। इसकी वेदिका पर मालाधारी यक्ष मूर्तियों के साथ-साथ स्तूप पूजा, बोधि वृक्ष पूजा, चक्र, स्तंभ, गजलक्ष्मी, नाग, अश्व तथा हाथी आदि के दृश्य अंकित हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि मध्यकाल में सांची की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गुप्तकाल तक तो बौद्ध धर्म फलता-फूलता रहा लेकिन बाद के समय में बौद्ध धर्म का अवसान होने लगा यद्यपि सांची की कीर्ति राजपूत काल तक बनी रही। बाद के समय में सल्तनत काल में यह बौद्ध धर्म का केन्द्र गुमनामी में खो गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वर्ष 1986 में सांची की पहाड़ी पर बने नए संग्रहालय भवन में यहां के पुरातत्व संग्रहालय को स्थानांतरित कर दिया गया। इस संग्रहालय में मौर्य, शुंग, सातवाहन, कुषाण तथा गुप्तकालीन प्रस्तर कला के अवशेष, मूर्तियां व शिलालेख आदि संरक्षित हैं।

सांची में अनेक स्तूप हैं जिनमें स्तूप क्र. दो सबसे बड़ा है। स्तूप क्र. 1 के पास अनेक छोटे-छोटे स्तूप भी हैं तथा उनके पास गुप्तकालीन पाषाण स्तंभ भी है। ये स्तूप प्रेम, विश्वास और शांति के प्रतीक माने जाते हैं।

सांची के स्तूपों की यह संक्षिप्त कहानी हमारी उस महान आस्था की कहानी है जो अमूर्त है लेकिन जो सघन बनकर स्तूपों में और उन तोरण द्वारों के दिव्य उत्कीर्णनों में अभिव्यक्त हो उठती है जो अपने आराध्य की स्मृतियों को स्थायी रूप से संजोने के लिए निर्मित किए गए। सांची के उत्कीर्णन हमारे पुरखों की तरल आस्था के दिव्य पाषाणी साक्ष्य हैं।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

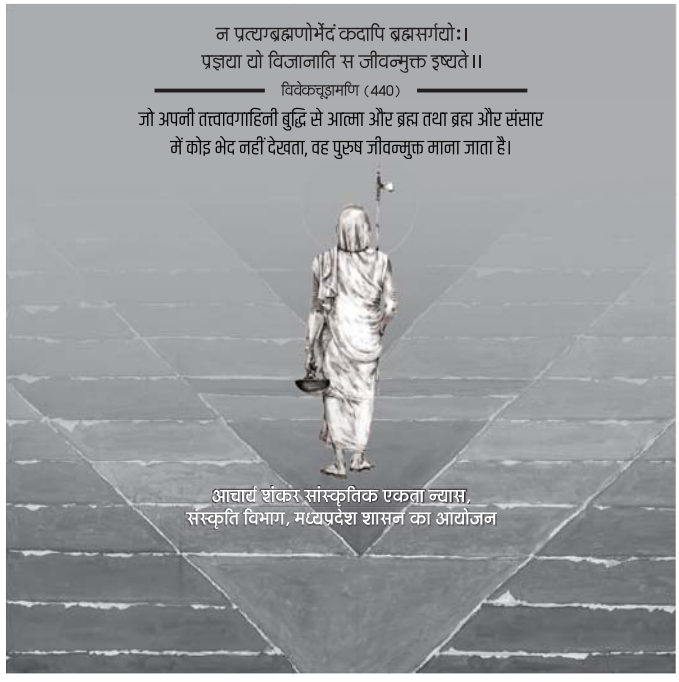

शक्ति- उपासना और 'सौन्दर्यलहरी'

रूप विमर्श की परम्परा में आचार्य शंकर

प्रो. आनंदकुमार सिंह

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही उपासना की दो परम्पराएं विद्यमान हैं .तान्त्रिक और वैदिक। इस बात को प्रबल वैदिक मतानुयायी कुल्लूक भट्ट (लगभग 12 वीं शताब्दी) भी स्वीकार करते हैं। दोनों मार्गों में संघर्ष और समन्वय, वाद और प्रतिवाद निरन्तर चलता रहा है। वर्तमान भारतीय संस्कृति के मूल्यवान तत्त्वों में दोनों की उपस्थिति है। विशेषकर मातृसत्ता की आराधना पर विशेष बल आगम का प्रधान लक्षण है । वैदिक समन्वय में यही शक्ति गायत्री के रूप में 'वेदमातर:' कहकर पूजित हैं । सिन्धु घाटी की सभ्यता में मातृका देवी की उपासना के प्रमाण बहुतायत में मिले हैं। सृजन की मूल शक्ति के रूप में आराधित यह उपासना विश्वव्यापी है।

सातवीं सदी में इस्लाम के उदयकाल में अलालात आदि त्रिदेवियों की उपासना अरब की मरुभूमि में भी प्रचलित थी। कबीलाई समाजों में मातृसत्तात्मक शासन व्यवस्था के कारण भी मातृका उपासना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही होगी । इसलिए यदि यह परम्परा वैदिक परम्परा की पूर्ववर्तिनी परम्परा रही हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। दार्शनिक विमर्श के स्तर पर यह अथर्वसंहिता के पश्चात् उपनिषदों में भी 'उमा हेमवती' के नाम से प्रकृष्ट स्तर पर प्रकट होती है जिसका डामर, यामल और आगम ग्रंथों में पर्याप्त विस्तार हुआ है। वेदों में भी ब्रह्म की चित्-शक्ति को आनन्दमयी माना गया है।

ऋग्वेद में अदिति-सूक्त (1/92/113) तथा परिशिष्ट भाग में 'लक्ष्मीसूक्त' तथा अम्भृण ऋषि की पुत्री द्वारा मंत्रदृष्ट 'वाक्सूक्त' में भी शक्ति के विशेष तत्त्व प्राप्त होते हैं । सबसे स्पष्ट रूप से अथर्व संहिता के 'आकूति सूक्त' में शक्ति तत्त्व अधिक भासमान हैं, किन्तु, ऋग्वेद के उषा वर्णन से रूपविमर्श की प्राचीनता सिद्ध होती है। श्वेताश्वतर, छान्दोग्य और कठोपनिषद में जगत को उत्पन्न करने वाली 'सविता', जगत के प्रधान कारण को 'सृत्' और 'अदिति' को स्पष्ट रूप से बता दिया गया है। अथर्ववेद और तैत्तरीय आरण्यक में भगवती त्रिपुरसुन्दरी को ही सावित्री,गायत्री और सरस्वती आदि नामों से पुकारा गया है जो सभी पुरुषार्थों को सिद्ध करती है। धर्म, ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य- इन छ: भगों को प्रदान करने के कारण ही उसे 'सुभगा' और 'भगमालिनी' भी कहा गया है।

अथर्ववेद का 'सौभाग्यकांड' त्रिपुरसुन्दरी की ही उपासना पद्धति से संबंधित है। देवी उपासना का विज्ञान अत्यन्त गूढ़ होने से अप्रकाशित ही रहता आया है किन्तु 'परशुराम कल्पसूत्र' इसके आगमिक स्वरूप को प्रकट करता है ।

गायन द्वारा रक्षण करने के कारण ही भागवती शक्ति को 'गायत्री' कहा गया है जिसके 'भर्ग' या तेज से विश्व प्रकाशित होता है। इच्छा-क्रिया-ज्ञान का परम केन्द्र भी वही है । इस केन्द्र को तन्त्र में परविन्दु कहा गया है। उसमें परशिव या ब्रह्म का प्रकाश विमर्श या चैतन्य शक्ति के रूप में विद्यमान है जो अस्मिता का प्रधान कारण है। इसका नाम अपरविन्दु है । व्याकरण आगम में उसे ही शब्दब्रह्म भी कहा गया है। शक्ति के स्फुरण वाले इस अपरविन्दु को ही शिव कहते हैं जिसके आगमिक विस्तार को कुछ इस तरह समझा जा सकता है। तन्त्र में शिव बिना किसी विषय और विषयी के शुद्ध चैतन्य हैं जिसका मूल रूप 'प्रकाश' है जो स्फुरित होकर शक्ति या 'विमर्श' में समाहित हो जाते हैं । परिणत चैतन्य 'प्रकाश' और मूल क्रियाशक्ति 'विमर्श' के मिलन से ही 'विन्दु' का उद्भव होता है। प्रकाश का रंग श्वेत है और विमर्श का रंग लाल। इसीलिए विन्दु का रंग मिश्रवर्ण है। यह एक प्रकार से सत्त्वगुण और रजोगुण का भी मिलन है। इसी वस्तु से ब्रह्मांड का निर्माण हुआ है। जब प्रकाश विमर्श की ओर चलता है तो विमर्श भी प्रकाश की ओर चलता है जिससे विन्दु में विस्तार होता है और वह 'नाद' बनता है। नाद को पूर्ववर्ती विन्दु का स्त्रीरूप माना गया है। शिव यही विन्दु हैं जिसे स्वर वर्णमाला में 'अ' से चिह्नित किया गया है। शक्ति ही नाद है जिसे व्यंजन वर्णमाला में 'ह' से बताया गया है। इनके मूल संयोग को ही 'अहं' कहा गया है जिसका अर्थ 'अस्मिता भाव' या 'मैं' होता है। यहीं पर विषय के सापेक्ष विषयी का जन्म होता है। जब विन्दु और

नाद युगनद्ध होते हैं तो एक मिश्र विन्दु का निर्माण होता है जिससे अस्मिता भाव की संभावना शक्ति का विकास होता है, उसे 'काम' कहा गया है जो सृजन की इच्छा का प्रतीक है। इसके भीतर शिव और शक्ति के प्रतीक दोनों विन्दु अविच्छिन्न रूप से विद्यमान होते हैं जिन्हें तांत्रिक भाषा में 'क' और 'ला' कहा जाता है। इन्हें निम्न रूप से प्रदर्शित करते हैं–

शिव
काम (बीज)
इच्छा
ब्रह्म
सत्त्व
सूर्य

0	**0**
विन्दु (शक्ति)	**नाद (शिव-शक्ति)**
क	**ला**
ज्ञान	**क्रिया**
विष्णु	**महेश**
रज	**तम**
अग्नि	**चन्द्र**

यह शुद्ध और निष्कल अनुस्वार– म् बीज– से विन्दु और नाद का त्रिकोण है। अन्ततः इस रहस्यमय त्रिकोण का सर्वोच्च विन्दु त्रिपुरा का मुख है और नीचे के दोनों विन्दु उनके दोनों स्तन जिन्हें क्रमशः 'हरि' और 'हर' कहते हैं। 'योगिनीहृदय तन्त्र' में कहा गया है कि साधक को इस सम्पूर्ण त्रिकोण (कामकला) को अपना शरीर समझना चाहिए जिसमें ऊपरी विन्दु को अपना सिर और नीचे के दोनों विन्दुओं को शरीर का दोनों पक्ष मानकर उपासना करनी चाहिए। गुह्य उपासना पद्धति में विन्दु और नाद के नीचे योनि या मन्मथ कला का विन्यास किया जाता है जिसे 'हार्ध' या (ह:+अर्ध =) 'हरार्ध' कहते हैं। सौन्दर्यलहरी के 19 वें पद में इसका उल्लेख है। विन्दु, नाद और बीज का अधोमुखी त्रिकोण ही देवी का प्रतीक है। यही श्रीविद्या है जिसकी स्थूल, कायिक और मानसिक उपासना करने का विधान है। श्री यंत्र का मूल त्रिकोण इसी से प्रारंभ होता है। परतत्त्व की पराशक्ति सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है जिसे प्रत्येक प्राणी इच्छा, क्रिया और ज्ञान के रूप में अनुभव करता है। यही शक्ति जगती का नाना रूपों में विकास करती है और पंचतन्मात्राओं, इन्द्रियों और मन सहित सात कलाओं से युक्त भौतिक शरीर का निर्माण करती है। भू: भुव: और स्व: के समस्त भोक्तृभोग्य पदार्थों को समाहित करने वाली यही त्रिपुरसुन्दरी सांख्यशास्त्र के चैबीस तत्त्वों को त्रिपदा गायत्री के चौबीस अक्षरों से प्रकट करती है। इसी कारण उसे शांखायन गोत्रा भी कहा जाता है। यह श्रीविद्या है। इसका अन्य आगमिक स्वरूप दशमहाविद्याओं में दिखायी पड़ता है जिसमें श्रीविद्या का विकास तीसरी महाविद्या षोडशी के रूप में हुआ है। महाप्रलय के पश्चात सृजन के काल में सूर्य के उदित होने पर पारमेष्ठ्य सोम की आहुति होने से रुद्र सूर्य ही शिवात्मक बन जाता है जो पंचवक्त्रात्मक शिव नाम से अभिहित होता है । तन्त्रसार के अनुसार वही 1. तत्पुरुष, 2. सद्योजात, 3. वामदेव, 4. अघोर और 5. ईशान नामों से लक्षित होता है। इस पंचमुखी शिव की शक्ति का नाम षोडशी है। मूलत: यह षोडश कला से ख्यात सूर्य ही है जो जड़–चैतन्य जगत की आत्मा है ।'शाक्तप्रमोद' में इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध है। षोडशी के ध्यान मंत्र में उल्लिखित है–

बालार्कमंडलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम्
पाशांकुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे।।

त्रिपुरसुन्दरी की उपासना की प्राचीनता इसी बात से सिद्ध होती है कि अगस्त्य मुनि की पत्नी लोपामुद्रा और अम्भृणि ऋषि की कन्या ने श्री विद्या की उपासना की थी जिसका संकेत ऋग्वेद में मिलता है। परशुराम और जनक से होती हुई यह विद्या राधातन्त्र के रूप में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा आराधित है। भीष्म, वेदव्यास, शुकदेव, असित, देवल और दुर्वासा ने भी श्रीविद्या की आराधना की थी। उसी का उद्धार आचार्य शंकर के परम गुरु आचार्य गौड़पाद ने 'सुभगोदय' नामक ग्रंथ रचकर किया । आचार्य शंकर ने ओंकारेश्वर में आचार्य गोविन्दपाद से सन्यास दीक्षा लेकर 'सुभगोदय' के आधार पर ही 'सौन्दर्यलहरी' की रचना की थी। वस्तुत: सौन्दर्य का तत्त्व चैतन्य तत्त्व का ही पूर्ण विकास है जिसे शक्तितन्त्र में त्रिपुरसुन्दरी कहा गया है । यही ललिता और श्रीदेवी हैं जिसकी समयाचार और कौलाचार पद्धति से आराधना की जाती है। यह मूलत: आदि प्रकृति की ही खोज है । थियोसोफिकल सोसायटी आफ इंडिया, अडयार, 1972 में प्रकाशित 'सौन्दर्यलहरी' का प्रामाणिक पाठ उपलब्ध है जिसकी भूमिका में पं. एस सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने लिखा है–

The votaries of the Shakti, the Kundalini, may be roughly divided into two classes: the Samayin-s

or those who believe in the sameness of the Shakti and the Shiva, and the Kaula-s or those who worship the Kaulini, the sleeping Kundalini, i.e. the Shakti, which resides in the Muladhara, which is known as the Kula-plexus...The Kaula-s.. worship the Kundalini, even without rousing her from sleep and are satisfied with the attainment and enjoyment of purely temporal objects, believing, at the same time, that with the rousing of the Kundalini, they attain liberation." (Introduction, page 3, Pt S. Subrahmanya Sastri).

यह आदि प्रकृति जड़ता के भीतर छिपी हुई चैतन्य की मीमांसा है जिसे शांकर अद्वैत में माया कहा गया है। यह ब्रह्म की वह अपोहन शक्ति है जो जागृत होकर विश्व का विस्तार करती है और अर्थवान बनाती है। वस्तुत: यह मूलतत्त्व को पीछे छिपाती है और अर्थ को उद्घाटित करती हुई प्रतीत होती है । फलत: जड़ता में चैतन्य का अध्यास होने लगता है । इसी अध्यास के कारण ही शून्य और पूर्ण का भेद तिरोहित होने लगता है और मिथ्या जगत् सत्य स्वरूप भासने लगता है। जो शक्ति इस प्रकार विमोहन करती है वही जगत की कारणरूपा अव्याकृत आदिप्रकृति है। अव्याकृता प्रकृतिस्त्वमाद्या आदि भी मार्कण्डेय पुराण में इसी लिये कहा गया है।

यह तन्त्रशास्त्र का अपना मूल सिद्धान्त है। वैयाकरण आगम में स्पष्ट रूप से शक्ति का यही द्वैत काम करता है जिसका पहला युग्म ही शिव-शक्ति है जो मिलकर ही वागर्थ बनता है। भर्तृहरि ने वाक्पदीय में इधर पर्याप्त संकेत किया है। विखंडन का कारण भी वही है। यदि केन्द्र में शिव हैं तो विन्दु, परविन्दु और अपरविन्दु का त्रिकोण ऊर्ध्वमुखी होता है और यदि केन्द्र में शक्ति हैं तो अधोमुखी। दोनों के विखंडन से केवल पद की क्रमिकताएं ही नहीं बदलती हैं बल्कि देखने का परिप्रेक्ष्य भी बदलता है जिसे आगम में सृष्टिक्रम और संहारक्रम या कादि और हादि विद्या कहा गया है। कश्मीरी शैवागम और त्रिकदर्शन में विशेषकर प्रत्यभिज्ञा दर्शन में तथा आचार्य शंकर के अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन में भेद है किन्तु शैवाद्वैत में उपासना के प्रयोजन से सामरस्य भी घटित होता है। एक परम्परा में यदि दर्शन के उत्तुंग शिखर पर आचार्य अभिनवगुप्त हैं तो दूसरी परम्परा में आचार्य शंकर। यद्यपि आचार्य शंकर के ब्रह्म-चिन्तन का प्रभाव कालान्तर में अधिक दिखाई देता है किन्तु स्वयं आचार्य पर पूर्ववर्ती परम्पराओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। समयाचार की परम्परा वही परम्परा है जिसमें स्त्रोतापन्न होने के कारण ही उनका भक्त रूप प्रकट होता है जो 'सौन्दर्यलहरी' में शीर्ष पर पहुंच गया है तथा जिसकी व्याख्या उनके वेदान्त दर्शन से संभव नहीं है ।

सौन्दर्यलहरी भगवत्पाद शंकराचार्य की अनुपम कृति है जो आचार्य की महान काव्यप्रतिभा को भक्तों, दार्शनिकों और कवियों के समक्ष एक साथ उपस्थित करती है। 'सौन्दर्यलहरी' का विधान इतना ललित और हृदयावर्जक है कि सौन्दर्य वर्णन का व्यापार रूपविधान के अन्तिम शिखर पर पहुंच गया है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि आदिप्रकृति का देवी के रूप में जो वर्णन है वह मातृसत्ता का नख- शिख वर्णन है। सौन्दर्य में नख-शिख वर्णन की परम्परा संस्कृत काव्य से होते हुए हिन्दी में रीतिकालीन कवियों तक प्राप्त हुई है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी यह लक्षण विद्यमान है । संस्कृत में लहरी काव्यों की एक लम्बी परम्परा मिलती है किन्तु पहला लहरी काव्य आचार्य शंकर प्रणीत 'सौन्दर्यलहरी' ही है । सौन्दर्यलहरी के पश्चात् 'शिवानन्द लहरी'और 'आनन्दलहरी' भी आचार्य द्वारा ही रचित है। बाद में पंडितराज जगन्नाथ द्वारा रचित गंगालहरी भी शिखरिणी छन्द में ही रची गयी है। वस्तुत: लहरी काव्य मक्तक काव्य परम्परा का ही अंग है जिसमें भावों की उत्कटता तीव्रतर होकर लहर की तरह अपने वर्ण्य के महासागर से मिल जाती है। सत्रहवीं शताब्दी में सवाई जयसिंह द्वितीय के नवरत्नों में से एक श्रीकृष्ण भट्ट ने सौन्दर्यलहरी या सुन्दरीस्तवराज के 107 पदों में देवी का नख .शिख वर्णन किया है जो शिखरिणी छन्द में ही निबद्ध है । इसमें भी श्रीविद्या के आगमिक पक्षों का विपुल वर्णन प्राप्त होता है जो आचार्य शंकर की सौन्दर्यलहरी की तरह ही दो भागों में विभक्त है। इसके बाद भी संस्कृत काव्य परम्परा में अनेक लहरी काव्यों का प्रणयन हुआ है जो अपनी काव्यभंगिमा से सिक्त करते हैं। संगीतात्मकता, गेयता, कल्पनाशीलता, भावाकुलता, शैली की मधुरता और सौन्दर्याभिव्यक्ति की प्रचुरता लहरी काव्य की आन्तरिक विशेषताएं मानी गयी हैं जिसमें रचनाकार अपने वर्ण्य के समक्ष अपना सर्वस्व उड़ेंल देता है। इन सभी मानकों पर शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी पूर्णतया खरी सिद्ध होती है। इसका मूल वर्ण्य है देवी के प्रति निश्शेष भक्ति जिसका प्रत्यक्षीकरण उनके सौन्दर्य के माध्यम से होता है । वर्ण्य में विलीन होने के लिये शक्ति- शील-सौन्दर्य की प्रतिष्ठा अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है ।

सौन्दर्य मानव मन की एक अपूर्व प्यास है जिसकी अनुभूति से प्रमाता रूपान्तरित हो जाता है। यह तत्त्वान्तरण केवल दैहिक सौन्दर्य का ही अतिक्रमण नहीं है बल्कि अपनी सूक्ष्मतम व्यंजना में वह प्रत्येक वपुमानता का उल्लंघन है। दैहिक व्याप्ति से उसके देहोत्तर

सौन्दर्यानुभव तक झंकार करने वाली यह रूपराशि केवल पार्थिव नहीं हो सकती। निश्चय ही यह नश्वर जड़ता के भीतर छिपी हुई चैतन्य की तरंगमाला है जो सौन्दर्य के रूप में प्रकट होती है। कवि जॉन कीट्स ने भी कहा है–

A Thing of Beauty is joy for ever Its loveliness increases; it will never Pass into nothingness.

नश्वरता के भीतर सतत विद्यमान चैतन्य का प्रवाह प्रथम बार मनुष्य को सौन्दर्यानुभव के रूप में ही आभासित होता है। अहंभाव को विसर्जित करा देने वाली चिच्छक्ति ही त्रिपुरसुन्दरी है क्योंकि सौन्दर्य का आवेग प्रज्ञा रूप में निहित चैतन्य को सक्रिय कर देता है। कवियों में तो सौन्दर्यानुभव की गम्भीरता ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। वहां पर सौन्दर्यानुभूति की सान्द्रता ही कल्पनालोक में घटित होकर वाणी द्वारा निगीर्ण होती है। इस सम्बंध में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'निर्झर स्वप्नभंग' कविता में बताया है कि सौन्दर्यानुभूति किस तल पर काव्यानुभूति बनकर उपस्थित होती है। गुजराती कवि श्री उमाशंकर जोशी ने भी 'निशीथ' की भूमिका में इधर संकेतित किया है। सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने भी सार-घन को बरसाने के लिए रूप-केकी की प्यास को स्वभाविक आवाहन माना है। 'सोनमछली' कविता में तो उन्होंने 'रूपतृषा' को 'जिजीविषा' कहकर सौन्दर्यानुभूति को जीवनानुभूति का ही पर्याय बना दिया है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रूप के पीछे जो निगूढ़ सार है वही कवियों का ध्येय है। इसमें कहीं भी संशय नहीं है ।

'सौन्दर्यलहरी' भारतीय काव्य परम्परा में सौन्दर्य की उज्ज्वल झंकार को तत्त्वज्ञान, विचारणा और उपासना के तीनों तलों पर न केवल सक्रिय करती है बल्कि मनोवैज्ञानिक रूप से सौन्दर्य को पार्थिवता के वासना पंक से मलिन न करती हुई साधक को मातृ-सौन्दर्य के बहाने समस्त पार्थिव रूपों से बाहर कर देती है। आचार्य शंकर की भाषा में 'मृदितमलमायेनमनसा' महान लोग वे ही हैं जिन्होंने उस रस में विभोर होकर परमानन्दलहरी को प्राप्त कर लिया है। यहीं पर भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में अभिहित होती है जिसे 'द्रविड़शिशु' (75) ने घटित कर दिखाया है। यह पद स्वयं आचार्य का ही अभिधान है जिससे इस बात का भी पटाक्षेप होता है कि सौन्दर्यलहरी की रचना किस कवि ने की है । बिना शिशु भाव के इस सौन्दर्यलहर से आप्यायित नहीं हुआ जा सकता...यह ध्रुव सत्य है। भक्ति में प्रवेश वास्तव में मातृक्षेत्र में प्रवेश है जिसका अधिकार केवल शिशु को ही है। विलियम बटलर येट्स ने कहीं कहा है कि समस्त रचनात्मकता ही दरअसल मातृक्षेत्र में प्रवेश है। जो भारतीय परम्परा के सौन्दर्यबोध को जानने वाले हैं उन्हें इस बात से कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए क्योंकि मातृका सत्ता को कामाख्या और रूपाम्बरा माना गया है। जगज्जननी के रूपातीत अरूप वैभव का यह अन्तहीन विस्तार है जो जड़ और स्थाणु शिव को चेतना के सौन्दर्य से भावरसिक बनाकर विह्वल करता है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने ठीक ही कहा है कि उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं ।

यह सौन्दर्य वास्तविक जगत का आभासी रूप है जिसके अन्तहीन आयाम हैं। यह सृजन की गुप्त संभावना का विराट महोत्सव है जो जड़ को भी चैतन्य कर देता है। प्राणीमात्र में इसका प्राकट्य आंगिक अनुपात और आहार्य से अभिनीत होता ही रहता है। इसकी लय सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। यह स्वयं में गतिशील और चाक्षुष प्रत्ययगम्य है। इसीलिए नारी रूप की देहभाषा में इसका लालित्य सर्वाधिक मुखर है। सृष्टि के भीतर इसकी संरचना में गुम्फित नारी को तत्त्व के स्तर पर जैक लकां भी उद्घाटित करना चाहते हैं इसीलिए तो कहते हैं कि स्त्री तो नारी के शरीर से बाहर है किन्तु वह दार्शनिक स्तर पर कहां है उसका उत्तर तो आचार्य शंकर ही दे रहे हैं।

विखंडनवादी दार्शनिक स्त्री का विमर्श कर रहे हैं जबकि भारतीय परम्परा में स्त्री तो स्वयं ही विमर्श है। विमर्श की मूल शक्ति तो वही है। शिव तो मात्र परामर्श हैं। शक्ति यदि मायाविनी है तो महेश्वर को मायिन: कहना भी उचित है क्योंकि शक्ति और शिव में मूलत: कोई भेद नहीं है। दोनो समान हैं। ऐसे सम शिव ही समय हैं और शक्ति समया। अभेद भाव से पूजन की परम्परा का आचार ही समयाचार है जिसकी मान्य परम्परा में आचार्य शंकर का स्थान है। श्री साधना के शीर्ष पर एक ओर आचार्य शंकर का यह लालित्य विधायक काव्य निर्वचन है तो दूसरी ओर उनकी मेधावी अद्वैतिनी दार्शनिक दृष्टि। प्रत्यक्षत: प्रकट होने वाले इस अन्तर्विरोध में एक ओर अरूपशून्या सौन्दर्य की आनन्द तरंगिणी है तो दूसरी ओर जगन्मिथ्यात्व का उद्घोष करने वाला वेदान्त डिम्डिम महासागर। सत्य क्या है... कहना कठिन है किन्तु इसी अनिर्वचनीयता में ही सौन्दर्य की लहरी तरंगित होती है।

इसका उत्तर वेदान्त में नहीं है किन्तु काव्य में है। शब्दब्रह्म की आराधना में अर्थ ही महाचिति है और काव्य का ध्वनितार्थ ही वागर्थ है जिसकी ओर कविकुलगुरु कालिदास ने आचार्य शंकर के अवतरण के कई शताब्दियों पूर्व ही संकेत किया है। क्या शब्द को अर्थ से अलग किया जा सकता है ? क्या अर्थ शून्य में निराधार टिका रह सकता है ? क्या रूप और नाम के आश्रय के बिना सत्ता का संज्ञान

सम्भव है ? कालिदास के शिव-पार्वती का वागर्थ की तरह सम्पृक्त होना यहीं पर सार्थक होता है । यही वह पृष्ठभूमि है जिस पर खड़े होकर हम आचार्य शंकर की काव्यवस्तु और काव्य रूप पर सही प्रकार से विचार कर सकते हैं। 'सौन्दर्यलहरी' की प्रारंभिक पंक्तियां इंगनीय हैं-

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवतु शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिंचादिभिरपि
प्रणन्तं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।सौ.ल. 1

शक्ति से यक्त होने पर ही शिव प्रभव करने में समर्थ होते हैं। शक्ति के अभाव में तो वह स्पन्दन करने में भी समर्थ नहीं हैं। अतः ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि की आराध्या माँ! तुम्हें प्रणाम अथवा तुम्हारी स्तुति वह व्यक्ति किस प्रकार से कर सकता है जिसने पूर्व में कोई पुण्य ही नहीं किया है।

मूलतः 'इकार' से प्रारंभ होने वाले इस सौन्दर्य वर्णन में प्रारंभिक 'शब्द' तो शिव है किन्तु इकार के स्त्रीवाचक मात्रा होने से सौन्दर्यलहरी का लक्ष्य स्वयंसिद्ध हो जाता है। विश्व का विस्तार ही अहं तत्त्व है जो अभाव या शून्य से प्रकट हुआ है। 'अ' यदि सर्ववर्णाग्र और प्रकाश स्वरूप परमशिव है तो 'ह' विमर्शस्वरूप स्पन्दनशक्ति। बिना 'ह' की शक्ति के 'अ' सृष्टिमान नहीं होता। यही 'अ' की प्रथम रंजना से 'ह' की अन्तिम व्यंजना तक अक्षरमातृका है। सौन्दर्यलहरी के कई श्लोकों में यह व्यंजना स्पष्ट दिखती है। 'ह' का विमर्श स्वरूप ही वियत् है जो महाकाशपर्याय होने से शिव का केलिस्थान है। ह्रीं बीज तभी सार्थक होता है। इस प्रथम पद में चूंकि शिव प्रलय की नहीं बल्कि प्रभव की सामर्थ्य शक्ति से युक्त होकर अर्जित करते हैं, इसीलिये यहां शिव सृजनकर्त्ता के भी वाचक हैं जो बिना शक्ति के स्पन्दन करने में भी समर्थ नहीं हैं। हरिहरविरिंचादि उसी मूलशक्ति के त्रिधा और अन्यत्र विभक्त स्पन्दन हैं जो अभाव को आकार देते हैं । फिर इच्छा से ईशत्व, और उन्मेष से ऊर्मि और एषणा का प्रसार हो जाता है- (अ आ इ ई उ ऊ ए)। विसर्ग (:) पर क्रिया पूर्ण होती है जिसके बाद ही व्यंजनों की रचना होती है । स्वरों के क्रम को 'शिव' कहा गया है जिन्हें अनुस्वार (ं-) से प्रदर्शित किया जाता है। विसर्ग ही सृजन की व्यंजना है। यही अव्यक्त का व्यक्त होना है अथवा प्रकाश का विमर्श की ओर चलना है या चैतन्य का सक्रिय होना है। या फिर निर्गुण का सगुण होना है। यह तन्त्र का आत्यन्तिक विज्ञान है जो अक्षरमातृका की आख्या करता है। अन्तिम वर्ण ''ह'' विमर्शरूप है जो अहं या जगत का विधान करता है । ''अ+हं'' के उत्पन्न होते ही विषय स्वरूप जगत भी उत्पन्न हो जाता है। ''अ'' शीर्ष पर है और 'ह' कुलकुंड कुहर में स्थित है। समयाचार में ''अ'' की यात्रा ''ह'' तक सम्पन्न होती है जिससे रसाम्नाय प्रतिष्ठित होता है -

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपंचं सिंचन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुंडे कुहरिणी।।सौ.ल. 10

'सौन्दर्यलहरी' के काव्यानुभव में उसकी दार्शनिक प्रतिपत्ति अत्यन्त निगूढ़ है यही कारण है कि सौन्दर्यलहरी के 1 से 41 पदों को आनन्दलहरी और 42 से 100 पदों को सौन्दर्यलहरी कहा जाता है। देवी स्तुति के रूप में आनन्दलहरी नाम से 20 पदों की एक और रचना भी आचार्य कृत ही प्राप्त होती है किन्तु 'सौन्दर्यलहरी' के प्रारंभिक 41 पद भिन्न हैं। जनश्रुति तो यह भी है कि स्वयं आचार्य शंकर को आनन्दलहरी शिलोत्कीर्ण (एक शिला पर उत्कीर्ण) रूप में प्राप्त हुई थी जो मूलतः उनके गुरु आचार्य गोविन्दपाद के गुरु आचार्य गौड़पाद द्वारा विरचित मानी जाती है तथा जिसे पूर्ण कर ही आचार्य शंकर ने अपनी कवन-कल्पन शक्ति का परिचय दिया। जो भी हो महामुनि व्यास और दुर्वासा की परम्परा में ही आचार्य शंकर ने अपनी दार्शनिकता और विलक्षण काव्यप्रतिभा का परिचय दिया है जिसकी झलक आधुनिक काल में श्री अरविन्द की 'सावित्री' में और श्री जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में दिखाई पड़ती है। श्री अरविन्द की 'सावित्री' में यही शक्ति 'सर्वेश्वरी' के रूप में वर्णित है तो प्रसाद जी की ''कामायनी'' में 'श्रद्धा' के रूप में यदि काव्य की सिद्धि अर्थ की तलाश है तो वस्तुतः काव्य चेतना के वरदान सा अवतरित हो जाता है जहां अर्थ अपना शाब्दिक अतिक्रमण करता है और प्रतीयमान सौन्दर्य को उद्घाटित करता है। स्फोटवादियों ने इसी लिए अर्थस्फोट को ही सृष्टि या रचना का व्यापार माना है मुकुलित से स्फुटित होने की प्रक्रिया ही अर्धविकच सौन्दर्य है जो शिवनेत्रों द्वारा ही संभव है। अन्यथा देवी के मूल सौन्दर्य को कौन बता सकता है! शाक्तमत में देवी की प्रधानता इतनी है कि देवी का सौन्दर्य दर्शन ही उपेय बन जाता है और शिवसायुज्य भी उपाय -

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिंचिप्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसां
तपोभिदु-र्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्।।सौ.ल. 12

यह आत्यन्तिक बात है । सौन्दर्य का ऐसा महत्त्व अन्यत्र

दुर्लभ है जहां शिवम् भी सुन्दरम् के लिये माध्यम मात्र है । जिसके सौन्दर्य को देखने की उत्सुकुता में दिवांगनाएं (जो स्वयं चरम सौन्दर्य की प्रतीक हैं वे भी) शिव सायुज्य की पदवी प्राप्त कर लेती हैं किन्तु उनकी अतृप्ति देवी के सौन्दर्य को देखने की है । यहां शिव का सायुज्य भी 'उपाय' बन जाता है जो अत्यन्त मार्मिक बात है। यह भारतीय परम्परा है जहां सौन्दर्य और आत्मान्वेषण में कोई अन्तर ही नहीं माना जाता, क्योंकि सौन्दर्य का अर्थ द्रष्टा का सौन्दर्यानुभूति से पार्थक्य नहीं है किन्तु एकीकरण है। यह एकीभाव ही परानुरक्ति है जिसे भक्ति कहा गया है । कोई भक्त ही सौन्दर्य के इस परमबोध तक पहुंच सकता है । या दूसरे शब्दों में बिना भक्ति के सौन्दर्य प्रकट नहीं होता। सौन्दर्यलहरी का रचनाकार एक उच्चकोटि का भक्त है जिसमें समर्पण या प्रपत्ति भाव रसाम्नाय तक पहुंचकर सिद्ध हो गया लगता है। यह ज्ञान से भी आगे का तत्त्व है जिसे साधक भक्त ने परानुराग से विकसित कर लिया है। अद्वैतवादी भक्त के लिये यह जगत मिथ्या न होकर काव्यभाषा में देवी के चरणकमल की अत्यन्त सूक्ष्म धूल है। इसीलिये दूसरे ही पद में वह देवी के चरणों तक जा पहुंचता है –

तनीयांसं पांसुं तव चरणपंकेरुहभवं
विरिंचिस्सन्चिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्त्रेणशिरसां
हरस्संक्षुद्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम् !! सौ.ल. 2

देवी के चरणकमल की सूक्ष्मतम धूल लेकर विरंचि लोकों की रचना करते हैं जिसका वहन सहस्त्रशीर्ष विष्णु अत्यन्त कठिनाई से कर पाते हैं । फिर उसी का संहार कर उसकी भस्म को शिव अपना अंगराग बनाये हुए हैं । दार्शनिक आशय फिर वही है कि यह जगत मूलतः 'पांसु' है जिसे पुरुषसूक्त में सहस्त्रशीर्ष ने अपने एक अंश से धारण किया हुआ है। आधुनिक भौतिकविज्ञान भी उस सूक्ष्मतम को महीयान संभावना से परिपूर्ण मानता है । वह ब्रह्मांड को प्रकट करने वाला ''Basic buliding block of nature'' है जिसे हमारा परम भक्त कवि 'तनीयांसं पांसुं' कहता है । यही चरणधूलि अविद्या के अन्तस्समुद्र में 'मिहिरद्वीप नगरी' है, जड़ों के लिए 'चैतन्य स्तबक मकरन्दस्त्रुतिझरी' है, दरिद्रों के लिए 'चिन्तामणिगुणनिका' है और 'जन्मजलधि' में निमग्नों के लिए 'दंष्ट्रामुररिपुवराहस्य' है (3), । यही भाव गोस्वामी तुलसीदास के यहां भी है–

बन्दउं गुरुपद पदुम परागा।
सरस सुबासु सुरूचि अनुरागा।।
अमियमूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू।। –रामचरितमानस

हमारा कवि यद्यपि अत्यन्त उच्चस्तर का दार्शनिक है किन्तु भावलोक का गहरा अवगाहन कर वह परोक्ष सौन्दर्यानुभव को काव्य का प्रत्यक्ष शरीर प्रदान करता है। यहां उसकी मनस्विता ज्ञान के उत्तुंग शिखर पर होने के साथ ही साथ भावनाओं की अतल गहराइयों में भी पहुंची हुई है। यद्यपि आचार्य शंकर ने महाकाव्य नहीं रचे किन्तु कवि प्रतिभा का प्रकाश स्तुतिकाव्य में ही काव्यवस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर किसी भी महाकवि से स्पर्धा करता है। आचार्य शंकर की स्तुतियां लोकप्रसिद्ध पूर्णताएं हैं जो अर्थ के स्तर पर दार्शनिक जगत को भौतिक उपलब्धियों से परिपूर्ण कर देती हैं । यही कारण है कि निगम के स्तर पर अद्वय इस परम सत्ता का उद्घाटन आगम के बहुरंगी कैनवास पर बहुरूपेण अनेकानेक आयामों में स्वयमेव होने लगता है । जिसने शिव और उसकी शक्ति को तत्त्व से जान लिया कि यहां द्वैत नहीं है वही इन स्तुतियों का रस ले सकता है और अनेकता में एकता की पहचान कर सकता है। दरअसल अद्वैत ही वह मूल धागा है जो इन विभिन्न मणियों को एक साथ पिरो सकता है । भारतवर्ष में यह सांस्कृतिक महत्त्व का कार्य सातवी–आठवीं शताब्दी में आचार्य शंकर के हाथों सम्पन्न हुआ। 'सौन्दर्यलहरी' के पांचवें और छठे पद से ही कवि ने देवी महिमा की प्रस्तावना सौन्दर्य की प्रमुख उत्स के रूप में कर दिया है जिससे जान पड़ता है कि कवि अपनी काच्यानुभूति को किस तरफ ले जाना चाहता है। 'पुरा नारी भूत्वा' तथा 'कामपि कृपा/अपांगात्ते लब्ध्वा' आदि पदों द्वारा सौन्दर्य की आकृष्टकर्त्री शक्ति की 'नारी' रूप में पहचान है जो देवी की प्रत्यक्ष अनुकृतियां हैं । 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की पुष्टि करने वाला यह निर्वचन अगले ही पद मे देवी के ध्यानरूप की सुन्दर अवतारणा करता है–

क्वणत्कांचीदामा करिकलभकुम्भस्तननता
परिक्षीणामध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना .... ।।

देखा जाय तो यह पद सीधे ही देवी के मांसल रूप को चक्षुष्मान करता है जो कवि कल्पना की ध्यानगम्या नारी है । किन्तु वह उस रूप को भक्तों के लिये सुलभ भी कराना चाहता है जिससे उनकी सर्वतोभावेन रक्षा हो सके। इसीलिए यह विरोधाभास भी चुनौतीपूर्ण है कि जो चरम पर सौन्दर्यमती है वही अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित भी है । वस्तुतः सौन्दर्य को परानुरक्ति से जान लेने वाले भक्त के लिए रक्षा या वरद रूप भी बाहर से नहीं प्रकट होता है। वह भी भीतर से ही प्रकट होता है और यही शक्ति का परम रहस्य भी है–

धनुर्बाणान् पांशं सृणिमपि दधाना करतलैः

पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका ।।सौ.ल. 7

किन्तु उस शक्ति का निधान कहां है? वह दार्शनिक दृष्टि से तो ब्रह्मशक्ति है। इसलिए उसका आश्रय भी ब्रह्म है किन्तु काव्य की आगमिक परम्परा में जाकर उसका वर्णन हमारे कवि ने कुछ इस तरह किया है–

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृतै
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यंकनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।सौ.ल. 8

आगमोक्त मान्यता है कि देवी का निवास मणिद्वीप है। वस्तुतः सूर्यतत्त्व और देवीतत्त्व में अभेद माना गया है। सविता और सूर्य का बालार्क रूप ही षोडशी देवी का रूप है। सूर्य के उदय से अस्तकाल तक की सम्पूर्ण यात्रा ही सृष्टि की प्रभव–प्रलय की यात्रा है अतएव देवी के सभी रूपों का ध्यान सूर्य के मंडलों का ही ध्यान है जिसका कायगत चक्र मणिपुर है। इसका प्रधान कारक सूर्य है जो हुताशन है। अग्नि, वायु और आदित्य का प्रधान केन्द्र भी यही है जिससे क्रमशः ऋक्, यजुस् और सामन् प्रकट होते हैं। गायत्री मन्त्र से भी इसकी पुष्टि होती है जिसे वेदों की माता कहा गया है। यहां पर भूर्भुवः स्वः के त्रिपुर में निवास करने वाली परमाराध्या भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही परमशिव पर्यंक निलय में शिवाकार मंचस्थ हैं। वही मणिद्वीप में निवास करती हैं। सौन्दर्यलहरी के 78 वें पद में देवी के नाभिवर्णन में उसको ही 'रतेर्लीलागारं/बिलद्वारंसिद्धेः' कहा गया है। आगम में सूर्य ही रवि है जो काम का प्रतीक है। इसीलिए मणिद्वीप ही सृजन का प्रमुख पीठ होने से देवी का स्थान है । दशमहाविद्याओं में भुवनेश्वरी का ध्यानरूप और 'ह्रीं', बीज वहीं पर अर्थ पाता है। सौन्दर्यलहरी के 23वें पद में वर्णित अर्धनारीश्वर रूप का संकर्षण भी इसी विन्दु पर होता है जहां शिव और शिवा परस्पर एक दूसरे में लीन हो जाते हैं। देवी का आकर्षक रूप शिव के शेषांश को अपने में संविलीन करने लगता है ।इसलिये कवि की शंका निराधार नहीं है –

यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं
कुचाभ्यामानम्रंकुटिलशशिचूडालमकुटम्।।

यहीं पर देवी का समया नाम सार्थक होता है। ध्यान देने योग्य है कि शिव और उनकी भैरवी शिवा में भाषिक पार्थक्य रचने का काम भी काव्य में अन्ततः लालित्य उपस्थित करता है क्योंकि कवि ने प्रकारान्तर से शंका के व्याज से दोनों की अभिन्नता को ही रेखांकित किया है ।

आनन्दलहरी के कुल 41 पदों में आचार्य प्रवर ने काव्यवस्तु की दार्शनिक अवतारणा ही नहीं की है बल्कि उसे शास्त्रोक्त न्याय से परिपुष्ट भी किया है जो प्रत्येक पद में विद्यमान है। देवी महिमा की सौन्दर्य साधनात्मक व्याप्ति यहां तक संभव है कि वह परम ज्ञानमयी 'मधुक्षीरद्राक्षा' से भी मधुरिम वाणी प्रदायिका है (15), सज्जनों को वाग्विभव देने वाली है (16), और महाकाव्य का कर्त्ता बनाने वाली है (17)। सतरहवें पद में वशिनी आदि देवियां ही 'क' वर्ग की व्यंजन हैं जो ''मातृकाएँ'' कहलाती हैं। देवी की 'तनुच्छाया' का सतत चिन्तन करने वाला सभी को वशीभूत करने में समर्थ है ।ऐसे रहस्यों को खोलने में 'गीर्वाणगणिका' (18), और 'वनिता इत्यतिलघु' (19), में अवहेलना की भावना स्पष्ट विद्यमान है। अवश्य ही इस प्रकार की साधनाएं नवीं शताब्दी में प्रचलित रही होंगी जिसको आचार्य ने तुच्छ मान कर ही संकेतित किया हैं ।कारण यह है कि फलवती सकाम साधनाओं के उस युग में ऐसे साधकों को विराट के श्रेयस–पथ तक उन्नयन करने का मार्ग भी देना आवश्यक था जिसे आचार्य ने सम्पन्न किया है। यह वाममार्गी साधकों की ओर एक आमन्त्रण भी है कि सांसारिक आकर्षणों में ही साधक उलझकर न रह जाय। किन्तु जीवन की विशालता में ऐसी बातें भी आगमाचारों में विहित रहती आई हैं जिनका ऐतिहासिक विवरण भी प्राप्त होता है। यही नहीं बल्कि इससे भी नीचे उतरकर आचार्य शंकर ने 'सर्पाणां दर्पः शमयति' और 'ज्वरप्लुष्टान दृष्ट्या सुखयति' तक गारुड़ी विद्या तक को भी स्थान दिया है (20)। किन्तु ये सब तो उनके लिये जो सांसारिक मल माया से आच्छन्न हैं। जो महान हैं (महान्तो पश्यन्ति) और सांसारिक आकर्षणों से बाहर हैं: 'मृदितमलमायेनमनसा' वे तो 'तपनशशिवैश्वानरमयी तटिल्लेखातन्वी' 'परमाह्लादलहरी' को 'महापद्माटवी' में अर्थात् सहस्रार में ज्योतित देखते हैं (21)। अन्ततः यह सौन्दर्यलहरी है जिसकी फलश्रुति परिणामवाची है। यह तो साधक के विवेक पर निर्भर है कि वह जगज्जननी से क्या प्राप्त करे। किन्तु श्रेष्ठ भक्ति यह नहीं है। ज्ञान यदि स्वतन्त्रता का संकल्प है तो भक्ति समर्पण का विज्ञान है। और यहां हमारा कवि क्या कहता है–

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।
प्रणामस्संवेशस्सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।(27)

यहां साफ दिख जाता है कि कवि की भक्ति किस प्रकार की है। उसके परम ज्ञान से ही यह समर्पण सिद्ध हो सका है जिसमें उसके जीवन की प्रत्येक क्रिया ही देवी का पूजन बन गयी है, सपर्यापर्याय

हो गयी है। भक्ति आन्दोलन के अनेक महान कवियों जैसे गोरखनाथ, रैदास, कबीर, पलटू और नानक में तथा दयाबाई, सहजोबाई और मीरा में यही भाव उमड़-घुमड़ करता हुआ दिखाई देता है। सौन्दर्यलहरी में यहां पर व्यक्तिगत सत्ता का ज्ञानमय सम्विलयन घटित हुआ है जो भक्ति का भी चरमादर्श है क्योंकि शिखर पर अन्तर्विरोध के लिये भी स्थान कहां! बस अन्तर इतना है कि जीवन सुख की समस्त चर्याओं में 'प्रणाम' के साथ ही 'संवेश' भी संघटित हो गया है । भक्ति द्वारा प्राप्त विलास भी उसी को अर्पित है जिसकी आराधना से यह भाव भी उत्पन्न हुआ है।

सौन्दर्यलहरी 32 वें और 33 वें पद में देवी के बीजमन्त्रों का उल्लेख है जिससे तीन प्रकार के मन्त्रों का उद्धार होता है । चूंकि श्रीचक्र पूजा विधान में श्रीदेवी का पूजन श्रीयन्त्र के माध्यम से होता है इसलिए उसके अनाख्येय आगम को आचार्य ने परम्परागत समयाचार पद्धति से ही प्रस्तुत किया है-

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रयत्रिवलय
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः।।सौ.ल.।।

श्रीयन्त्र सृष्टिविज्ञान को आगमोक्त ढंग से प्रस्तुत करता है जिसकी 43 कोणों में व्याप्ति है। त्रिकोण का निर्माण वस्तुतः कामकला का ही विधान है जिसमें दिक्, काल और चैतन्य ही त्रिकोणस्थ विन्दु बन जाता है। यही रवि है। यहीं पर पराचिति का स्पन्द है जिसमें नाद ठहरता है। अधोमुखी पांच त्रिकोण रूपी शिवयुवतियों में ऊर्ध्वमुखी चार श्रीकंठ रूपी त्रिकोण समाहित हो जाते हैं जिससे निष्कल विन्दु उत्पन्न होता है। परम चैतन्य का वही आश्रय विन्दु है। वहां पर दिक्काल समाप्त हो जाता है । वहां पर काल में दिक् का प्रवेश घटित होता है। शिव और शिवा का युगनद्ध भाव भी वहां पर लय हो जाता है । वहीं पर लास्यनर्तन है जिसमें शिव अपनी शक्ति समया में तिरोहित हो जाते हैं । वहीं पर बौद्धों का शून्य है और सिद्ध कवि सरहपा उसी दुर्गम तल पर 'नाद न रवि न विन्दु न शशि मंडल' कहते हैं।

'सौन्दर्यलहरी' के 36 से 41 कुल 6 श्लोकों में आचार्य ने समयाचार परम्परा के अनुकूल ही देवी की मूलाधार से आज्ञा तक मानसिक पूजन के उपरान्त ही उन्हें सहस्रार में अधिष्ठित किया है और वहीं से कवि ने सौन्दर्य वर्णन भी प्रारंभ किया है । 35 वें पद में ही देवी विश्वकायमय हो गयी हैं और सुपूजित होकर मानसिक संकल्प से जुड़ गयी हैं। कवि ने 41 वें पद से 42 वें पद में मूलाधार को जागृत कर रूपोपासना को देवी के मुकुटवर्णन से प्रारंभ किया है जो प्रतीकात्मक रूप से शक्ति के जागरण को व्यंजित करता है।

42 वें पद से आचार्य अपने लक्ष्य पर आ जाते हैं और सौन्दर्य वर्णन देवी के शीर्ष भाग से प्रारम्भ करते हैं और क्रमशः अंग-प्रत्यंगों का वर्णन करते हुए धीरे-धीरे नीचे उतरते हैं। यहां पर विश्वकायमय देवी सत्ता का पदार्थ वर्णन देवी की सारी धज को काव्यवस्तु के रूप में अवतरित करने की प्रक्रिया में स्वयं आचार्य शंकर शिवरूप हो गए जान पड़ते हैं। एक अद्वैतवादी संन्यासी द्वारा किया गया देवी का यह श्रृंगार वर्णन कालिदास के वर्णन पर भारी पड़ता है क्योंकि यहां पर मूल शिशुभाव सतत रक्षित है और मातृका रहस्य को खोला नहीं गया है जबकि प्रतिकूल वर्णन करने के कारण ही कालिदास को कोपभाजन बनना पड़ा था। यहां सौन्दर्य भोग नहीं है बल्कि चैतन्य का उज्ज्वल वरदान है जिसका बोध द्रविड़षिषु को अनवरत है। वह जानता है कि सौन्दर्य का अन्तिम लक्ष्य वस्तुतः देवी के वे चरण ही हैं जिनसे झरती हुई धूलि लेकर त्रिदेव सक्रिय होते हैं । पदसंख्या 2 से प्रारंभ हुआ वर्णन पद संख्या 98 में फिर चरणों पर ही आकर टिक जाता है। सौन्दर्यलहरी यहीं पर उत्कर्ष पर पहुंच जाती है-

कदाकाले मातः कथय कलितालक्तकरसं
पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम्।

शिशुभाव का विद्यार्थी भाव में परिणत होना ही भक्ति की अगली पीठिका है क्योंकि मूल ज्ञान को प्रकट करने का उपाय पंचदशी के अनुसार केवल तीन ही है । मुमुक्षु उसे तत्त्व से जान लेते हैं। वहां पर विचार और उपासना की आवश्यकता ही नहीं है। वहां पर कर्ममल के भस्म होते ही शुद्ध ज्ञान में प्रत्यक्ष प्रवेश हो जाता है। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण जो ज्ञानभ्रष्ट हैं उन्हें विचारणा की आवश्यकता पड़ती है। विचारणा के स्तर पर प्रतीक्षमाण साधकों का सम्प्रवेश शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है। विचार से भी यदि ज्ञान की प्राप्ति नहीं है तो वहां उपासना की आवश्यकता पड़ती है। यह उपासना ही भक्ति है किन्तु सामान्य कोटि की नहीं बल्कि शिशुभाव से विद्यार्थी भाव तक पहुंचने वाली। यही कारण है कि सर्वाधिक पदों (84.91) की रचना देवी के चरणों की वन्दना में ही हुई है। पद संख्या 95 में भक्ति की पात्रता निरूपित करते हुए आचार्य ने कहा है-

पुरारातेरन्तः पुरमसि ततस्तवच्चरणयोः
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा।

आज साहित्यदर्शन की प्रचलित सरणियों से यदि हम शंकर की 'सौन्दर्यलहरी' का विखंडन करें तो हमें आश्चर्यजनक रूप भक्ति

की ही प्राप्ति होगी क्योंकि इस कृति में सौन्दर्य के बहाने भक्ति का ही अपोहन किया गया है। वही परोक्षत: केन्द्र में है। सौन्दर्य की नदी में स्नान भी ज्ञानार्णव का ही अवगाहन है जिसमें व्यक्तित्व को विसर्जित करना अनिवार्यता बन जाती है। हमारे कवि ने भी अन्तिम पद में यही बात कही है–

प्रदीपज्ज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविडिध:
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना।
स्वकीयैरम्भोभि: सलिलनिधिसौहित्यकरणं
त्वदीयाभिर्वाग्भि स्तव जननि वाचां स्तुतिरियम्।।सौ.ल. 100

सूर्य की दीप से आरती करना, चन्द्रकान्तमणि पर सुधास्रवित जल से चन्द्रमा को अर्घ्य देना और सागर के जल से सागर के तर्पण की तरह ही देवीदत्त वाणी से उसी जननी की यह सौन्दर्यलहरी द्वारा स्तुति है। 'त्वदीयंवस्तुगोविन्दं तुभ्यमेव' की तरह ही समर्पित। इसके बाद कुछ बचता नहीं है। संस्कृत भाषा में आचार्यकृत अनेक स्तुतियां प्राप्त होती हैं किन्तु 'सौन्दर्यलहरी' अनुपम है। शिखरिणी छन्द की बनावट ही कुछ ऐसी है कि 6 और 11 मात्राओं में निबद्ध इसकी सांगीतिक लय भक्त की पुकार को और भक्तवत्सल की प्रतिबद्धता को सकरुण पदों में इस तरह रेखांकित करती है कि सौन्दर्य की लहर स्वयमेव उच्छलित होने लगती है। अस्तु। आचार्य के दार्शनिक स्वरूप के समक्ष उनका कवि रूप आच्छन्न हो गया है इसीलिए 'सौन्दर्यलहरी' के साहित्यिक सौन्दर्य पर संस्कृत आचार्यों का ध्यान भी कम ही रहा है। किन्तु देखने की बात भी यही है कि शंकराचार्य की भाषा का लालित्य भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा के न केवल अनुकूल है बल्कि परवर्ती साहित्य की परम्परा का अंविभाज्य अंग बनकर प्रस्तुत है। उनकी काव्यभाषा का स्वरूप अत्यन्त मनोहर और साहित्य की रीतियों, यथा गौड़ी, से सम्पुष्ट है। भावुक आलंकारिकता से विन्यस्त काव्यभाषा अपने रूपांकन से अनेकश: विस्मित करती है। पुष्पदन्त प्रणीत प्रसिद्ध 'शिवमहिम्न' के काव्यात्मक वर्णन को देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक ही छन्द में रचे जाने पर भी दोनों की प्रस्तुति में भाषा की संरचनात्मक योजना का विन्यास कितना अलग-अलग है। दोनों ही भक्ति के चरम निदर्शन हैं किन्तु पुष्पदन्त अर्थ को मात्र संकेतित कर देते हैं। उनके यहां समाहरण शैली से ही अन्वय हो पाता है किन्तु आचार्य में प्रवाह अधिक है। फिर आगम का पक्ष भी अत्यन्त प्रबलता से बाहर आता है जो 'शिवमहिम्न' में अन्त: सलिल है। आचार्य शंकर प्रणीत शिखरिणी छन्द में निबद्ध एक अन्य स्तोत्र 'आनन्दलहरी' भी देवी से ही संबंधित काव्यस्तवन है किन्तु, उसमें दार्शनिक प्रगल्भता न्यून है जबकि प्रस्तुत रचना में वह चरमोत्कर्ष पर पहुंची हुई है।

'सौन्दर्यलहरी' तन्त्रदर्शन की अत्यन्त गूढ़ रचना है किन्तु काव्यभाषा के स्तर पर वह उतनी ही साहित्यिक भी है। आशा करता हूं कि सुधीजन इसके हिन्दी प्रस्तुतीकरण को इसकी कमियों के बावजूद साहित्यदर्शन की आंख से देखेंगे ।

मैंने प्रयत्न किया है कि आचार्य शंकर जी की शब्दयोजना और नाद-सौन्दर्य को अनुवाद करते हुए इस तरह प्रस्तुत कर सकूं जिससे मूल का आनन्द मिल सके। एक प्रकार से यह मूल का अनुवाद है। अनुवाद से अधिक। लगभग प्रत्येक पद से आचार्य के मूल शब्दों को ही प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि अनेक स्थलों पर कठिन शब्द अर्थ बाधा उपस्थित करते हैं। चूंकि इन शब्दों में मंत्रात्मक शक्ति विद्यमान है इसलिए मूल शब्दों को यथावत रखना श्रेष्ठ प्रतीत हुआ। यहाँ पर फ़िलहाल मैंने कुल 100 पदों का ही अनुवाद प्रस्तुत किया है। किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में 103 पद भी प्राप्त होते हैं जिन्हें कहते हैं कि लक्ष्मीधर ने प्रक्षेपित किया है। इसलिए उनका अनुवाद भी कर दिया गया है। (किंतु यहाँ पर वो तीन पद अभी नहीं दिये गये हैं।)

मैं अत्यन्त आभारी हूँ गुरुवर्य प्रो गोविन्दचन्द्र पांडे जी का जिन्होनें इस अनुवाद को अपना महान आशीष प्रदान किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में अपने मित्रों से और गुरुजनों से प्रत्यक्ष या परोक्ष जो सहायता और मार्गदर्शन मिला है उसके लिए अत्यन्त आभारी हूँ।

– 5, वर्धमान परिसर, चूना भट्टी, कोलार रोड, भोपाल-462016
मो.: 9826628267

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। **–संपादक**

आचार्य अभिनव गुप्त और उनका पराद्वैतशैव दर्शन

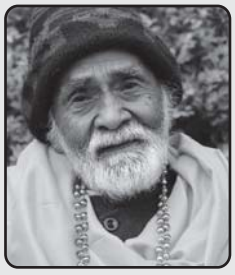

आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

भूमि का वह खंड देश को समृद्ध ज्ञान-विज्ञान देता हुआ 'शारदा पीठ' नाम से प्रसिद्ध था जिसे हम आज 'कश्मीर' कहते हुए दुखी होते हैं। आचार्य अभिनव गुप्त के समय कश्मीर अपनी समृद्धि के शिखर पर था। शारदा पीठ ज्ञानियों, योगियों और सिद्धों से भरा रहता था। पूरे देश के विद्वानों का वह ज्ञान तीर्थ था। उस समय ज्ञान की विभिन्न विधाओं के विद्वान या तो वहां निवास करते थे या अन्य प्रदेशों से आकर्षण वश उस पीठ पर यदा-कदा आ जाया करते थे। उदाहरणार्थ व्याकरण शास्त्र के वेत्ता नरसिंह गुप्त जो आचार्य अभिनव गुप्त के पिता थे, वे वहीं कश्मीर में रहते थे। इसी प्रकार नाट्यशास्त्र के आचार्य श्री भट्टतोत, ध्वनि सिद्धांत के मर्मज्ञ मनीषी इन्दुराज और ब्रह्मविद्या वेत्ता भूतिराज, कश्मीर में ही उस समय निवास करते थे। यही नहीं उस समय के क्रम और त्रिक दर्शन के ज्ञान के तत्व दृष्टा तथा प्रतिज्ञा के मर्मज्ञ महान आचार्य लक्ष्मण गुप्त एवं शैव संप्रदाय के मान्य गुरु भूतिराज तथा द्वैताद्वैत तन्त्र के गुरु वोमनाथ कश्मीर प्रदेश में अपना ज्ञान प्रकाश फैला रहे थे। यह सप्त ऋषि कल्प देश के विद्वान सभी अपनी विद्याओं के श्रेष्ठतम और ज्येष्ठतम श्रेणी के मान्य मर्मज्ञ थे परन्तु देशीय, सर्वज्ञ नहीं थे।

आचार्य ने इन सब विद्वानों के निकट जाकर इनकी सेवा की और उनकी कृपा से उनकी विद्या को चुना व ज्ञान प्राप्त किया इस प्रकार अनेक वर्षों की शपथ सेवा और अध्यवसाय से इन समस्त विद्याओं के आचार्यों के प्रसाद स्वरूप, एक साथ सप्त ज्ञान की विधाओं के वे नि:ष्णात मर्मज्ञ विद्वान् स्वीकृत हुए। वे यहीं नहीं रुके उस समय जलन्धर प्रदेश में स्थित 'जलन्धर पीठ' के गुरु श्री शंभुनाथ जो कुल सम्प्रदाय के महान् आचार्य मान्य थे उनके अन्तेवासी बन कर रहे उनकी सेवा की, फलस्वरूप गुरु की कृपा हुई और वे कुल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सहज ही आत्मसात कर सके। इस प्रकार देश के एक ऐसे विद्वान के रूप में वे मान्य हुए जिन्हें 'सर्वज्ञ' कहा गया है। भारतीय वाङ्गमय की प्राय: सभी प्रमुख धाराओं में निष्णात विद्वान् ही 'सर्वज्ञ' कहा जाता है। ऐसे आचार्य 'सर्वज्ञ' अभिनव गुप्त उस कश्मीर भूमि के पुत्र थे। आचार्य की दूसरी विशेषता थी उनका 'योगिनी भू' होना। उनके पिता उच्चकोटि के शिवयोगी गृहस्थ थे और उनकी माता 'विमला' महती योगिनी रूप साधिका थी अत: उनकी इच्छित सन्तान होने से वे असाधारण बुद्धि 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' प्राप्त थे। इन्हीं विशिष्टताओं और अपनी शिव साधना

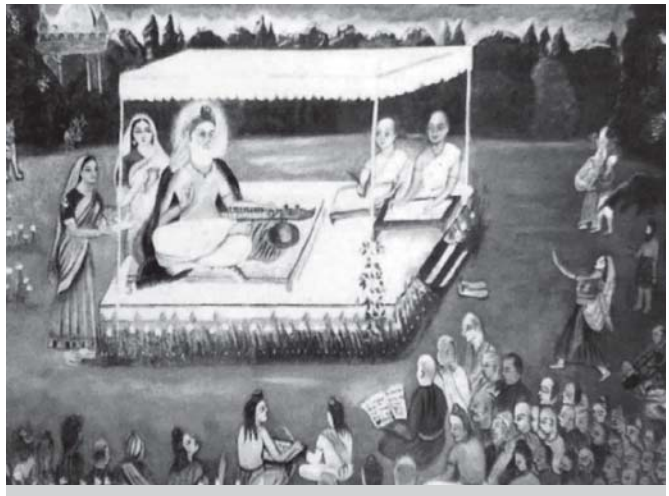

(आचार्य अभिनव गुप्त प्रवचन करते हुए)

के बल से आचार्य अभिनव गुप्त ने उस समय जो 'अद्वैत शैव दर्शन' का व्यवस्थित स्वरूप प्रस्तुत किया जिसे अद्वैत वेदान्त से अलग पहचान देने से स्वयं आचार्य ने 'तन्त्रालोक में, एवं 'प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी' में 'पराद्वैत' कहा है, वह दर्शन तो आज 'कश्मीर दर्शन' के नाम से या अद्वैत शैव दर्शन' के रूप में लोक में प्रसिद्ध है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जो इसे दूसरे भारतीय दर्शनों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है इसे अद्वितीय स्थान देती है। प्रसाद स्वरूप, एक साथ सप्त ज्ञान की विधाओं के वे निष्णात मर्मज्ञ विद्वान् स्वीकृत हुए। वे यहीं नहीं रुके उस समय जालन्धर प्रदेश में स्थित 'जलन्धर पीठ' के गुरु श्री शंभुनाथ जो कुल सम्प्रदाय के महान आचार्य मान्य थे उनके अन्तेवासी बन कर रहे उनकी सेवा की, फलस्वरूप गुरु की

कृपा हुई और वे कुल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सहज ही आत्मसात कर सके। इस प्रकार देश के एक ऐसे विद्वान के रूप में वे मान्य हुए जिसे 'सर्वज्ञ' कहा गया है। भारतीय वाङ्गमय की प्राय: सभी प्रमुख धाराओं में निष्णात विद्वान् ही 'सर्वज्ञ' कहा जाता है। ऐसे आचार्य 'सर्वज्ञ' अभिनव गुप्त उस कश्मीर भूमि के पुत्र थे। आचार्य की दूसरी विशेषता थी उनका 'योगिनी भू' होना। उनके पिता उच्चकोटि के शिवयोगी गृहस्थ थे और उनकी माता 'विमला' महती योगिनी रूप साधिका थी अत: उनकी इच्छित सन्तान होने से वे असाधारण बुद्धि 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' प्राप्त थे। इन्हीं विशिष्टताओं और अपनी शिव साधना के बल से आचार्य अभिनव गुप्त ने उस समय जो 'अद्वैत शैव दर्शन' का व्यवस्थित स्वरूप प्रस्तुत किया जिसे अद्वैत वेदान्त से अलग पहचान देने से स्वयं आचार्य ने 'तन्त्रालोक में, एवं 'प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी' में 'पराद्वैत' कहा है, वह दर्शन ही आज 'कश्मीर दर्शन' के नाम से या अद्वैत शैव दर्शन' के रूप में लोक में प्रसिद्ध है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जो इसे दूसरे भारतीय दर्शनों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है इसे अद्वितीय स्थान देती है।

इस दर्शन की इस दृष्टि को कहते है ''शिव दृष्टि'' शिव दृष्टि का अर्थ है यह जगत् शिव स्वरूप है, मित्थ्या नहीं है। प्रकाश शिव का स्वरूप है और विमर्श शिव का स्वभाव है। प्रकाश विमर्श का सामरस्य 'संवित्' है अत: जगत् संवित तत्व है। प्रकाश को शिव तत्व और विमर्श को शक्ति तत्व कहते हैं, और जगत् है प्रकाश और विमर्श का सामरस्य इसलिए यह जगत् हैं शिव शक्ति रूप। इसीलिए कहा जाता है कि यह जगत् संवित् तत्व का लीला विलास है, शिव शक्ति का लीला स्वरूप है। कहा जाता है कि यह संवित तत्व हैं जो विविध रूपों में प्रकाशित हो रहा है। इसको दार्शनिक भाषा में कहते है पराद्वैत चिदेक धन क्यों कि यह शुद्ध रूप 'चित्' तत्व ही है। यही है शुद्ध संवित् तत्व स्वतंत्र संवित्।

इस पराद्वैत दर्शन को जिसे आचार्य को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय है, जो कश्मीर में प्रचलित रहा है उसी 'पराद्वैत शैव दर्शन' का नाम है 'त्रिक दर्शन।' यह सर्वोत्कृष्ट साधना पद्धति है ऐसी ही स्वयं आचार्य को मान्यता है- शैव दर्शन के अनुसार 92 आगम स्वीकृत हैं। इनमें से तीन अर्थात् एक त्रिक 'सिद्ध' 'मालिनी', और 'नामक' ये तीन आगम श्रेष्ठ माने गये हैं। इनमें भी 'मालिनी' आगम सर्वश्रेष्ठ है और यह 'पराद्वैत शैव दर्शन' अर्थात् 'त्रिक दर्शन' उसी 'मालिनी आगम' के पूर्णत: अनुकूल मत है। इसीलिए यह 'त्रिक् दर्शन' (पराद्वैत शैव दर्शन) सर्वोत्कृष्ट शैव साधना शास्त्र है। यथा:-

'दशाष्टादशवस्वष्टभिन्नं यच्छाशनं विभो:।
ततू सार 'त्रिक्शास्त्र' हि ततू सारं मालिनी मतमू ।।'

(तं.आ. 1/35)

इस त्रिक् दर्शन का सिद्धान्त पक्ष है 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' और मुख्य साधना पक्ष है 'त्रिक दर्शन'। इसी का एक नाम है 'स्पन्दशास्त्र'। इसी को 'सिद्ध योगिनी मतम्' भी कहते हैं।

पराद्वैत शैव मत को सर्वोत्कृष्ट इस साधना पद्धति 'त्रिक' नाम से इसलिए प्रसिद्ध है, क्योंकि यह साधना पद्धति तीन प्रकार के तत्वों का समन्वय है, त्रिक तीन का समुच्चय हैं। वे तीन है- शिव-शक्ति-नरात्मक, तीन तत्वों का समुच्चय एक त्रिक्। यहाँ (1) शिव स्वातन्त्रयशक्तिमान् परमेश्वर हैं (2) शक्ति उनकी (शिवकी) क्रमात्मक प्रपञ्च की सिसृक्षा रूप स्वाभाविक प्रवृत्ति है। और (3) नर है शक्ति का क्रमात्मक विस्तार-बद्ध जीव (जगत्)। इसी 'त्रिक्' को आचार्य ने तन्त्रालोक में इस प्रकार कहा है:

'स्वातन्त्र्यशक्ति: क्रमसिसृक्षा, क्रमात्मता चेति विभोर्विभूति:

(तं. आ. 1/5)

तात्पर्य यह है कि शिव स्वातन्त्र्य शक्ति से सम्पन्न परमेश्वर हैं, उनकी स्वातन्त्र्य शक्ति ही सिसृक्षा स्वरूप स्वाभाविक प्रवृत्ति हैं और उनकी इच्छा शक्ति से वे ही क्रमात्मक, रूप में, अपने भिन्न प्रतीयमान और संकुचित रुप में नर है तथा यही तीनों शिव शक्ति नर का समुच्चय यह त्रिक् 'विश्व' है। यह है दूसरा त्रिक। तीसरा त्रिक है-. परा, अपरा और परापरा।

क्रिया प्रधान है सिद्धतन्त्र, ज्ञान प्रधान है 'नामक' तन्त्र, और 'क्रिया-ज्ञान'- उभय प्रधान है 'मालिनी' यह त्रिक तीनों को स्वीकार करता है।

यह 'त्रिक' इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि यह दर्शन ज्ञान के विविध अंगों की व्याख्या करता है- अभेद भेदाभेद और भेद।

त्रिक शास्त्र के साधकों का चरम लक्ष्य है- परिपूर्णता प्राप्त करने के लिए, प्रकाशात्मक शिवरूपता द्वारा, विमर्शात्मक शक्ति रूप से, शिव शक्ति के सामरस्य का साक्षात्कार करना।

इसके लिए परमेश्वर को अन्तरण शक्तियों- इच्छा ज्ञान और क्रिया शक्तियों को 'शक्ति त्रय' का योग प्रक्रिया द्वारा सामरस्य प्राप्त करते हैं। सामरस्य प्राप्त होने पर साधक को 'परतत्व' की अनुभूति होती है। अपने स्व-रूप का ज्ञान हो जाता है। इन शक्तियों के सामरस्य को प्राप्त करने के लिए 'त्रिकशास्त्र' के गुरु अपने शिष्यों को उनकी अहर्ता के अनुसार यथा योग्य वीर्यवान् मन्त्र और विशिष्ट प्रकार की योग प्रक्रियाओं का उपदेश करते हैं। मन्त्र होते हैं-

मन्दशक्ति वाले, मध्य शक्ति के और अतितीत्र शक्ति युक्त मन्त्र। इन्हें शिष्यों को उनके स्तर और संस्कारों को दृष्टि में रखकर, पराद्वैत शैव दृष्टि से भेद, भेदाभेद और अभेद स्तर के प्रयोग बताते हैं।

अद्वैत शैव आचार्य अभिनव गुप्त यह त्रिक् शास्त्र अत्यन्त दिव्य और उत्कृष्ट कोटि की देवलोक की साधना पद्धति है। पहले यह स्वर्ग में, देवों में प्रचलित थी। वहाँ से इसे 'रावण' ले आया था। उसने इसे अपने भाई विभीषण को यह साधना दी। विभीषण ने इसे श्री राम को और श्री राम ने लक्ष्मण को प्रदान की। लक्ष्मण से इसे सिद्धों ने, सिद्धों से दानवों ने, दानवों से गुह्यकों ने और फिर गुह्यकों से इस साधना पद्धति को 'योगियों' ने प्राप्त की है।

कश्मीर में यह अनुश्रुति विद्वानों में मान्य है, व ऐसा ही तंत्रालोक में आचार्य ने लिखा भी है कि ''कैलास'' में श्रीकण्ठ नाथ की आज्ञा से ऋषिप्रवर दुर्वासा ने मन से 'त्र्यम्बकादित्य' उत्पन्न किया था। उसे इस त्रिक् शास्त्र का उपदेश किया उसने अपने 14 मानस पुत्रों को फिर उसी त्र्यम्बकों की परम्परा में बहुत बाद को एक त्र्यम्बक ने पंजाब देश की एक ब्राह्मण कन्या से व्याह कर 'संगमादित्य' पुत्र उत्पन्न कर उसे यह शास्त्र प्रदान किया। कश्मीर के त्र्यम्बक पीठ का यही प्रथम गुरुमान्य हुआ है।

पूर्व में यह कहा जा चुका हैए पराद्वैत शैव दर्शन जो कश्मीर में प्रचलित रहा है, उस दर्शन का सिद्धान्त पक्ष 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' और साधना पक्ष त्रिक् दर्शन' था।

'प्रत्यभिज्ञा' का तात्पर्य पूर्व अनुभूत वस्तु का सामने होने पर अनुस्मरण के बल से ज्ञान होना है। प्रत्यभिज्ञा शब्द का अर्थ, प्रति का अर्थ है विपरीत, प्रतिकूल, अभि का अर्थ-अभिमुख अर्थात् सामने, स्पष्ट रूप से और ज्ञा का अर्थ है ज्ञान या प्रकाश है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा का शाब्दिक अर्थ है। ज्ञात होने पर भी विस्मृत तत्व का अभिमुख होने पर ज्ञान 'प्रत्यभिज्ञा है।' लोक में भी सामान्य रूप से ज्ञात वस्तु का फिर सामने होने के अवसर पर अनुस्मरण द्वारा ज्ञान होता है। यही व्यवहार में पाया जाता है। 'शाकुन्तल' नाटक में ''पूर्व में ज्ञात पर विस्मृत शकुन्तला'' की पहचान अँगूठी द्वारा कराई गई 'प्रत्यभिज्ञा' का उदाहरण है।

यह शास्त्र बतलाता है कि जीव शिव ही है। संसार में जीव अपने सच्चे शिव-स्वरूप को भूल जाता है और अपने स्थूल और सूक्ष्म देह को ही समझ बैठता है कि यह मैं हूँ। यह शास्त्र अपने सच्चे स्वरूप की पहचान-प्रत्यभिज्ञा करवाता है। इसे इसलिए प्रत्यभिज्ञा दर्शन या प्रत्यभिज्ञा शास्त्र कहते हैं।

'उत्पलदेव' आचार्य ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन का कारिकाबद्ध तर्क युक्ति प्रधान दर्शन सिद्धान्त सूत्र ग्रन्थ 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा' नाम से नौवीं शती में लिखा। इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन था श्अपने स्वरूप की परिपूर्ण शिव रूपता की पहचान कराना।' आचार्य उत्पलदेव ने स्वयं ही अपने इस ग्रन्थ पर' ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृत्ति' नाम से टीका भी लिखी थी जो अब तक अप्राप्य है। इसी ग्रन्थ पर दशवीं शताब्दी में आचार्य अभिनव गुप्त ने 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी' नाम की एक विस्तृत व्याख्या की है। यह व्याख्या इतनी श्रेष्ठ व्याख्या है, कि पराद्वैत शैव दर्शन में इस ईश्वर प्रत्यभिज्ञा 'विमर्शिनी' का वही महत्वपूर्ण स्थान है जो व्याकरण शास्त्र में पतञ्जलि के महाभाष्य का, वेदान्त में शांकर भाष्य का, अथवा मीमांसा दर्शन शास्त्र में शवर स्वामी द्वारा लिखे भाष्य का महत्व माना जाता है। इसका सम्यक् रूप से अध्ययन करने से कश्मीर शैव दर्शन के सिद्धान्त पक्ष का पूर्णज्ञान हो जाता हूँ ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है यह ।

इस प्रकार उत्पल देव द्वारा प्रणीत 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा' ग्रन्थ जो लोगों को बिना अथक प्रयत्न किये ही अर्थात् बिना प्राणायाम आदि क्लेशों के सहे 'मैं महेश्वर हूँ' यह बोध हो जाय, स्व-रूप का सच्चा ज्ञान अनुभूति बन जाय, इसलिए लिखा। इसी ग्रन्थ के चार अधिकारों में आचार्य अभिनव गुप्त ने, मीमांसा-वाक्य-न्यायादि प्रमाण, व्याकरण सम्बन्धी पद-पदार्थ, आगम शास्त्रों से सम्बन्ध रखने वाले जितने भी अर्थ हैं वे सब के सब अपनी व्याख्या में उपयोग किये हैं। उद्देश्य है श्कि साधक अपने स्व-रूप का सम्यक् बोध कर सके।

गुरु अपने साधक शिष्य को इस सिद्धान्त का बोध कराने के साथ प्रत्यभिज्ञा हेतु, कुछ अन्य उपायों को भी अपनाने का परामर्श देता है।

अल्पज्ञ जीव भाव की स्थिति वाले अति कोमल बुद्धि साधक के लिए भेद प्रधान एवं क्रिया शक्ति रूप जो वह उपाय बताता है उन्हें आणवोपाय कहते हैं। यह उपाय प्रारम्भिक साधकों के लिए उचित है उच्चारण, करण, ध्यान, वर्ण, एवं स्थान-कल्पना यह आणवोपाय कहे गये हैं। स्थूल प्राण-अपान का व्यापार उच्चार कहलाता है, और सूक्ष्म प्राणादिक व्यापार वर्ण है। शरीराङ्गों का किसी विशेष स्थिति में रखना व इसमें चित्त कालय करण है। स्थान तीन हैं-प्राण, देह और वाह्य। प्राण 5 है, देह के 2 हैं (स्थूल व सूक्ष्म) और बाह्य हैं- मण्डल, स्थण्डिल, अक्षसूत्र, पुस्तक, प्रतिमा, लिंग, पर आदि- इनमें चित्त का लय करना ।

देह में, चक्रों में, अर्चना, योग, मन्त्रोच्चारण, ध्यान करना यह सब क्रियोपाय **आणवोपाय** हैं।

शाक्तोपाय- जो साधक थोड़ा साधना में ऊँचे धरातल पर पहुँच गया है- द्वैत भाव से अद्वैत भाव में पहुँच रहा है उसके लिए अद्वैत में स्थित होने के लिए, अर्थात् अभेद अवस्था में स्थिर होने के हेतु ज्ञान ही साधन है, बाह्य उपचार नहीं । चिन्तन-भेदा भे दौहि शक्तिता। सारा विश्व मेरा स्व-रूप है- ऐसा ध्यान, मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं है- ऐसा चिन्तन । यही शाक्तोपाय है।

शाम्भवोपाय- यह इच्छोपाय है। इच्छा मात्र से आत्मा भैरवरुप में अनुभव होने लगता है- मैं शिवमय हूँ। जगत् शिव में, प्रतिबिम्बित भासित, हो रहा है। यह इच्छोपाय है। यही शाम्भवोपाय है। ब्रह्मभाव में स्थिर होने के लिए शाम्भवोपाय है, इच्छोपाय है।

अनुपाय- यह चौथा उपाय है जो उपाय नहीं हैं। उपायों के अभाव से अधिगत यह परम एकाग्रता की महादशा का समावेश है, यह भावातीत स्थिति है। इसी को आनन्दोपाय भी कहते है। यह अवस्था शिव की कृपा से, श्रेष्ठ गुरु के द्वारा प्रदत्त शक्ति से, समस्त विकल्पों का विनाश होकर परदशा रूप में उत्पन्न होती है। शिव से तादात्म्य होता है और शाश्वत आनन्द में साधक लीन हो जाता है।

इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा प्राप्ति को साधना के ये 4 सोपान बताये गये हैं (1) आणवोपाय या क्रियोपाय (2) शाक्तोपाय अर्थात् ज्ञानोपाय, (3) शाम्भवोपाय या इच्छोपाय और (4) अनुपाय अर्थात् आनन्दोपाय है। इन्हीं के द्वारा साधक अपने स्वरूप का बोध प्राप्त करता है। वह जान लेता है कि मैं 'महेश्वर हूँ।' उसे प्रत्यभिज्ञान हो जाता है।

आचार्य अभिनव गुप्त ने 'तन्त्रालोक' के चतुर्थ आह्निक में 'त्रिक् दर्शन' को सिद्धि के हेतु साधनों की चर्चा में 'क्रम प्रक्रिया' शाक्तोपाय के अंग के रूप में वर्णित की है। उन्होंने पुन: इसी ग्रन्थ तन्त्रालोक के तीसवें आह्कि में त्रिक्-कुल और क्रम की प्रक्रियाओं का पृथक् वर्णन किया है। स्पष्ट है 10 वीं शदी के मध्य कश्मीर प्रदेश में तीनों त्रिकू-कुल-क्रम लोक में साधना के सम्प्रदाय प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। आचार्य के ग्रन्थ तंत्रालोक के टीकाकार बारहवी शती के महान् विद्वान् जयरथ त्रिक् दर्शन का सहोदर दर्शन क्रम दर्शन है- ऐसा मानते हैं (तं. जो. वि. खं. 39 पृष्ठ 157)। आचार्य अभिनव गुप्त ने 'तन्त्रालोक' के अलावा अपने दूसरे ग्रन्थों में- तन्त्रसार में, ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी में, और परात्रिशिका विवरण में, भी यथा स्थान क्रम दर्शन (क्रम-नय) की चर्चा की है।

आचार्य परात्रिशिका विवरण में लिखते हैं कि परमेश्वर की स्वतन्त्र इच्छा बाह्य रुप में क्रम से प्रकाशित हुआ करती है। इसका कोई कारण नही है- यथा:- ''सर्व एवायं वाग्मूप: परामर्श: क्रमिक एवं अन्तरू संचिन्मय: तु अक्रम एव।'' (प.त्री.वि.) अत: क्रम शास्त्र साधना के क्षेत्र में, साधक की क्रम के अनुसार ही विकास प्रक्रिया को स्वीकरता है। साधना क्रमानुसार, सिद्धि की प्राप्ति क्रमानुसार और मोक्ष भी क्रमानुसार ही होती है- ऐसी क्रम शास्त्र की मान्यता है। इसके अनुसार क्रिया योग जो आणवोपाय के नाम से जाना जाता है 'क्रम-योग' है।

क्रममुक्ति की प्राप्ति के लिए साधक, इस नय में, शाक्तोपाय की सहायता लेते हैं- इस में क्रमश: 1.कन्द 2.नाभि 3.हृदय 4.कण्ठ 5.भ्रूमध्य 6. बिन्दु 7. नाद और शक्ति सोपानों पर साधक आरोहण करता है। इनमें प्रथम पाँच सोपान प्रमुख हैं, ऐसा सिद्ध जनों का अनुभव पूर्ण कथन है।

क्रमदर्शन का मानना है कि परमेश्वर की पाँच प्रमुख स्फुरण धाराएँ हैं। इन्हें 'पञ्चवाह' कहते हैं- 1 व्योम वामेश्वरी, 2 खेचरी, 3 गोचरी, 4 दिक् चरी और 5 भूचरी/ये शक्तियों के समूह चक्र हैं।

1. व्योम वामेश्वरी इस शक्ति का नाम इसलिए है कि 'वम्' धातु का अर्थ है वमन करना, बाहर निकालना । यह शक्ति वामेश्वरी विश्व को शिव से बाहर फेंकती है। यह समस्त शक्तियों को वमन करने में समर्थ है।

अत: वामेश्वरी परा शक्ति है, दूसरे शब्दों चित्-शक्ति है, चिति: है व्योम है परम शिव का धाम ।

2. खेचरी- 'खे' 'आकाशे, ब्रह्माणि चरतीति खेचरीश् अर्थात् आकाश में, चिदाकाश में, ब्रह्म में, जो विचरण करती है बोधरूपा है।

3. गोचरी- गो का अर्थ है किरण, इन्द्रिय, गमन करना। इन सब अर्थों में गमन का भाव निहित है। अन्त: करण इन्द्रियों का आश्रय है। इसलिए अन्तकरण गोचरी शक्तियों (शक्तिचक्र) का क्षेत्र है।

4. दिक् चरी- वह शक्ति है जो दिक् दिशाओं में चलती हैं। बाह्य इन्द्रियों का सम्बन्ध दिक् से है। अत: दिक्चरी शक्ति चक्र का क्षेत्र बाह्य इन्द्रियाँ हैं।

5. भूचरी- 'भू' शब्द का अर्थ है होना। जो कुछ हो रहा है, वह 'भू' के अन्तर्गत है अत: पदार्थ या प्रमेयों विषयों का सूचक है। सभी पदार्थ और प्रमेय विषय भूचरी शक्ति चक्र के क्षेत्र हैं।

इस प्रकार भगवती वामेश्वरी (व्योमवामेश्वरी) जो चिति शक्ति ही है। संसार का वमन करती हैं। वे खेचरी रूप के द्वारा चिदाकाश में विचरण करती हुई प्रमाताओं के रूप में, गोचरी रूप द्वारा सारे अन्त: करणों के रूप मेंए दिक् चरी रूप द्वारा सब बाह्य

इन्द्रियों के रूप में, और भूचरी रूप द्वारा सारे पदार्थों एवं विषयों के रूप में प्रकट होती हुई, जीव दशा (पशु दशा) में शून्य पद में विश्राम करती है। अर्थात् आत्म स्वरूप को छिपा देती हैं। खेचरी शक्ति समूह के द्वारा गगन स्वरूप को छिपाती हुई कलादि शक्ति रूप में अल्पकर्तृत्वशक्ति रूप में अवभासित होती है। गोचरी शक्ति समूह द्वारा अभेद निश्चयात्मकता जो पारमार्थिक स्वरूप है उसे छिपाती है और अन्त:करण (मन, बुद्धि) अहंकारद्ध रूप में प्रकाशित होती है।

दिक् चरी शक्ति समूह द्वारा अभेद को प्रकाशित करने वाले पारमार्थिक स्वरुप को छिपाकर बाह्य इन्द्रिय देवता रूप में प्रकट होती है जिसका प्रधान व्यापार है भेद देख नर भूचरी शक्तिसमूह के द्वारा अपने 'सर्वात्मय स्वरूप' को छिपा कर पशु रूप जीव को मोहित कर चारों ओर के विभिन्न पदार्थों और विषयों को अपने से भिन्न पृथक् पृथक् रूप मे दिखलाई देने लगते हैं ऐसा वह स्वभाव कर देती है। यह सब वामेश्वरी विविध रूपों द्वारा करती हैं।

क्रम दर्शन की प्रवृति पञ्चात्मक है।

शिव की 5 शक्तियाँ है:- 1. चित् 2. आनन्द, 3. इच्छा 4. ज्ञान, और 5. क्रिया ।

शक्ति के 5 रूप है- 1. विमर्श, 2. बिन्दु, 3. नाद, 4. स्फोट और 5. शब्द

दिक्चरी शक्ति के स्वरूप है - 1. वामे श्वरी, 2. खेचरी, 3. गोचरी, 4. दिक्चरी, 5. भूचरी

क्रम दर्शन ने वाक् की 5 अवस्थाएँ मानी है। 1. परा, 2. सूक्ष्म, 3. पश्यन्ती, 4. मध्यमा, 5. वैखरी

इस प्रकार इन शक्तियों को साधक क्रम दर्शन में समझता है और मानता है। क्रम दर्शन राजयोग से सम्बन्धित है। शाक्तोपाय प्रधान है। यहाँ सतर्क की प्रमुख सहायता है। अहम् (मैं) की अनुभूति व्यवहारिक धरातल पर वस्तु परक होती है। सत्तर्क कहता है जो विकल्प है उसे हटाना है और तब तक हटाते जाना है जब यह शुद्ध स्वरूप में आभासित होने लगे। यहीं है सतर्क जो साधन है विकल्पों के समापन का यह सत्तर्क आत्मानुमन कराने वाले योग के षडंग में गिना गया है, (तं. आ. 3/15)। सत्तर्क गुरु तक पहुँचाता है। यह शुद्ध विद्या है इसे परम शिव की इच्छा ही समझी जा सकती है।

क्रम मार्ग मानता है- मन और प्राण एक दूसरे पर आश्रित हैं। प्राण पर अधिकार हो जाय तो मन वश में हो जायगा। मन पर अधिकार हो जाय तो प्राण पर नियन्त्रण स्वत: ही हो जायगा।

आचार्य अभिनव गुप्त ने तन्त्रालोक में इस संबन्ध में कहा है कि कोई व्यक्ति अपने चित्त को, अपनी चेतना के स्वरूप आत्मा पर, पूर्ण रूप से केन्द्रित कर ले तो प्राण एवं अपान अपना कार्य बन्द कर देते हैंए उदान प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करके ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाता है और व्यक्ति को अपने भीतर आत्म प्रकाश की अनुभूति होती है, उसे अपने स्व-रूप की उपलब्धि हो जाती है। बन्ध नहीं रहता है। और यही मोक्ष कहा जाता है (तं. आ. 3/96)। पूर्व में कहे गये 5 शक्ति चक्रों में से चार चक्रेश्वरी ही अपने विविध रूपों में 12 काली रूप से कही जाती है। इन 12 कालियों की उपासना समर्थ गुरु से प्राप्त क्रम-शास्त्र ने भुक्ति और मुक्ति की प्रदायी बताया है। इस की विधि को अंगों के साथ विस्तार से आचार्य ने तन्त्रालोक में कहा है।

पूर्व में आचार्य द्वारा अपने समय में प्रचलित त्रिक, क्रम और कुल इन तीन प्रमुख दर्शनों में त्रिक् और क्रम शास्त्रों पर उनके योग दान की अति संक्षिप्त चर्चा हो चुकी है। आचार्य ने इन दोनों शास्त्रों पर विस्तृत चर्चा अपने 'तन्त्रालोक, तन्त्रसार और ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी' ग्रन्थों में यथा स्थान की है जिसका आप कुछ साधारण परिचय प्राप्त कर चुके हैं।

- नूतन विहार कालोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)
मो. 79099 30700

लक्ष्मीनारायण पयोधि

गुफा ओंकार

नटखट नटी-सी
नर्मदा की
लीला मुद्राओं को
निहारती
सहस्राब्दियों से
शीश पर शिवज्योति
अंतर में
सीलते
अंधेरे सन्नाटे को भजती
ध्यानस्थ योगिनी
गुफा ओंकार

ओंकारेश्वर में आदि शंकराचार्य की गुफा देखकर

शंकराचार्य

तुम्हारी उपस्थिति के
आभास मात्र से दीप्त मन
कोटि सूर्यों के आलोक से
भर उठी
सीली अँधेरी गुफा
वनफूलों की सुगंधों से
दीवारों से झरती
जलधाराओं से
निनादित होने लगे सिद्ध मंत्र
सहस्राब्दियों से
बदल गई क्षणांशे में
शंकर जगद्गुरु
तुम्हारी ज्योति से
एकाकार मेरी आत्मा
अद्वैत का दिव्य रूप

ओंकारेश्वर की गुफा में एक अनुभूति

आलेख

गोकुल-संस्कृति

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

गोकुल एक गाँव का नाम है परन्तु श्रीमद्भागवत से लेकर सूर सागर तक इस शब्द का प्रयोग व्रज के ऐसे समाज के अर्थों में हुआ है, जिसके जीवन का आधार गो-पालन है। गोकुल उस समुदाय का नाम है जो गाय पर निर्भर था और गाय ही जिसका धन था। गायों की संख्या के आधार पर वहाँ आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती थी। आज भी लोकगीत गाये जाते हैं' नौ लख धेनु नन्दबाबा के नित नयो माखन होय। इस समाज की जीवन पद्धति के केन्द्र में गाय थीं।

इतिहासकारों ने विश्व इतिहास को चार समाजों में विभक्त करके देखा-परखा है-वन्य समाज, पशुपालक समाज, कृषि समाज तथा औद्योगिक समाज । पशुपालक समाज दुनियाँ के प्रत्येक देश में कभी न कभी वहाँ की मुख्य जीवनधारा के रूप में विद्यमान रहा है और इसका प्रमाण उन देशों की लोकवार्ता में वहां के लोकगीत, लोककथा, लोकविश्वास और रीतिरिवाजों में गाय की प्रमुखता के रूप में विद्यमान है। परन्तु भारतवर्ष में गोकुल संस्कृति इतनी सशक्त, व्यापक और प्रभावशाली रही है कि आज भी गोरक्षा के प्रश्न पर राष्ट्रव्यापी आन्दोलन छिड़ जाता है वास्तव में गोकुल एक संस्कृति का पर्यायवाची है।

गोकुल का धर्म: गोरक्षा

गोदान, गोचारण, गोरक्षा, गोसेवा और गोपालन के साथ दिलीप, वशिष्ठ, रघु नृग, पृथु और विक्रमादित्य जैसे सम्राटों और ऋषियों के नाम जुड़े हुए हैं। कृष्ण तो गोकुल का लाड़ला है ही। गोकुल संस्कृति में ऐसी अनेक लोककथायें हैं। जिनके नायकों ने गायों की रक्षा के लिये युद्ध किया था और गायों की रक्षा के लिये प्राण समर्पित कर दिये थे । अष्टछाप के कवि कुम्भनदास के पुत्र कृष्णदास जब गाय को बचाने के लिए दौड़ पड़े तो गाय तो लपककर खिरक में चली गयी परन्तु कृष्णदास सिंह की पकड़ में आ गये ।

गोवर्द्धन: इन्द्र से बड़ा देवता

गोकुल संस्कृति में गाय मुख्य देव है। वह कामधेनु है। उसके अंग प्रत्यंग में कोटि-कोटि देवताओं का निवास है। गोकुल संस्कृति में पृथ्वी का रूप गाय का रूप है और उसका विश्वास है कि जब-जब धरती पर भार बढ़ेगा, तब-तब पृथ्वी गो का रूप धारण करके प्रभु के पास पुकार करेगी। गोकुल संस्कृति में चूल्हे पर सिकी पहली रोटी 'गो-ग्रास' है। गोकुल -संस्कृति के देवता गाय से सम्बन्धित है। गोपाल, गोपीश्वर, साक्षीगोपाल, गोपालसुन्दरी के साथ ही गोवर्द्धन इसलिये पूज्य है कि वह गायों की वृद्धि करने वाला है और इसीलिये वह इन्द्र से बड़ा है ।

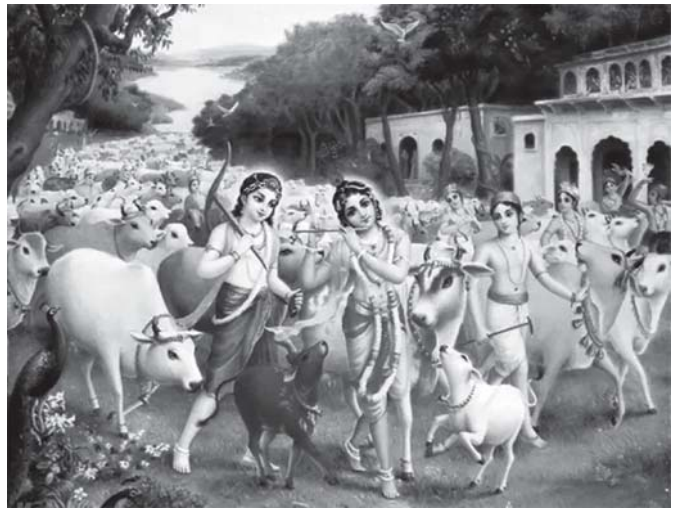

गोविन्द अभिषेक

स्वयं कामधेनु अपने दूध की धारा से गोविन्द का अभिषेक करती है और यह गोविन्दाभिषेक गोकुल संस्कृति का इतना प्रबल अभिप्राय है कि मूर्तियों के प्राकट्य की कथाओं में गाय द्वारा दूध की धार चढ़ा आना एक प्रमुख घटनाक्रम है। श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता में सद्दू पांडेय की गाय घूमर गायों के समूह में न्यारी होकर गिरिराज के ऊपर चढ़कर श्रीनाथजी के मुखारविन्द पर दूध स्रवा आती थी।

गोकुल संस्कृति के उत्सव त्यौहार

गोकुल संस्कृति में बगला चौध, ओघद्वादशी जैसे व्रत किये

जाते हैं, जिनमें सवत्सा गो की पूजा होती है तथा गाय सम्बन्धी कहानी कही जाती है। गोपाष्टमी' गोकुल संस्कृति का प्रमुख उत्सव है।

गोकुल संस्कृति की गाथा ब्रज धरती पर

ब्रज की धरती पर कुण्ड-सरोवर-कूप, वन और गाँवों की लिपि में गोकुल संस्कृति की जो गाथा लिखी हुई है, उसके दर्शन हम गोबिन्द कुण्ड, सुरभी कुण्ड, छछियारी देवी, छाछ कुण्ड, गोप की अथांई, हरजी ग्वाल का पोखर, गोपी कूप, दोहिनी कुण्ड, गो घाट, गोचर भूमि, बहुला गाय का मन्दिर, ग्वाल कुण्ड, क्षीरसागर, पयसरोवर, बच्छवन और बच्छगाम में कर सकते हैं।

हरे हरे गोबर अँगन लिपाओ सुघड़ पट मालिनियाँ

यह कथा गोकुल संस्कृति की है जिसमें स्वयं लक्ष्मी गाय से अपने श्रीअंग में स्थान देने का अनुरोध करती हैं और गाय उन्हें गोबर में निवास करने का आदेश देती है । यही कारण है कि हरे-हरे गोबर में लीपकर की आँगन में गजमोतियों के चौक पूरे जाते हैं। गोबर के बिना कोई अनुष्ठान हो ही नहीं सकता। छटी से लेकर, सतिया, गोवर्धन, स्याहू, साँझी, नाग, गौर, घरगुली तथा देवी तक की स्थापना गोबर से ही की जाती है।

पंचगव्य और पंचामृत

गोकुल संस्कृति में गोरोचन का पवित्र तिलक है, वहीं मस्तक पर गोरज शोभित है। पंचगव्य और पंचामृत गोकुल संस्कृति की ही देन है ।

क्षीरसागर और समुन्द्र मन्थन

पुराणों में पृथ्वी दोहन, क्षीरसागर और समुद्र-मंथन ये तीन महत्वपूर्ण अभिप्राय (Motif) है। इनका सम्बन्ध गोकुल संस्कृति से है। गोदोहन तथा दधिमंथन इनका आधार है। दूध के समुद्र का अभिप्राय गोकुल संस्कृति के अतिरिक्त और कहाँ होगा ? गोकुल में ही दूध के पनारे बहने, दधिकाँदा, गोरस की कीच होने और दूध के पोखरों की परिकल्पना है 'दूधन ते पोखर भरी घीअन जम गयी पार'

पारिवारिक सम्बन्ध

गोकुल संस्कृति में गाय से पारिवारिक सम्बन्ध है । वहा माँ है। उसका और दूध का मोल नहीं किया जाता । व्रज के परिवारों में जब कोई त्यौहार खोटा हो जाता है, तब वह या तो बहू बेटी के यहाँ पुत्र उत्पन्न होने पर उठता है या फिर गाय के बछड़ा उत्पन्न होने पर। विश्वास दिलाने के लिये गाय के पेंड़ भरे जाते हैं। बेटे और बेटी को बछड़ा और बछिया संबोधन किया जाता है तब यहाँ ध्यान देने की बात है कि बंट बेटी या वछरा-बछिया में अनुराग का भाव किस शब्द में भारी है।

गोकुल में लोकविश्वास

गोकुल संस्कृति का विश्वास है कि गाय की पूंछ का झव्वा हिलता है तो सारे रोग दूर हो जाते हैं। बालक को नजर लग जाती हैं तो लोकांगना गाय की पूँछ से झारा देती हैं। मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक का गाय के पुत्र के रूप में स्वीकार करने का शान्ति- अनुष्ठान होता है। गाय का दर्शन स्वप्न में भी मंगल का हेतु है ।

बाबा नन्द तो ठाडे खिरक में

पितृश्वरों की तृप्ति के लिये श्राद्धों में गोग्रास दिया जाता है। जितने प्रकार के दान है, उन सबमें गोदान इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक माना गया है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विभिन्न संस्कारों में, विभिन्न अवसरों पर गोदान अनिवार्य है। 'बाबा नन्द तो ठाडे खिरक में कर गउअन कौ दान ।' विवाह में कुशा लेकर उनमें गाँठ लगाकार कन्यादाता वर के आमने-सामने परस्पर उठे हाथों में पकड़ा देते हैं। गाँठ लगे कुश श्यामा गौ और उसके बड़छे के प्रतीक हैं। गोकुल के मन में यह भाव सूत्र घर किये बैठा है कि जीवन के बाद भी गाय स्वर्ग का हेतु तथा पुनर्जीवन में मंगल का निमित्त है। वैतरणी पार करने का एक ही उपाय है गाय की पूँछ पकड़ करके ही वैतरणी के पार जाया जा सकता है।

गोकुल संस्कृति मानसिकता

गोलोक की अवधारणा गोकुल संस्कृति का ही विकास है। गाय भौतिक रूप में ही जीवन की रिक्तता को नहीं भर देती, वह जीवन की दृष्टि भी देती है। गाय की ऋजुता ही गोकुल संस्कृति की जीवन-दृष्टि है। सुरही या बहुला गाय का गीत गोकुल संस्कृति का राष्ट्रगीत है तथा व्रज के साथ ही वह अन्य जनपदों में प्रचलित हैं। कजरी वन से चलकर सुरही गाय नन्दन वन में चरने गयी और साँझ हो गयी, तब लौटने लगी। वहाँ ऊंची सी पूँठरी पर एक सिंह बैठा हुआ था । बोला -री गाय, तैने मेरे द्वारा रक्षित वन में प्रवेश क्यों किया ? अब मैं तुझे नहीं जाने दूँगा । गाय ने कहा- खिरक में मेरे बछरा रंभा रहे होंगे, में एक बार उनसे मिल आऊं। मैं वचन देती हूँ, लौटकर आ जाऊँगी। जब बछड़ों से सुरही ने सारी बातें बतायीं तो वे वोले- ''बचनन की बींधी दूधा ना पीयें हो माय'' जब आगे। आगे बछड़ा तथा पीछे पीछे सुरही गाय सिंह के पास आये तो बछड़ा बोला-

आओ रे मेरे सिंह मामा पहले भखौ मोय,
ता पीछे या माऐ बिनासिए हो माय।

गाय की इतनी महिमा के बाद गाय का जीवन लोकगीत की इस पंक्ति में साकार हो गया है। विदा के समय बेटी अपने बाबुल से कहती है–

हम तो रे बाबुल तोरे खूँटा की
गइयाँ, जित हाँकौ हँकि जाँय।

भाषा पर गोकुल संस्कृति का प्रभाव

गोकुल –संस्कृति में समय की संज्ञा भी गाय की दैनिक चर्या के आधार पर होती है । गौधूलि का समय इतना शुभ और शकुनयुक्त है कि विवाह की लग्न प्राय: गोधूलि के समय की होती है। गोकुल संस्कृति के प्रभाव से ही भाषा में दुहैया, दोहनी, दुहामनी, लहड़े, चंवर, दूधाधारी, रंभाना, डकराना, गोखुर, गोमुख, जैसे शब्द बनते हैं और इस प्रकार के मुहावरों और कहावतों का प्रचलन होता है– गऊ कौ जायौ, गऊ होना, चौमासे को गोबर, दूध, पूत, सींग दिखाना, भली भयी मेरी। मटकी फूटी दधि बेचन सों छूटी, गोरस बेचत हरि मिलै एक पंथ द्वै काज, गीदी गाय गिलोंदे खाय, गोबर क्यों कियौ कि गऊ के जाये हैं , हरियाई के संग में कपिलाई को नास, दुधारू गाय की लात सही जाएं, चलनी में दूध दहै करमन की दोस दे । लक्षण के आधार पर गायों के विभिन्न नाम गोकुल में प्रचलित होते हैं कारी, कजरी, करोंदी, कबरी, कपिला, गोरी, जगी, टीकुल, धौरी, धूमरि, फुलही, वगुरेंदी, स्यामा, पियरी, राती । इत्यादि ।

गोकुल की सौंदर्य चेतना

दूध दुहने और दही बिलोने की मधुर ध्वनि के साथ गोकुल का सबेरा होता है, तो बड़ी–बूढ़ी गाती हैं ,

गईया जागे बछरा जागे जागे रे दूधन के पिबइया।
खूँटन सों बछरा छुटे गैयन रहे हैं चुखाय,
प्रभु के वचन सुनि कूकरा ।

गोकुल की सांझ का चित्र होता है साँझुलिया होइ रम्यानी गैया बच्छा जो मिलें। बाखर में दूध दुहने के समय गोकुल के इन रमणीय दृश्यों को देखकर कौन मुग्ध न हो जायेगा आमें सामें बैठे दोऊ दोहत करत ठठोर। दूध धार धरनी गिरत। दृग भये चंद चकोर । गोकुल में विवाह हो और गायों के गीत न हो ? गाय तो गोकुल की सौंदर्य चेतना है। जो तू सुरही अत बड़ी धुइयैगी, जसरत दरबार व्याहुलरौ कहिए। ए दुहि दीजो कोसल्या के हात, व्याहुलरौ कहिए।

के तैनें प्यासी गउअ बिड़ारी ?

गोहत्या सबसे बड़ा अपराध है। इतना ही नहीं गायों को बिड़ारना भी पाप है। जन्म के गीतों में स्त्रियाँ गीत गाती हैं। प्रसव की पीड़ा अधिक क्यों होती हैं, कै तैने प्यासी गउअ बिड़ारी, कै मारे भनिज के मान ।

छीकें पे दधि धरौ ।

गोकुल के भोजन व्यंजनों में दधि, दूध, मक्खन और मलाई से अधिक सुन्दर और क्या होगा ? प्रात:काल ही मैया कहती है छींके पै दधि धरौ है ऊखल चढ़ि उतार लेउ। सुरई का घृत तो देवताओं को भी प्रिय है ,सुरै गऊ के घिरत अरे, भवन में दिवला जोरि धरे ।

चरों नित नन्द की धेनु मझारन गोकुल संस्कृति में जीवन की सार्थकता गायों की सेवा ही मानी गयी है । इस देह की माटी हो और उस पर दूब उगे तथा गाय उस दूब को चुगे– जा नर देही पे दूब जमेगी सो रुगि चुगि जाँइगी हरि की गइयां ।

छीतस्वामी अहीर की जात में पुनर्जन्म की इच्छा करते हैं और रसखान गोकुल के ग्वारिया बनना चाहते हैं और ऐसी गाय बनना चाहते हैं – चरों नित नन्द की धेनु मझारन ।

संस्कृतिशास्त्र का सिद्धांत है कि जब दो जन मिलते हैं, तब दो संस्कृतियाँ मिल जाती हैं।

अब आप ब्रजमंडल को देखिए, यहाँ लाखों–लाखों नर–नारी विभिन्न प्रांतों से, विभिन्न जनपदों से, विभिन्न भाषा, विभिन्न वेशभूषा के साथ आते हैं। वे भिन्न–भिन्न दायरों से आते हैं, दायरों के साथ आते हैं, पर यहाँ आकर दायरे कहीं खो जाते हैं और वे सब–के–सब ब्रजराग में डूब जाते हैं। समष्टि जीवन का यह अविच्छिन्न प्रवाह एक समष्टि–संस्कृति में अंतर्भुक्त हो जाता है और अंतर्भुक्ति की यह प्रक्रिया न जाने कब से चल रही है।

हम असम, उड़ीसा, बंगाल की लोकसंस्कृति को भूलेंगे तो राधा महाभाव को कैसे पहचानेंगे ? हम तेलुगु संस्कृति को भूलेंगे तो कैसे जान सकेंगे कि गोवर्धन के कुनबारे में मूलत: कुंडवर्षा शब्द है तेलुगु का । वल्लभाचार्य आंध्र में गोदावरी तट के तेलंग थे न ! विष्णु कथाओं का तो केंद्र तमिलनाडु है। जब विष्णुकथा कृष्णलीला में अंतर्भुक्त हुई, तभी तो भागवत– संस्कृति का अवतार हुआ। वे मथुरा के लोग ही तो थे, जिनकी एक शाखा जरासंध के आक्रमण के समय द्वारका पहुँची और दूसरी शाखा ने दक्षिणी मथुरा (मदुरै) बसाया। भागवत की भूमिका में भक्ति कहती है कि मेरा जन्म द्रविड़ देश में हुआ, कर्नाटक में बड़ी हुई, सारे देश में घूमते हुए वृंदावन आई। वृंदावन में आकर मुझे नया सौंदर्य प्राप्त हो गया।

ब्रज की संस्कृति की कोई भी चर्चा अधूरी ही रहेगी, जिसने भक्ति के इस यात्रा – भूगोल को नहीं जाना और संस्कृति की उन अंतर्धाराओं को नहीं पहचाना, जो ब्रज की संस्कृति में अंतर्भुक्त हुईं।

ब्रज संस्कृति की अंतर्धाराओं का साक्षात् दर्शन करने के लिए

केवल ब्रज के जनपदीय जीवन में उतरना ही पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए हमें संपूर्ण भारतवर्ष के प्रदेशों और जनपदों के लोकजीवन की परिक्रमा करनी होगी। ब्रज की संस्कृति भारत के शतसहस्र कोटिजन के जीवन प्रवाह, मिलन-बिछुरन, आवागमन, द्वंद्व और समायोजन का परिणाम है।

ब्रजसंस्कृति एक समुदाय, एक आनुवंशिकता अथवा एक युग की रचना नहीं है, वह मानव इतिहास की सतत प्रक्रिया है। ब्रज में केवल गोप, यादव और ऋषियों का ही निवास नहीं था ,यहाँ असुर, दानव, नाग और यक्ष भी थे। वैदिक-संस्कृति, भागवत-संस्कृति, गोप संस्कृति, कृषि संस्कृति, यक्ष-संस्कृति, नाग-संस्कृति, दैत्य-संस्कृति से लेकर इसलामी संस्कृति तक के अनेक सांस्कृतिक तत्त्व ब्रज की संस्कृति में व्याप्त हैं।

विख्यात कलाविद् आनंद कुमार स्वामी ने वृक्ष-पूजा की परंपरा में यक्षों की संस्कृति को पहचाना था। कृष्णलीला में वृक्षों को उखाड़ने की लीला और यमलार्जुन के द्वारा कृष्ण की स्तुति वास्तव में गोप-संस्कृति और यक्ष-संस्कृति के द्वंद्व समायोजन की गाथा है। ब्रज के लोक साहित्य में बावन वीरों का अभिप्राय बहुचर्चित है। यक्षों को वीर कहा जाता था। डॉ. सत्येंद्र ने जाहरपीर के अनुष्ठान में सिर पर देवता के आने, नागों से संबंध, यक्ष-ध्वज, यक्ष-प्रश्न, जागरण और वीरपूजा में गूगल के महत्त्व को यक्ष-संस्कृति के प्रभाव के रूप में स्पष्ट किया है।

भांडीर नाम के यक्ष का वन ब्रज चौरासी कोस में है। जाख या जखैया की पूजा यक्ष-पूजा ही तो है।

महावन में जखैया की पूजा में घेंटा की बलि दी जाती है और उसका पौरोहित्य दलित के पास है। इसी प्रकार बरमदेव की पूजा यक्ष-पूजा ही है।

मधुवन मधुदैत्य का वन था। होलिका हिरण्यकशिपु की बहन दैत्यवंश की कुलदेवी है। ब्रज के गाँवों में जब होलिका की छोटी बहन घरगुली की पूजा होती है, तब अनुष्ठान -गीत गाया जाता है''राजा बलि के द्वारा मची रे होरी। मथुरा में राजा बलि का टीला है, किंतु क्या केरल के ओणम से उसका संबंध सूत्र नहीं जुड़ा है, जिस त्योहार पर राजा बलि अपनी प्यारी प्रजा के दर्शन करने के लिए प्रतिवर्ष आते हैं। दैत्य-संस्कृति का दूसरा सूत्र वृंदा है, कालनेमि की बेटी और जालंधर दैत्य की पत्नी वृंदा ने विष्णु को शिला होने का शाप दिया, प्रतिक्रिया में विष्णु ने वृंदा को जड़ होने का शाप दिया। वृंदा तुलसी बनी और विष्णु शालिग्राम बने कार्तिक का पूरा महीना तुलसी पूजा का महीना है तुलसा महारानी नमो-नमो हरि की पटरानी नमो नमो।''

लोकवार्ता के अध्येता जानते हैं कि लोकमन एक व्यक्तित्व पर दूसरे व्यक्तित्व का तथा दूसरे व्यक्तित्व पर तीसरे व्यक्तित्व का अध्यारोपण करता है। तुलसी की अनेकानेक कथाएँ वृंदा की कहानियों में अंतर्भुक्त हैं। इसी प्रकार यमुना पर कालिंदी का अध्यारोपण है।

ब्रज की कितनी ही लोक कहानियों का नायक या प्रतिनायक दानव है। उसकी बेटी वीर राजकुमार से प्रेम करती है। वह राजकुमार को बता देती है कि दानव के प्राण-सूत्र तोते में हैं। राजकुमार तोते की गरदन मरोड़ देता है, दानव मर जाता है। दानववंशी कन्या विवाह करके राजकुमार के साथ महल में आ जाती है। दानव रक्त आनुवंशिकी में आया और दानव संस्कृति के तत्त्व लोकसंस्कृति में अंतर्भुक्त हो गए। मथुरा का राज्य गणराज्य था, चार कुल थे-अंधक, वृष्णि, भोजक और यदु । लेकिन लोककथा ने बताया कि उग्रसेन की पत्नी यमुना-स्नान करने गई, उस समय अँधेरा था और एक दानव ने उसके साथ संबंध बनाया। कंस का जन्म उसी गर्भ से हुआ था।

मथुरा में नागटीला है। वृंदावन में कालियाघाट है, जिसका मिथक सूत्र कालिय नाग से जुड़ा है। कालिया

नाग के नाथने से संबंधित अनेक गीत ब्रज में गाए जाते हैं। श्रीकृष्ण ने कालिय नाग से युद्ध किया और नाग-पत्नियों की प्रार्थना पर उसे जीवित छोड़ दिया तथा आज्ञा दी कि तू अपने भाई पुत्र और स्त्रियों के साथ यहाँ से समुद्र की ओर चला जा वहाँ से कालिय नाग अपने कुनबे के साथ बंगाल में चला गया। सावन के महीने में ब्रज के गाँवों में भर्रनी या मैदानी नवलदे गाई जाती है । वासुकि की बेटी और तक्खे (तक्षक) की बहन नवलदे। नवलदे हस्तिनापुर के अमृतकूप से जल भरने जाती है तो परीक्षित के सौंदर्य पर मुग्ध हो जाती है। प्यार का ज्वार विवाह में परिणत होता है, किंतु तक्खे इसे सहन नहीं कर पाता। वह परीक्षित को मारकर अपमान का बदला लेता है। इस घटना की प्रतिक्रिया जनमेजय के द्वारा नागविध्वंस के रूप में होती है। जनमेजय का नागयज्ञ इतना उग्र था कि एक जमाने में समृद्धि के शिखर पर पहुँची हुई नाग जाति अपनी स्वतंत्रता को छोड़कर अन्य जातियों में विलीन हो गई और उसके सांस्कृतिक-सूत्र, देवतत्त्व और पूजातत्व कृष्ण, बलराम, विष्णु, शिव, पार्श्वनाथ, जाहरपीर, गोरख तथा पीपल देवतत्त्व में अंतर्भुक्त होकर ब्रज की व्यापक संस्कृति के अंग बन गए।

नागपंचमी की व्रतकथा के साथ ही नागलोक, अमृतकुंड और नागों के वैभव सम्बन्धी विविध अभिप्राय ब्रज की लोक

कहानियों में हैं। कृष्ण कथा के साथ शेषनाग का अभिप्राय जुड़ता है। जब वसुदेव नवजात शिशु को सूप में रखकर यमुना नदी पार कर रहे हैं, तब शेषनाग अपने फण का छत्र फैलाकर बालक की रक्षा करता है। बलराम तो शेषनाग के अवतार ही मान लिये गए। ब्रजमंडल के भिन्न-भिन्न स्थलों से जो नागमूर्तियाँ मिली हैं, वे यहाँ के राजकीय संग्रहालय में मौजूद हैं। सोंख की खुदाई में प्राप्त वासुकि नाग की प्रतिमा कितनी भव्य है। ये सारे मिथक-सूत्र ब्रज की लोकसंस्कृति में नाग संस्कृति की व्याप्ति के प्रमाण हैं।

हम चित्रकला को देखें- मुगल शैली, दक्खनी शैली, मेवाड़ शैली, किशनगढ़ शैली, काँगड़ा शैली, ओडिसी शैली, असम की गोलपारा शैली, बंगाल की कालीघाट शैली, सैकड़ों चित्र देश-विदेश के कला संग्रहालयों में मौजूद हैं, जिनके रंग और रेखाओं में चित्रकारों ने ब्रज के सांस्कृतिक परिदृश्य को उभारा है। हम नृत्य की बात करें तो मोहनीअट्टम हो या ओडिसी, कुचिपुडि हो या मणिपुरी, गरबा हो या कथकली, रास हो या होली, सभी की मुद्रा और गतियाँ ब्रज की ताल पर नाच रही हैं।

- 1828, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेन्टर-13-17
पानीपत-132203 (हरियाणा)
मो. 9996007186

इस बार की आवरण चित्रकार डॉ. ममता रोकाना

मैंने ड्राइंग और पेंटिंग के एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में अपनी सेवा के 30 साल पूरे कर लिए हैं। वर्तमान में मैं राजकीय महाविद्यालय, सांगानेर जयपुर में कार्यरत हूँ।

मैं विद्यार्थी जीवन से ही कला प्रतियोगिताओं, कला शिविरों, कला प्रदर्शनियों में नियमित रूप से भाग लेती रही हूँ।

इसके साथ ही, मैंने एकल प्रदर्शनियों का आयोजन किया है और शहर और राज्य स्तर के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर कई समूह प्रदर्शनियों का हिस्सा रही हूँ।

वर्तमान में, मैं विशेष रूप से कैनवस पर ऐक्रेलिक रंग के साथ प्रकृति चित्रों पर ध्यान केंद्रित कर रही हूँ क्योंकि यह चित्रण करने के लिए मेरा पसंदीदा विषय है।

कुछ साल पहले मैंने मांडना की राजस्थानी पारंपरिक लोक चित्र शैली पर काम किया था और लंबे समय तक मैंने अपने कैनवास चित्रों पर विभिन्न सामग्रियों के साथ मांडना के रूपांकनों का चित्रण किया।

उसके बाद मैंने स्त्री मनोभावों पर एक श्रृंखला शुरू की, महिलाओं के व्यक्तित्व के विभिन्न रंग, उनकी भावनाओं के विभिन्न पहलू, उनकी सुंदरता को रेखाओं और रंगों के साथ कैनवस पर व्यक्त किया!

पिछले 2-3 वर्षों से मैं प्रकृति और उसकी पूरी सुंदरता और शांति को अपने चित्रों का विषय बनाया है !, मैंने प्रकृति के साथ जीने की अपनी गहरी इच्छा के समर्पण के रूप में प्रकृति के तत्वों जैसे हरी पत्तियों, कमल के तालाब, मशरूम और पानी की लहरों के साथ काम करना शुरू किया है !

राजस्थानी चित्र शैली की विविधतापूर्ण रेखाओं ने मुझे हमेशा ही प्रभावित किया है। मेरी नवीनतम चित्र श्रृंखला में,जिसका नाम SERENITY है , मैंने रेखांकन को प्रमुख स्थान दिया है !

मेरा मानना है कि चित्रकार सदैव अपने आस पास के परिवेश से प्रभावित होता है और निरंतर बदलते परिवेश के कारण ही कलाकार की कला, उसके विषयों एवं कार्यशैली में भी बदलाव आते रहते है!

धन्यवाद!

- सह आचार्य, ड्राइंग एंड पेंटिंग
शासकीय महाविद्यालय, सांगानेर, जयपुर (राज.)
मो. 8696909992

आलेख

क्रांतिकारियों का शहज़ादा: अशफ़ाक़-उल्ला खाँ

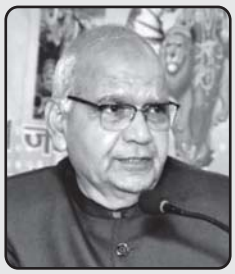

डॉ. धर्मेन्द्र सरल शर्मा

वतन हमारा रहे शादकाम और आज़ाद,
हमारा क्या है, अगर हम रहे, रहे न रहे ।

– अशफ़ाक़-उल्ला खाँ

वह दिखने में एक शहज़ादा लगता था। कद्दावर पठानी देह, खिला हुआ गोरा रंग, निहायत खूबसूरत चेहरा, चौड़ी और उभरी हुई पेशानी, आँखों में एक खुशनुमा चमक, चट्टानी सीना और पतली कमर, यह था उसका व्यक्तित्व। कमर और सीने के अनुपात से वह शार्दूल के समान दिखाई देता था। आवश्यकता पड़ने पर दो-एक बार उसे राजकुमार की भूमिका भी अदा करनी पड़ी थी । राष्ट्रकवि श्रीकृष्ण सरल ने अपने महाकाव्य 'शहीद अशफ़ाक़-उल्ला खाँ' में उसके विचारों की बानगी इन पंक्तियों के माध्यम से दी है-

आज़ादी की लोगों को भीख नहीं मिलती
आज़ादी, दुश्मन से लड़कर ली जाती है,
जिन राहों पर छिड़का जाता है गर्म खून
उन राहों पर चलकर आज़ादी आती है।

अशफ़ाक़ के बल का अनुमान उसके क्रांतिकारी साथियों को तब लगा, जब काकोरी कांड में रुपयों से भरी हुई तिजोरी किसी से टूट नहीं रही थी । सब निराश हो चुके थे, तो अशफ़ाक़-उल्ला खाँ दोनों हाथों में घन लेकर तिजोरी पर पिल पड़ा और उसमें इतनी दरार पैदा कर दी कि हाथ डालकर रुपए निकाले जा सके।

अशफ़ाक़-उल्ला खाँ की मानसिक शक्ति का लोहा लोगों ने तब माना, जब औरों के गिरफ्तार हो जाने पर भी वह पुलिस के हाथ नहीं लग सका । अशफ़ाक़ काफी दूरदर्शी भी था। जब पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' के नेतृत्व में ट्रेन डकैती की योजना बनाई गई, तो अन्य क्रांतिकारियों ने उत्साह की झोंक में तत्परता से उसी योजना का समर्थन किया, पर केवल अशफ़ाक़-उल्ला खाँ ही एकमात्र क्रांतिकारी था, जिसने उस योजना का विरोध करते हुए कहा था-

''ट्रेन रोककर सरकारी खजाना लूट लेने के कारण क्रांतिकारी दल और ब्रिटिश हुकूमत में सीधा टकराव पैदा हो जाएगा, जो अभी ठीक नहीं है। सरकारी खजाना लूट लिए जाने के कारण वह सरकार को एक खुली चुनौती हो जाएगा और सरकार अपनी पूरी ताकत से हमें मिटाने में जुट जाएगी । ऐसे हालात में हम लोग अपनी आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने के पहले ही खत्म हो जाएंगे और हमारा मकसद पूरा नहीं हो पाएगा । इसलिए मेरा

खयाल है कि हम लोग पहले अपनी बुनियाद को पुख्ता करें और फिर मौका पाकर हुकूमत से सीधे टकराने की बात सोचें । मैं यह भी ज़ाहिर कर देना चाहता हूँ कि मेरे कहने का मतलब यह न लिया जाए कि मैं इस एक्शन से पीछे हटना चाहता हूँ । अगर मेरी बात नहीं मानी गई और ट्रेन डकैती का काम हाथ में लिया गया, तो मैं अपने पूरे जोश के साथ उस में हिस्सा लूँगा।''

अशफ़ाक़-उल्ला खाँ की आशंका निर्मूल नहीं निकली! सरलजी के शब्दों में -

जिन्दा कौमें अपना हक लड़कर लेती हैं
मुर्दा कौमें माँगतीं, हाथ फैलाती हैं,
मुर्दा कौमें बतियातीं, इंतजार करतीं
जिन्दा कौमें, जो बनता कर दिखलाती हैं।

उसके चरित्र के सभी पक्ष बहुत उजले थे। गिरफ़्तारी से बचने के लिए वह गणेशशंकर विद्यार्थी का पत्र लेकर बहुत दूर जा निकला, जहाँ गिरफ़्तारियों की सरगर्मी नहीं थी। वह राजस्थान में एक अन्य क्रांतिकारी अर्जुनलाल सेठी के घर पहुँच गया और अपने विषय में सब कुछ सही बता दिया। अर्जुनलाल भी एक सच्चे क्रांतिकारी थे। उन्होंने कहा कि तुम हिंदू नाम धारण करके मेरे परिवार में रहो और यह बात केवल मेरे और तुम्हारे बीच रहेगी। तुम अविनाश नाम से एक व्यायामशाला का संचालन करने लगो।

अशफ़ाक़ कई दिन सेठी परिवार में रहा और गिरफ्तारी से

बचा रहा। सेठी की छोटी पुत्री अशफ़ाक़ के प्रति प्रेम-भाव रखने लगी और उसने अशफ़ाक़ को उससे अपनी शादी का इरादा भी बता दिया। अशफ़ाक़ ने कहा कि इसके लिए तुम्हें अपने पिताजी से ही बात करनी चाहिए । आशा ने अपने पिता को यथार्थ बताया, जिसे सुनकर अर्जुनलाल ने कहा कि यह युवक मुसलमान है और फरार क्रांतिकारी भी है । यदि गिरफ्तार हुआ, तो इसे फांसी की ही सजा होगी ।इतना जानकर भी आशा अपने इरादे पर दृढ़ रही ।

जब अशफ़ाक़ को आशा के इरादे का पता चला, तो उसने निश्चय किया कि एक सच्चा क्रांतिकारी होने के नाते, न तो मैं किसी को धोखा दूंगा और न ही किसी का जीवन बर्बाद करूँगा ।तब सेठी को एक पत्र लिखकर उनका घर छोड़ दिया और बिहार पहुँचकर अशफ़ाक़ लोक-निर्माण विभाग में एक बाबू के पद पर नियुक्त हो गया। अपनी योग्यता के कारण उसने सभी अधिकारियों का दिल जीत लिया और उसको इंजीनियरिंग की उच्च शिक्षा पाने के लिए रूस भेजा जाने लगा । अपना पासपोर्ट बनवाने के लिए जब वह दिल्ली पहुँचा, तो उसके चाचा-जात भाई ने ही इनाम के लालच में उसे गिरफ्तार करा दिया ।

अशफ़ाक़ को तोड़ने की पुलिस के अफसरों ने बहुत कोशिश की, पर वह टस-से-मस नहीं हुआ ।पुलिस अधीक्षक एनुद्दीन उसे बार-बार समझाते-

''तुम इन हिंदुओं के बहकावों में क्यों आ गए ।ये लोग तो अंग्रेजों को हटाकर अपना हिंदू-राज कायम करना चाहते हैं।''

एक दिन तंग आकर अशफ़ाक़ ने कह ही दिया, ''जनाब आप यह बात मुझसे आइंदा मत कहिएगा। अंग्रेजी-राज से हिंदू-राज कहीं बेहतर होगा और वह इस देश के लोगों का ही राज होगा, जबकि अंग्रेज लोग तो विदेशी हैं।''

जनाब अधीक्षक महोदय सिटपिटाकर रह गए।

अशफ़ाक़-उल्ला खाँ को अदालत ने फांसी की सजा सुना दी। जनता ने आंदोलन खड़ा किया और फैसले के विरुद्ध की जानेवाली अपील पर अशफ़ाक़ के हस्ताक्षर कराने चाहे । उनका उत्तर था- मैं परवरदिगार खुदाबंद के अलावा और किसी से माफी नहीं मांग सकता ।

एक दिन अशफ़ाक़ के वालिद साहब उसे समझाने फैज़ाबाद जेल में पहुँच गए और माफी मांगने के लिए कई तरह से समझाने लगे ।अशफ़ाक़ ने उनसे सवाल किया-

''क्या आप मानते हैं कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही भारत माता के बेटे हैं ?''

पिता ने हाँ में उत्तर दिया ।इसके आगे अशफ़ाक़ का कथन था -

''हिंदू लोग अपनी कुर्बानियों से यह सिद्ध करते जा रहे हैं कि वे भारत माता के बेटे हैं, क्योंकि एक भी मुसलमान ने अभी तक अपनी कुर्बानी नहीं दी ।मैं वह पहला मुसलमान बनना चाहता हूँ, जो अपनी कुर्बानी से यह सिद्ध करेगा कि मुसलमान भी भारत माता के बेटे हैं।''

अशफ़ाक़ की भावना को कविवर सरलजी अपने शब्दों में कहते हैं-

नौजवान मुल्क के, जो उनसे मेरा कहना
जो आग भरी दिल में, वे उसको धधकाएं,
दिख पड़े जहाँ भी जुल्मो-सितम खाक कर दें
अपनी लपटों से उन्हें करिश्मे दिखलाएं।

यह उत्तर अशफ़ाक़ के उज्ज्वल चरित्र का कितना बड़ा उदाहरण है ।आखिरकार वह 19 दिसंबर 1927 ईस्वी को फैज़ाबाद की जेल में फांसी पर लटका दिया गया ।फांसी के पहले उसने एक पत्र द्वारा गणेशशंकर विद्यार्थी को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और अंतिम दर्शन के लिए उन्हें लखनऊ स्टेशन पर बुलाया। अशफ़ाक़ बहुत अच्छा शायर था और उसकी पूरी शायरी देशभक्ति पर ही आधारित थी ।उसका यह शेर कितना प्यारा है-

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू फकत यह
रख दे कोई ज़रा सी खाक-ए-वतन कफन में।

जब अशफ़ाक़ के गले में फांसी का फंदा डाला गया, तो खुदा का नाम लेते हुए वह हंसते-हंसते फांसी के फंदे पर झूल गया। उसका शरीर मौन और निश्चेष्ट था, पर लग रहा था जैसे एक सदा-सी गूंज रही हो-''मुसलमान भी तो भारत माता की संतान हैं।''

अशफ़ाक़ और पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' में गहरी दोस्ती थी और वह अपना अधिकांश समय उनके साथ शाहजहांपुर के आर्य समाज मंदिर में ही बिताता था ।एक बार दंगाइयों का एक दल आर्य समाज मंदिर तोड़ने के लिए आगे बढ़ा, तो उनकी ओर अपनी राइफल की नाल सीधी करते हुए अशफ़ाक़ गरज उठा-

''मंदिर हो या मस्जिद, वह इबादतखाना होता है और उसके सम्मान की रक्षा हर नागरिक का कर्तव्य होता है । अगर किसी ने आगे कदम बढ़ाया, तो एक-एक को फोड़ कर रख दूंगा।''

अशफ़ाक़ के विचारों और व्यवहार देखकर हम यह कहने को विवश हो जाते हैं-

यदि सही किस्म के लोग किसी बस्ती में हों
वह बस्ती, बस्ती नहीं स्वर्ग बन जाती है,
यदि सही किस्म के लोग किसी बस्ती में हों
तो ईद-दिवाली साथ-साथ मन जाती है।

- मो. 9537060794

■

मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति

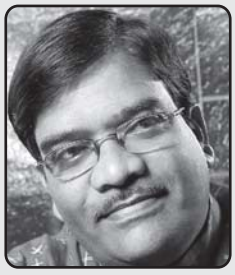

लक्ष्मीनारायण पयोधि

आदि संस्कृति शीर्षक से एक नया स्तंभ आरंभ किया जा रहा है। इस स्तंभ में जनजातीय संस्कृति के वरिष्ठ अध्येता-लेखक श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि हर बार आदि संस्कृति के किसी नये आयाम से परिचित करायेंगे। उल्लेखनीय है कि श्री पयोधि बस्तर जैसे सघन जनजातीय अंचल में पले-बढ़े हैं और लगभग 45 वर्षों से जनजातीय संस्कृति और भाषाओं से संबंधित अध्ययन-अनुसंधान कर रहे हैं।

- संपादक

जनजातीय आबादी के मान से देश का सबसे बड़ा राज्य होने के कारण मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध है। सच कहें तो यह संस्कृति इस प्रदेश की नैसर्गिक विरासत है, जिसमें निश्छल जीवन का आह्लाद और संघर्ष प्रतिबिंबित हैं। जनजातीय जीवनशैली में आलोकित आनंद हमारी ऊर्जा और उसका दैनंदिन संघर्ष हमारी प्रेरणा है।

'संस्कृति' शब्द अपने व्यक्तित्व की समग्रता में एक व्यापक अर्थबोध के साथ परिदृश्य में उपस्थित है। यह शब्द किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि समुदाय अथवा समाज की जीवनशैली, खानपान, परिधान, रहन-सहन, मान्यता, परंपरा, लोकविश्वास, धार्मिक आस्था, अनुष्ठान, पर्व-त्योहार, सामाजिक व्यवहार, नियम-बंधन, संस्कार, आजीविका के उद्यम आदि की विशेषताओं को प्रकट और रेखांकित करता है। इस पारिभाषिक स्थापना को जनजातीय संस्कृति के माध्यम से समझा जा सकता है।

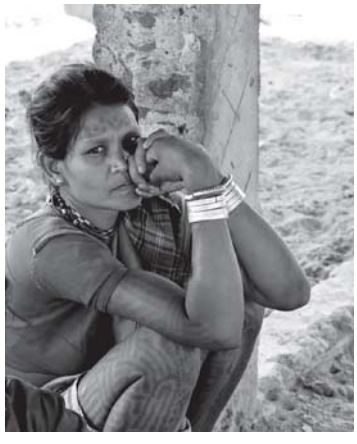

भौगोलिक दृष्टि से देश के केन्द्र में स्थित होने के कारण मध्यप्रदेश की सीमाएँ उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ राज्यों को छूती हैं। परस्पर भौगोलिक निकटता के कारण इन प्रदेशों के सीमावर्ती क्षेत्रों में आबाद जनजाति समुदायों

में सांस्कृतिक आदान-प्रदान और अनुकरण खूब हुआ है। पड़ोसी राज्यों से सांस्कृतिक समरसता के कारण उनके सबसे अधिक रंग मध्यप्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में बिखरे हैं। इसलिये इस प्रदेश की जनजातीय संस्कृति सप्तवर्णी इन्द्रधनुषी छटाओं से सुसज्जित है।

अगर आपने कभी किसी जनजातीय क्षेत्र का प्रवास किया हो, वहाँ कुछ दिन ठहरने का अवसर मिला हो, या फिर आप किसी जनजाति बहुल गाँव के निवासी हों ? तो आपकी स्मृति में यह मोहक दृश्य अवश्य अंकित होगा: ढोल की गमक के साथ निनादित मादल का उल्लास...टिमकी, ठिसकी, चुटकुलों, कुंडी, घंटी या थाली की संगत में दिशाओं को गुँजातीं बाँसुरी की स्वर-लहरियाँ....पाँवों में हवा के घुँघरू बाँधकर नृत्य-भंगिमाओं के साथ वृक्षों से लिपटतीं विभोर लताएँ....जंगल-पर्वत, नदी-झरनों का सम्मोहक संसार....रहस्यमय घाटियों से क्षितिज तक जातीं टेढ़ी-मेढ़ी अनगढ़ पगडंडियाँ और इन सबके बीच धड़कता जनजातियों का संघर्षमय जीवन।

मध्यप्रदेश के अधिकांश जनजाति समुदाय प्राय: वनों के

निकट निवास करते हैं। प्रकृति की रागात्मकता और लीला-मुद्राओं से उनका गहरा संबंध है। निसर्ग के लगभग सभी जीवनोपयोगी उपादान उनके आराध्य हैं। वे प्रकृति की छोटी से छोटी शक्ति में सर्वशक्तिमान की छवि पाते हैं। धरती, आकाश, सूरज, चंद्रमा, मेघ, वर्षा, नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु, पक्षी, सर्प, केकड़े-यहाँ तक कि केंचुआ भी उनकी श्रद्धा का पात्र है,क्योंकि महादेव को धरती के निर्माण के लिये उसी के पेट से मिट्टी मिली थी। पशु-पक्षी और वनस्पतियों में से अनेक उनके गोत्र-देवता के रूप में पूज्य तो हैं ही। आस्था का यह निश्छल रूप ही अनुष्ठानों की प्रेरणाभूमि है। पर्व-जात्रा, मेले-मड़ई, नृत्य-उत्सव, गीत-संगीत-सब परंपरा के रूप में आदिम आस्था का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संतरण ही है।

चित्र : लतिका वैष्णव

भील जनजाति समूह में हरहेलबाब या बाबदेव, मइड़ा कसूमर, भीलटदेव, खालूनदेव, सावनमाता, दशामाता, सातमाता, गोंड जनजाति समूह में महादेव, पड़ापेन या बड़ादेव, लिंगोपेन, ठाकुरदेव, चंडीमाई, खैरमाई, बैगा जनजाति में बूढ़ादेव, बाघदेव, भारिया दूल्हादेव, नारायणदेव, भीमसेन और सहरिया जनजाति में तेजाजी महाराज, रामदेवरा आदि की पूजा पारंपरिक रूप से प्रचलित है। पूजा-अनुष्ठान में मदिरा और पक्कान्न का भोग लगता है। भीलों के

त्योहारों में गोहरी, गल, गढ़, नवई, जातरा तो. गोंडों में बिदरी, बकबंदी, हरढिली, नवाखानी, जवारा, छेरता, दिवाली आदि प्रमुख हैं। कोदो, कुटकी, ज्वार, बाजरा, साँवा, क्का, चना, पिसी, चावल आदि अनाज जनजाति समुदायों के भोजन में शामिल हैं। महुए का उपयोग खाद्य और मदिरा के लिये किया जाता है। आजीविका के लिये प्रमुख वनोपज के रूप में भी इसका संग्रहण सभी जनजातियाँ करती हैं। बैगा, भारिया और सहरिया जनजातियों के लोगों को वनौषधियों का परंपरागत रूप से विशेष ज्ञान है। बैगा कुछ वर्ष पूर्व तक बेवर खेती करते रहे हैं।

जनजाति समुदायों के लोग अपने मकान प्राय: मिट्टी, पुआल, लकड़ी, बाँस, खाई, खपरैल, छींद या ताड़ पत्तों का उपयोग कर बनाते हैं। मकान अमूमन 30-35 फुट लंबा और 10-12 फुट चौड़ा होता है। कहीं-कहीं मकान के बीच में आँगन भी होता है। घर के एक हिस्से में गोशाला भी होती है। बकरियों के लिये 'बुकड़ कुड़िया' भी। मकान का मुख्य द्वार फरिका की नोहडोरा (भित्तिचित्र) से सज्जा। की जाती है। सहरिया अपने श्रृंखलाबद्ध आवास उल्टे 'यू' आकार का बनाते हैं, जो सहराना कहलाता है। भीलों के गाँव फाल्या कहलाते हैं।

जनजातीय महिलाएँ हाथों में चुरियाधारण करती हैं। जुरिया, पटा, बहुँटा, चुटकी, तोड़ा, पैरी, सतुवा, हमेल, ढार, झरका, तरकीबारी और टिकुसी इनके प्रिय आभूषण हैं। भील स्त्रियाँ मस्तक पर बोर गूँथकर लाड़ियाँ झुलाती हैं। कथिर के कड़े कोहनी से कलाई तक सजे रहते हैं। नाक में काँटा और कमर में कंदौरा। घुटनों तक कड़े और घुँघरू। जनजातीय पुरुष भी कान, गले और हाथों में विभिन्न आभूषण पहनते हैं। गोदना सभी स्त्रियों का प्रिय पारंपरिक अलंकार है।

इतिहास की निरंतरता को बनाये रखने में जनजातीय संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह मानव-सभ्यता के विकास-क्रम की अनिवार्य कड़ी है। आज़ादी के बाद जनजातीय विकास को नयी दिशा मिली है। विकास के अभिनव और प्रभावी प्रयासों से विभिन्न जनजाति समुदायों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्तर में अभूतपूर्व सुधार हुआ है। बस ध्यान यह रखा जाना है की इन सारे प्रयासों के साथ विकास की मुख्यधारा में सम्मिलित होते हुए उनकी सांस्कृतिक परंपराओं और मातृभाषाओं में संचित वाचिक संपदा के साथ पारंपरिक ज्ञानकोश न खो जाये।

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और जनजातीय संस्कृति के अध्येता हैं।)
मो. नं. 8319163206

■

दशपुर का ऐतिहासिक परिदृश्य

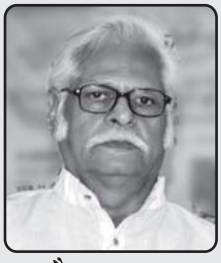

कैलाशचन्द्र
घनश्याम पाण्डेय

मध्यप्रदेश के उत्तर-पश्चिम में स्थित मन्दसौर जिले का निर्माण भू.पू.ग्वालियर राज्य के एक बड़े भू-भाग से हुआ है। पूर्व में मंदसौर ग्वालियर रियासत का सबसे बड़ा जिला था। प्राचीनकाल में ''दशपुर'' के नाम से प्रख्यात इस नगर को अभिलेख में ''पश्चिमपुर'' भी कहा गया है। जैन-बौद्ध साहित्य में इसे ''दसउर'' तो राजपूत काल में ''दसोर'' कहा गया है। 'दसोर' शब्द का प्रयोग अद्यावधि तक ग्रामीण अंचलों में होता है। ग्रामीण अब भी इसे ''दसोर तथा मनदसोर'' पुकारते हैं।

दशपुर का ऐतिहासिक परिदृश्य अतिविस्तृत है क्योंकि इस परिसर में पाषाण युगीन उपकरण, शैलचित्र, शैलोत्कीर्ण, गुफाएँ, पाषाण अभिलेख, स्तम्भ, प्राचीन मंदिर, प्रतिमाएँ, किले, महल, गढ़ियाँ, मुद्राएँ, ताम्रपत्र आदि विभिन्न प्रकार की पुरातत्त्वीय सामग्री प्रचुर मात्रा में मिली है। इस नगर की गणना मध्यप्रदेश के चार प्राचीन नगरों - महेश्वर, दशपुर, अवन्ति व विदिशा के रूप में की जाती है।

सन् 1886 ई. पूर्व ''दशपुर'' की ऐतिहासिकता लगभग अज्ञात ही थी। सर जान फेथफुल फ्लीट ने मन्दसौर की आधा दर्जन से भी अधिक आंग्ल नाम दिये है जिनमें Mander, Mandesor, Mandesur, Mandisore, Mandosar, Mandsur, Mandesor तथा Mundesore सम्मिलित हैं।[1] इन आंग्ल नामों के सिवाय भी एक नाम डनदकपेवतम प्रचलित था जिसका प्रयोग लेफ्टिनेंट शावर्स ने अपनी पुस्तक में सन् 1888 ई. में किया था।[2] दशपुर की गौरव गाथा का श्रेय आर्थर सुलविन नामक एक ब्रिटिश अधिकारी को है जिसने अपने सर्वेक्षण में सर्वप्रथम सोंधनी स्थित कीर्तिस्तम्भ के अवशेषों को 1881 ई. में देखा व उस पर उत्कीर्ण शिलालेख की नेत्र प्रति बनाकर जनरल कनिंघम को भेजी। इस हस्तलिखित प्रतिलिपि को 1883 में सर जानफेथफुल फ्लीट ने देखा। सन् 1884 में फ्लीट ने मन्दसौर की यात्रा की व एक अन्य स्तम्भ अभिलेख तथा कुमार गुप्त-बन्धुवर्मन के अभिलेख की खोज की। आगे चलकर सन् 1886 में फ्लीट ने इन अभिलेखों को प्रकाशित किया।[3] तब से लेकर पिछले 136 वर्षों में **इस नगर के इतिहास पर प्रकाश ड़ालने वाले 20 से अधिक पाषाण** अभिलेख प्रकाश में आ चुके हैं।

दशपुर से प्राप्त अभिलेख न केवल भारत अपितु विश्व इतिहास के लिए महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान करने वाले प्रमाणित हुए। इनसे ज्ञात हुआ कि ''दशपुर ने भारतीय इतिहास व साहित्य को अनूठे रत्न दिये हैं। शिवना के आँचल में औलिकरों के विशाल साम्राज्य का उदय व अस्त ही नहीं हुआ अपितु इसके आँगन में अनके जातियों ने निर्माण व विनाश की अंगड़ाईयाँ भी ली हैं। **भारत की सीमाओं का प्राचीनतम अभिलेखिक प्रमाण दशपुर ने ही दिया है।** यहाँ के मूल्यवान व महीन **रेशमी वस्त्रोद्योग के लिए संसार का प्रथम विज्ञापन** इसी नगर में उत्कीर्ण किया गया।

यहाँ से प्राप्त अभिलेख में वासुदेव कृष्ण का सबसे पहला कलात्मक विवरण प्राप्त हुआ है। वत्सभट्टी व वासुल के पाषाण काव्यों में संस्कृत साहित्य का अनूठा रस पका है। ऐशिया माइनर से उठी बर्बर हूणों के आक्रमण की आंधी इसी दशपुर के रणक्षेत्र में थमी, झुकी और पददलित हुई। दूर्दान्त हूण आक्रमणकारी तोरमाण व उसका पुत्र मिहिरकुल इसी नगर के शासकों क्रमश: प्रकाशधर्मा व यशोधर्मा के चरणों में नतमस्तक हुए। **युद्ध विजय का प्रथम कीर्तिस्तंभ या विजय स्तंभ सर्वप्रथम दशपुर के आंगन में ही खड़ा हुआ।**

यहां के अभिलेखों में गगनचुम्बी इमारतों का उल्लेख तथा मेघों को रोकने वाले उच्चशिखर युक्त देवालयों की जानकारी उस युग में मिलती है **जब भारत के अन्य क्षेत्रों में ये विधाएं अज्ञात थीं।** आज जब प्रत्येक राज्य सबसे ऊंची प्रतिमा निर्माण की होड़ में लगे हैं तब कोई 1500 वर्ष पूर्व **भारत की सबसे विशाल परशुधारी शिव की प्रतिमा दशपुर के औलिकर साम्राज्य में ही निर्मित हुई थी।** प्रकाशधर्मा की रिंस्थल प्रशस्ति के अनुसार उसके

द्वारा निर्मित प्रकाशेश्वर **शिवालय संपूर्ण भारतवर्ष में विश्रुत था।**[4]

दशपुर से प्राप्त इन अभिलेखों से नगर की विभिन्न विशिष्ठताओं का प्रगटीकरण तो हुआ परन्तु इसकी प्राचीनता को प्रमाणित करने वाला अभिलेख उपलब्ध न था। इसकी खोज का श्रेय **डॉ. वि.श्री.वाकणकर ''पद्मश्री''** के सुयोग्य शिष्य **डॉ. जगदीश जोशी (प्रताबगढ़)** को है जिन्होंने मन्दसौर से दक्षिण-पश्चिम में स्थित ग्राम अवलेश्वर (जिला प्रताबगढ़, राजस्थान) में राजा भागवत का तिथि विहिन अभिलेख खोज निकाला जो अशोकन ब्राह्मी में होकर ईसा की दो शताब्दी पूर्व का प्रमाणित होता है। इस अभिलेख की पादपीठिका पर ''दशपुर'' का उल्लेख है। इस अभिलेख की प्राप्ति से ''दशपुर'' नामकरण की प्राचीनता 2200 वर्ष पूर्व की प्रमाणित हो गयी।[5] दूसरी शताब्दी में यह नगर इतनी मान्यता प्राप्त कर चुका था कि नहपान के दामाद तथा दीनीक के **पुत्र उषवदात ने जनकल्याण की कामना से दशपुर में चतुश्शालागृह और विश्रामागार बनवाए।**[6]

इन खोजों व प्रकाशनों के कारण विद्वानों का ध्यान दशपुर के इतिहास लेखन की ओर आकर्षित हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास **डॉ. ए.सी.मित्तल (रीडर-प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन)** ने किया। परन्तु डॉ. मित्तल ने दशपुर की प्राचीनता प्रमाणित करने की दृष्टि से अपने लम्बे लेख में यह त्रुटिपूर्ण तथ्य समावेशित कर दिया कि- The Mahabharta contains a beautiful description of the town of Dashpura and mentions it as one of important and prosperous cities in the country.[7] आगे चलकर सभी विद्वानों ने आँख मीचकर इस त्रुटिपूर्ण तथ्य को उद्धरित करना प्रारंभ कर दिया जबकि वास्तविकता यह है कि महाभारत में दशपुर की जानकारी देने वाला एक भी श्लोक नहीं है।

इस नगर में अनेक प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी थीं जिन्हें मैने वर्ष 1983-1984 में मन्दसौर दुर्ग में स्थित खुला पुरातत्व संग्रहालय में स्थानान्तरित कर दिया था।[8] **अब यह संग्रह ''सम्राट यशोधर्मन पुरातत्त्व संग्रहालय, मन्दसौर'' के नाम से जाना जाता है।**

सौभाग्य से दशपुर प्रागैतिहासिक मानव की क्रीड़ास्थली भी रहा। इस क्षेत्र में पाषाण उपकरणों की खोज, शैलचित्रों की खोज तथा मन्दसौर में ताम्राश्मयुगीन अवशेषों की खोज व उत्खनन का श्रेय डॉ. वाकणकर को है। **अविभाजित मन्दसौर जिले के नीमच में जन्में डॉ. वाकणकर का बचपन मन्दसौर में बीता,** आपने इस नगर में दो बार (1975-1978) पुरातत्त्वीय उत्खनन् संपन्न कियें।[9]

मन्दसौर के आस-पास प्रागैतिहासिक काल के अश्मोपकरण कभी सहजता से मिलते थे। इनसे प्रकट हुआ कि इस भूमि पर करीब 10 से 15 लाख वर्ष पूर्व आदि मानव का संचरण था। उसने इस प्रदेश में मिलने वाली तीन प्रकार की चट्टानों का प्रयोग पाषाण उपकरण बनाने में किया। डेक्कन ट्रेप, चर्ट और सिकताश्म से बने ढ़ेरों उपकरण मन्दसौर की शिवना नदी से लेकर रेवास देवड़ा की पहाड़ियों पर अब भी खोजे जा सकते हैं।

सौन्दर्यानुभूति दशपुर का आदि गुण है। यह अभिलेखों की भाषा, प्रतिमाओं के निर्माण के साथ-साथ पाषाण उपकरणों में भी सहज रूप से विद्यमान है। पाषाण उपकरणों की डॉ. वाकणकर की खोज के बाद पूना के **डॉ. ए.पी.खत्री** ने प्रख्यात पुरातत्त्ववेता **डॉ एच. डी. साखलिया** के मार्गदर्शन में अपना शोधकार्य 1955 में प्रारंभ किया था। डॉ. खत्री को शिवना नदी के सर्वेक्षण के दौरान -'' **भारत का सबसे सुन्दर पाषाण उपकरण प्राप्त हुआ था।''**[10]

दशपुर में डॉ. वाकणकर ने 1953 में ही ताम्राश्म युगीन सभ्यता की खोज कर ली थी। आगे चलकर आपके द्वारा वर्ष 1975 व 1978 में पुरातत्त्वीय खुदाई का कार्य मन्दसौर में सम्पन्न किया गया। मालवा में सबसे प्राचीन सभ्यता कायथा है। 4,100 वर्ष प्राचीन इस सभ्यता की खोज डॉ. वाकणकर के द्वारा कायथा नामक स्थान पर की गयी थी। महेश्वर (निमाड़) मनोटी, आवरा (मन्दसौर) आजाद नगर (इन्दौर) आदि स्थलों पर इस सभ्यता के प्रमाण मिले परन्तु मन्दसौर उत्खनन में इसका कोई प्रमाण नहीं मिला।[11] इस सभ्यता के प्रमाण मन्दसौर से दक्षिण-पश्चिम में स्थित अचेरा गढ़ी के आवासीय टीले में मिले हैं।

मन्दसौर में नगरीकरण का श्री गणेश आहड़ सभ्यता के निवासियों ने किया। ये लोग लगभग 1800 ई. पू. आकर शिवना नदी के तट पर वर्तमान दुर्ग के नीचे पीली मिट्टी पर बसे थे। भारत के पश्चिमी भाग से आये इन लोगों ने मालवा से आहड़ सभ्यता के लोगों को मार भगाया। ये लोग विशिष्ट प्रकार के पात्र प्रयोग में लाते थे जिन्हें चित्रित लाल-काले पात्र (Painted Red and black were) कहा जाता है। कायथा सभ्यता के लोगों को यह तकनीक ज्ञात न थी।[12]

आहड काल से लेकर गुप्तों के पूर्व तक का इतिहास अंधकारमय है। दो - तीन पौराणिक संदर्भो को छोडकर अधिक जानकारियाँ प्राप्त नहीं है। मौर्य काल से लेकर गुप्त काल तक किसी अभिलेख की प्राप्ति नही हुई है। हाँ गुप्तों के समानान्तर हम दशपुर में औलिकर राजवंश शासन इस नगर में पाते है। यद्यपि इस राजवंश के

साहित्यिक साक्ष्यों का पूर्णत: अभाव है। मन्दसौर क्षैत्र से प्राप्त अभिलेखों से निम्न औलिकर शासकों का विवरण प्राप्त होता है–

1. नरवर्मन –

औलिकरों का सबसे प्राचीन अभिलेख मालव सं. 461–57= 404 ई. का है। मन्दसौर से प्राप्त इस नरवर्मन् के अभिलेख से ज्ञात होता है कि औलिकरों का प्रादुर्भाव 4 थी शताब्दी के अंतिम दशकों में हुआ। अभिलेख के मंगलाचरण से ज्ञात होता है कि प्रारंभ में **औलिकर वैष्णव मतावलंबी थे।** प्रशस्ति का प्रारंभ जिस श्लोक से प्रारंभ होता है उससे **भारत की चौहद्दी प्रथम बार ज्ञात होती है।** इसमें क्षीर सागर में निद्रामग्न विष्णु की सुन्दर स्तुती की गई है।–

''सहस्त्र – शिरसे तस्मै पुरुषामियात्मने।
चतुस्समुद्र पर्य्यकतोय –निद्रालवे नमः।।

इसी अभिलेख में वासुदेव श्रीकृष्ण का प्रथम अभिलेखिक प्रमाण मिला है। नरवर्मा एक विशाल राज्य का स्वामी था क्योंकि इसका एक अन्य अभिलेख मन्दसौर से कोई 500 कि.मी.दूर राजगढ़ जिले के बिहार कोटरा में मिला है। मन्दसौर अभिलेख में नरवर्मा के दादा जयवर्मा तथा पिता सिहवर्मा का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि **चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औलिकर राजवंश की नींव पड़ चुकी थी।**[13]

2. विश्ववर्मन् –

बिहार कोटरा अभिलेख से नरवर्मन् की अंतिम तिथि मालव सं.474 आती है। इसके बाद विश्ववर्मन् का काल प्रारंभ होता है। यह नरवर्मन् का पुत्र था या भाई यह ज्ञात नहीं होता है।[14] विश्ववर्मन् के सच्चि मयूराक्ष की मालव सं. 480.57=422.423 की एक प्रशस्ति गंगधार जिला झालावाड़ (राजस्थान) से मिली है। विश्ववर्मन् के बल एवं शौर्य की प्रशंसा करते हुए मयुराक्षक ने देवराज इन्द्र को भी उससे आतंकित वर्णित किया है। बधुवर्मन् के अभिलेख के आधार पर विश्ववर्मन की अंतिम तिथि 434 ई.मानी जा सकती है।[15]

3. बन्धुवर्मन् –

बधुवर्मन के काल की सूर्य मंदिर प्रशस्ति कभी महादेव घाट की सिड़ियों में लगी थी जिसे 1883 में फ्लीट ने देखा व 1886 में प्रकाशित किया। इस अभिलेख को वास्तव में पट्वायों की एक श्रैणी नें अपने द्वारा निर्मित सूर्य मंदिर के जीर्णोद्धार के अवसर पर कवि वत्सभट्टि लिखवाकर उत्कीर्ण करवाया था। वर्तमान में यह अभिलेख गुजरी महल संग्रहालय ग्वालियर में प्रदर्शित है।[16] इस अभिलेख की विशेषता यह है कि इसमें सूर्य मंदिर निर्माण तथा उसके जीर्णोद्धार दोनों की तिथियाँ शब्दों में दी गयीं हैं। इन्ही तिथियों के आधार पर मन्दसौर गौरव दिवस की तारीख 8 दिसम्बर निकालने का दावा किया गया है।[17]

सूर्य मंदिर कहॉ था ? इस संबंध में पूर्व में कुछ अटकल लेख लिखे जा चुके हैं। पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों की गड़बडी से खिलचीपुरा में एक प्रतिहार कालीन शिवालय, सूर्य मंदिर के रूप में संरक्षित भी किया जा चुका है। एक बार साप्ताहिक हिन्दूस्तान की विशेष प्रतिनिधि सूर्य मंदिर की खोज में आयीं। मेंने अज्ञानता जाहिर की तो बोली – ''मैं खोज कर छोडूँगी।'' **एक लाख रू. की हार-जीत हो गयी पर मंदिर नहीं मिला।**[18] इसी अभिलेख में रेशमी वस्त्रों का विश्व का प्राचीनतम विज्ञापन होने की जानकारी डा॰ भगवती शरण उपाध्याय के द्वारा दी गई है।[19] पूज्य गुरूवर्य के चरण कमलों में बैठकर ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। **आज हजार-हजार रूप की धनी नवयौवनाएं माडल बनकर विज्ञापन के व्यापार को अपने निर्वसन तन से साध रही हैं, धनार्जन की दौड़ में अपने देह का दाम लगा रही है, तब दशपुर के रेशम के बुनकरों के हाथों से निर्मित जोड़े से सजी-संवरी नायिका प्रथम पसन्द थी, यह हम सब दशपुर वासियों के लिये गौरव की बात है।**

4. प्रभाकर –

बन्धुवर्मन् के अभिलेख में सूर्य मंदिर के जीर्णोद्धार की तिथि मालव संवत् 529 यानें 472 ई. दी गई है। इस समय संभवत: बन्धुवर्मन की मृत्यु हो गयी थी, अत: उसका नामो उल्लेख नहीं मिलता है। बन्धुवर्मन के बाद मंदसौर से नरेश प्रभाकर का मालव संवत 524–57=567–568 का अभिलेख मिलता है। औलिकरों के प्रथम तीन अभिलेखों में हमें विष्णु और सूर्य की उपासना के प्रमाण मिलते हैं इससे प्रारंभिक औलिकर वैष्णव मतावलम्बी सिद्ध होते है। चौथा अभिलेख महाराजा प्रभाकर के सेनापति दत्त भट्ट का है इसमें त्रिपद (बुद्ध, धम्म, सम्म) एवं सगुध (बुद्ध) की प्रार्थना करने तथा दत्त भट्ट के पुत्र वायु रक्षित द्वारा दशपुर में स्तूप, कूप विहार, प्रभा, उद्यान, आदि निर्माण करने का उल्लेख मिलता है। **इससे ज्ञात होता है कि पतन्नोमुख बौद्ध धर्म का अंतिम प्राकट्य दशपुर में कुछ इस तरह हुआ कि औलिकर सम्राट दशपुरीय रंग मंच से अदृश्य हो गये।**[20] याने 438–517 ई. के बीच हमें औलिकरों की सत्ता अदृश्य दिखाई पड़ती है।

5. कुमारवर्मन –

दशपुर में जो प्राचीन अभिलेख मिले है उनमें से **दो**

अभिलेख खोजने का श्रेय श्री हरिराम रुनवाल तथा उनके सुपुत्र गिरजाशंकर हरिराम रुनवाल को है।

हरिराम रुनवाल ने कालाखेत स्थित मिर्जा नईम बेग की बावड़ी के पास जो अभिलेख खोजा था उसका अध्ययन करने के लिए प्रख्यात लिपिविद डॉ. डी.सी. सरकार कलकत्ता से स्वयं पधारे थे। सरकार के अनुसार यह अभिलेख महाराजा गौरी का आदित्यवर्धनकालीन अभिलेख है। इसी शासक का एक अभिलेख छोटी सादड़ी के समीप भंवरमाता में मिला है, इस अभिलेख की वंशावली पुण्यसोम से प्रारंभ होकर राज्यवर्द्धन > राष्ट्रवर्धन > आदित्यवर्धन **यानेवर्धन नामांत वाले नाम मिलते है जबकि पूर्व अभिलेखों में वर्मन नामांत वाले नाम मिलते है इससे कुछ इतिहासकार** इस वंश को औलिकर नहीं मानते है।

कुमार वर्मा की प्रशस्ती को खोजने का श्रेय हरिराम रुनवाल के **पुत्र गिरजाशंकर रुनवाल को है जिन्होंने 11, नवम्बर 1978 को गुदरी स्थित बुनकर कॉपरेटिव्ह सोसायटी के भवन से** निकले इस अभिलेख को देखा और अपने घर लाकर सुरक्षित रखा। 2010 में श्री रुनवाल ने इस अभिलेख को सम्राट यशोधर्मन पुरातत्व संग्रहालय को सौंप दिया।

वर्ष 1982-1983 में जब मैने इस अभिलेख को देखा तो इसके छापे निकालकर डॉ. डी.सी.सरकार कलकत्ता, डॉ. व्ही.व्ही. मिराश्री, नागपुर तथा डॉ. व्ही.श्री.वाकणकर उज्जैन को भेजी। इन विद्वानों ने इस लेख का जो वाचन किया उसे मैंने प्रकाशित किया। कुमार वर्धन का यह लेख खंडित होने के कारण तिथि विहिन है। इस अभिलेख की वंशावली यज्ञदेव > वीरसोम > भास्करवर्मन > कुमारवर्मन इन चार राजाओं का उल्लेख मिलता है। ये शासक औलिकर थे या नहीं, इसमें संदेह है क्योंकि अभिलेख के प्राप्त भाग में कहीं भी औलिकर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, परन्तु इसे औलिकर मानने में संदेह इसलिए नहीं होना चाहिए क्योंकि इस अभिलेख में पूर्ववर्ती अभिलेखों की तरह विष्णु की स्तुति की गई है।[21]

6. प्रकाशधर्मन -

मंदसौर के द्वितीय उत्खनन में **डॉ. वि.श्री.वाकणकर को एक कांच की मुद्रा प्राप्त हुई थी जिस पर उत्कीर्ण अभिलेख को उन्होंने ''श्री प्रकाशधर्म्म'' वाचन किया था लेकिन समकालीन इतिहासकारों ने इस कांच मुद्रा को कोई महत्व नहीं दिया।** कोई 5 वर्ष पश्चात सीतामऊ तहसील के ग्राम रिस्थल नामक गांव से रतनगोबा गायरी के मकान की नींव खोदते समय एक अभिलेख प्राप्त हुआ। तत्कालीन कलेक्टर पी.एस.तोमर ने 23 सितम्बर, 1983 को इन पंक्तियों के लेखक को इसकी जांच हेतु भेजा।[22] इसी बीच बिना प्रशासकीय अनुमति के डॉ. रघुबीरसिंह, सीतामऊ, ने इस अभिलेख को श्री नटनागर शोध संस्थान हेतु स्थानांतरित करा लिया।

इस अभिलेख की छापें मेरे द्वारा निकाली गयीं जिन्हें डॉ. रघुबीरसिंह ने क्रमशः डॉ. डी.सी.सरकार, महामहोपाध्याय वी.वी.मिराश्री व डॉ. वाकणकर को भेजी, **यह अभिलेख बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें यशोधर्मा के पूर्ववर्ती शासक प्रकाशधर्मा के द्वारा हूण सम्राट तोरमाण को पराजित करने का उल्लेख मिलता है।**[22] दुर्भाग्य से डॉ. सरकार ने इस अभिलेख की तिथि त्रुटिपूर्ण प्रतिभिज्ञान के कारण मालव सं. 570 (512 ई.) लिखी है।[23] यह वास्तव में ''सद्यब्द''होने के कारण 570 के स्थान पर 572 पढ़ा जाना चाहिये, इस आधार पर यह अभिलेख 515 ई. का स्वीकार किया जाना चाहिये।[24]

प्रकाशधर्मा की प्रशस्ति का लेखक भी वासुल हे। आगे चलकर उसने सम्राट यशेधर्मा की भी प्रशस्ति लिखी । पर,उसने यशोधर्मा की प्रशस्ति में प्रकाशधर्मा के बारे में ऐसा मौन साधा कि वह कुछ भी नहीं जानता है। ठीक, मेंरी तरह!

7. सम्राट यशोधर्मा -

सम्राट यशोधर्मा के बारे पिछने तीन महिनों में बहुत कुछ प्रकाशित हुआ है। सम्राट यशोधर्मा की भव्य प्रतिमा का निर्माण एवं नवीन प्रशस्ति का लेखन (?) भी किया गया है, जिसका अनावरण 8, दिसम्बर, 2022 को होने जा रहा है, अतः मैं अपनी लेखनी को यहीं विराम दे रहा हूँ।

हमारे नगर का सौभाग्य ही है कि नगर, जिले, प्रदेश व देश के लोग तो इसके पुरावैभव के इतिहास लेखन में जुटे ही हैं। साथ-साथ अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर भी विद्वान इसके इतिहास लेखन का कार्य कर रहें है।

केमब्रिज विश्वविद्यालय (यू.के.) के डॉ. दानियल बलोग (हगंरी) ने मंदसौर के औलिकर शासकों के इतिहास को सीखने के लिए कितनी मेहनत की होगी, इसका अंदाजा इस बात से लगा सकते हैं कि उन्होंने अपने शोध कार्य के लिए न केवल हिन्दी व संस्कृत भाषा सीखी अपितु अभिलेखों को स्वयं पढ़ने हेतु ब्राह्मी लिपि का अध्ययन कर अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया। आपकी पुस्तक Inscriptions of the Aulikaras and their associates अब हमारे लिए औलिकरों का इतिहास जानने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।[25]

।।सिद्धिरस्तु।।

संदर्भ

1. फ्लीट जानफेथफुल भारतीय अभिलेख संग्रह खण्ड-3, अनुवादक मिश्र गिरिजाशंकर प्रसाद पृ.-98 राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 1974।
2. Showers Lieut,- General Charles Lionel, A Missing Chapter of the Indian Mutiny P.-89, Longman, Green co. London 1888.
3. फ्लीट, उपरोक्त।
4. वाकणकर डॉ. व्ही.एस.दाशेरक प्रदेश के औलिकर (शोध लेख) प्रेरणा (शालेय पत्रिका) तृतीय वर्षांक पृ. 11-24, शासकीय उ.मा.वि.मन्दसौर, 1984।
5. वाकणकर डॉ. वि.श्री. ब्राह्मी इन्सक्रप्शन फ्राम अँवलेश्वर, (शोधपत्र) म.प्र. इतिहास परिषद 1970; त्रिवेदी चन्द्रभूषण, दशपुर पृ. 2, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1979।
6. गोयल श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड-1 पृ. 306, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1982।
7. Mittal Dr. A.C. Glimpses History : MANDSAUR (Research Artical) Annual Magazine Govt. College, Mandsaur English Section P. 12-18, Mandsaur 1963-1964.
8. Handa Dr. Devendra, Ajay Sri Felicitation Volume Part 2, P. 473-479 (Proud Possession of Mandsaur Museum, Kirit K. Shah and Kailash Chandra Pandey, sundeep Prakashan Delhi, 1983.
9. भटनागर डॉ. विष्णु, पद्मश्री डॉ. वि.श्री. वाकणकर अभिनंदन ग्रंथ पृ. 7-8, भारती कला भवन, उज्जैन, 1987।
10. Khatri A.P., Stone Age Cultures of Malwa (Typed Ph.D. Thesis) P. 168, Deccan college Poona 1958.
11. Shrivastva Vijay Shankar, Cultural Contours of India P. 48-51, Abhinav Publications Delhi, 1981
12. त्रिवेदी चंद्रभूषण, दशपुर पृष्ठ 130-131 मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 1979।
13. भट्ट डॉ. एस.के. स्टडीज इन द हिस्ट्री ऑफमालवा, पृष्ठ 1-10 खण्ड 2 मालव इतिहास परिषद, इंदौर, 1975
14. जैन, डॉ. के.सी. मालवा थ्रू द एजेस पृ.218 दिल्ली
15. Sirkar Dr. D.C., Inscription----Gupta Age p.379 Kolkata
16. त्रिवेदी डॉ. एच.व्ही. द्वारा दशपुर में आयोजित अष्टमूर्ति शोध संगोष्ठी, 1992 में पढ़े अपने शोध लेख दशपुरावंती क्षेत्रों के अभिलेखों का साहित्यालोचन के वाचन के दौरान दी गई जानकारी अनुसार।
17. मंदसौर नगर गौरव दिवस के उद्घाटन अवसर पर राजेन्द्रसिंह गौतम द्वारा उठाए गये प्रश्न यशोधर्मन उत्सव की तारीख 8 दिसम्बर कैसे मिली ? के संदर्भ में वरिष्ठ पत्रकार सुरेन्द्र लोढ़ा द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अनुसार।
18. वर्मा शुभा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. 68, नई दिल्ली, 1992
19. उपाध्याय डॉ. भगवतशरण, मध्य प्रदेश संदेश, भोपाल, 10, जून, 1977
20. रूनवाल गिरजाशंकर के संग्रह में डॉ. दिनेशचंद्र सरकार के पत्र से प्राप्त जानकारी अनुसार।
21. पाण्डेय कैलाश चन्द्र प्रबंध संपादक, प्रेरणा, तृतीय अंक पृष्ठ 25-29 शा.उ.मा.वि. मंदसौर वर्ष 1983-1984
22. उपरोक्त पृ.27,.....।।.....
23. सिंह डॉ. रघुबीर, शोध साधना,पृ. 102 वर्ष -4, श्रीनटनागर,सीतामऊ,1983
24. उपरोक्त.....,पृ. 7, वर्ष -5, ...,1984
25. Dániel Balogh Published by Walter de Gruyter GmbH, Berlin/Boston, 2019

लेखक- वरिष्ठ पुरातत्वविद् है।
श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान, मंदसौर, मो. 9424546019

श्री जगदीश कौशल को छायांकन कला रत्न सम्मान

भोपाल नगर के 90 वर्षीय सुविख्यात छायाकार श्री जगदीश कौशल को गत दिवस छायांकन कला रत्न उपाधि से सम्मानित किया गया। नगर की 70 वर्ष पुरानी अखिल भारतीय कला मंदिर संस्थान द्वारा अपने वार्षिक अलंकरण एवं सम्मान समारोह में डॉ. देवेन्द्र दीपक वरिष्ठ साहित्यकार एवं पूर्व निदेशक मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी तथा डॉ. साधना बलवटे, राष्ट्रीय महामंत्री अखिल भारतीय साहित्य परिषद भोपाल द्वारा श्री जगदीश कौशल को शाल और श्रीफल के साथ यह सम्मान प्रदान किया गया। इस अवसर पर संस्था के अध्यक्ष डॉ, गौरी शंकर शर्मा 'गौरीश' भी उपस्थित थे।

आलेख

सीप नदी का पानी: पानीदार मुक्ति बोध

मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश'

हिन्दी काव्य के रूपहले पर्दे पर मुक्तिबोध एक कालजयी स्वर्णिम हस्ताक्षर हैं। 3 नवम्बर 1997 को तत्कालीन ग्वालियर रियासत के श्योपुर नगर में जन्मे मुक्तिबोध का पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है।

मुक्तिबोध के बिना हिन्दी कविता के आधुनिक रूप स्वरूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुक्तिबोध नहीं तो हिन्दी कविता वही, पुरानी की पुरानी। समूची हिन्दी काव्यधारा को नव रूप प्रदान करने और बदली परिस्थितियों और परिवेश में कविता के मूल्यों को वर्तमान मानव समुदाय के अनुरूप ढालने का अद्भुत कार्य मुक्तिबोध के लेखन ने किया है। विचार की जड़ता को गतिशीलता में रूपान्तरित करने का श्रेय मुक्तिबोध को ही जाता है।

मुक्तिबोध मूलत: कवि हैं किन्तु ऐसा लगता है कि उनकी कविता का विस्तार ही उनकी आलोचना, निबन्ध कहानियों और लेखों में प्रकट हुआ है। उनकी आलोचना दृष्टि में तीखापन है, गहरी सूझ-बूझ है और उनकी समीक्षा बुद्धि में मौलिकता है। वस्तुत: वे आत्म निरीक्षण और आत्म विश्लेषण के अति सरल तेजस्वी रचनाकार हैं।

मुक्तिबोध की कविता निश्चय ही कविता को गद्य के निकट लाकर खड़ा कर देती है किन्तु उसमें से जीवन की सच्चाइयों का जो लावा फूटता है वह मनुष्य की बौद्धिकता और कलात्मकता को यथार्थ के निकट लाकर सृजनात्मक ताप से पोषित और उसका परिपाक अवश्य कर देता है। साहित्य से मनुष्य को यही अपेक्षा रहती है कि वह हताश और निराश मन को राह दिखाए। समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक हो।

काव्य कर्म मनुष्यता की अभिरक्षा करने के लिए ही होता है। कवि होना कई-कई जन्मों के संचित फलों का परिणाम माना गया है। कवि होने का अर्थ किसी दैवीय संचेतना का मनुष्य रूप में अवतरित होना है। फिर यह भी तय तथ्य है कि किस कवि में उन कथित दैवीय संचेतना का कितना अंश विद्यमान है, उसी के अनुसार वह अपने युग समय को अपनी कविता से आंदोलित कर जीवन की राह को सुगम और सुचारु बना पाता है। इसी अन्तर के कारण हम देखते हैं कि प्रत्येक कवि, साहित्यकार की अपनी एक निजी दृष्टि होती है और अपना विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। प्रत्येक कवि, साहित्यकार के मन मस्तिष्क में साहित्य की अपनी एक खास परिभाषा होती है। प्राय: एक साहित्यकार के मत का दूसरे साहित्यकार के मत/अभिमत से पूर्णाश में मेल नहीं मिल पाता है।

मुक्तिबोध की काव्य दृष्टि का पता हमें- मुक्तिबोध द्वारा लिखित 'एक साहित्यिक की डायरी' की निम्न पंक्तियों से सहज ही लग जाता है-

नहीं होती, कहीं भी खत्म कविता नहीं होती
कि वह आवेग त्वरित काल-यात्री है
व मैं उसका नहीं कर्त्ता
पिता-धाता
कि वह कभी दुहिता नहीं होती
परम स्वाधीन है, वह विश्वशास्त्री है
गहन गंभीर छाया आगमिष्यत की
लिये, वह जन चरित्री है।

कविता को 'त्वरित काल यात्री', 'परम स्वाधीन',

विश्वशास्त्री और 'जन-चरित्री' मानना स्वत: स्पष्ट कराता है कि मुक्तिबोध काव्य की स्वतंत्र सत्ता, निरन्तरता को -

स्वीकार करते हुए 'जन चरित्री' बनना कविता का परम ध्येय और अपरिहार्य कर्तव्य कर्म मानते हैं। निश्चय ही मुक्तिबोध ने स्वयं की कविता को 'जन-चरित्री' के रूप में ही देखा और जाना-माना है। इसी के परिणामस्वरूप मुक्तिबोध ने अपनी प्रत्येक कविता के माध्यम से जन चेतना को जाग्रत करने का साग्रह-सफल प्रयोग किया है इसी कारण वे अपने विराट रूप में जन-मन के कवि सिद्ध होते हैं।

मुक्तिबोध सन् 1935 से सृजन में प्रवृत्त हुए थे। सन् 1935 से उनके मृत्यु वर्ष 1964 तक के काल में छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता की धाराएँ काव्य क्षेत्र में प्रवाहमान रहीं । कहना न होगा कि उपर्युक्त समस्त काव्य आन्दोलनों से होकर उनकी कविता को गुजरना पड़ा किन्तु उनकी कविता की अपनी पहचान सबसे अलग और विशिष्ट बन पड़ी। मुक्तिबोध अपने समय में एक विद्रोही कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनकी कविता में सामाजिक और राजनैतिक विषमताओं और विसंगतियों का रचनात्मक प्रकटीकरण है। वे अपनी कविताओं के बारे में बहुत ही तीखी भाव-भंगिमाओं में कहते हैं:-

अगर मेरी कविताएँ पसंद नहीं
उन्हें जला दो
अगर उसका लोहा पसंद नहीं
उसे गला दो
अगर उसकी आग बुरी लगती है
दबा डालो
इस तरह बला टालो।

अज्ञेय के सम्पादन में सन् 1945 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ था जिसका प्रारम्भ मुक्तिबोध की कविताओं से ही हुआ है जो उस तथ्य को उद्घाटित कर देता है कि मुक्तिबोध तत्समय के अपरिहार्य और महत्वपूर्ण कवि हैं । किन्तु यह भी सच है कि 'तार सप्तक' में सम्मिलित होने पर मुक्तिबोध का एक खुला परिचय हिन्दी जगत को हो गया पर उनकी ख्याति और स्थापना में देश की स्वतंत्रता के पश्चात उनके द्वारा की गई बेवाक अभिव्यक्ति के कारण ही हुई। जैसा कि मैंने उपर्युक्त स्थल पर संकेत किया है कि मुक्तिबोध अपने काव्य कर्म में आत्मनिरीक्षण और आत्मविश्लेषण को अत्यधिक महत्व देते थे तो यहाँ यह कहना भी बेहद जरूरी है कि वे अपने देशकाल, समाज की स्थितियों को भी बहुत गहरे जड़ों तक जाकर देखने के पक्षधर और अभ्यासी हैं। मुक्तिबोध शोषण की जड़ों तक जाने का साहस दिखलाते हैं? मनुष्य का मनुष्य के द्वारा किये जाने वाले शोषण की पड़ताल गहरे में जाकर करते हैं।

यह भी सच है कि मुक्तिबोध ने मार्क्स के दर्शन की वकालत की है किन्तु मुक्तिबोध के समस्त सृजन को बिना कोई चश्मा लगाए खुली आँखों से देखा जाए तो उसमें पूर्ण भारतीयता और देशीपन की गंध ही आएगी। मुक्तिबोध दिखावटी प्रगतिवादी नहीं हैं, वे अपने शब्दों को कोरी भावुकता की चाशनी में लपेट कर अपनी बात नहीं कहते हैं, वे यथार्थ के धरातल पर परिस्थितियों का आकलन करते हैं। मुक्तिबोध के काव्य का एक मूल्यवान पहलू यह है कि वे देश और समाज के प्रति अत्यधिक जिम्मेदार और जागरूक रचनाकार हैं।

हो सकता है अनेक लोग इस बात से सहमत न हों कि मुक्तिबोध अपने समय के सर्वाधिक भावुक और संवेदनशील कवि हैं। सच पूछिये तो मुक्तिबोध ने भावुकता और संवेदनाओं को सीमा के पार जा कर काव्य कर्म में प्रयोग किया है। वे अकेले साहसी और लगनशील, धुन के कवि हैं जिन्होंने कविता के लिये कविता से विरोध और रार ठानी थी। आज भी कई-कई विद्वान उनकी कविता से त्रस्त होते देखे जा सकते हैं। , मुक्तिबोध की कविता ने विगत से चली आ रही कविता को नवोन्मेष दिया है। मुक्तिबोध की कविता में दुनिया को बदलने की छटपटाहट सर्वत्र दिखाई देती है। मुक्तिबोध की कविताओं का पाठक निश्चय ही एक अद्भुत ऊर्जा से भर उठता है, स्वयं अपने बूते खड़े होने की चाहत के साथ।

मुक्तिबोध की काव्य चेतना अत्यन्त व्यापक है। उनकी कविता भविष्य का आकलन कर मनुष्यता को सावधान रहने की निरन्तर चेतावनी देती है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात गांधी जी के राम राज्य का स्वप्न क्यों धूमिल हो गया, उसकी जड़ में कौन से कारण रहे- इसका प्रकटीकरण करती हुई निम्न पंक्तियाँ देखिये-

इस नगरी में चाँद नहीं है, सूर्य नहीं है
भीतर पावन ज्वाला नहीं है
इस नगरी के प्रहरी पहने हैं
धुएँ के लम्बे चोंगे
साजिश के कुहरे में डूबी हुई
ब्रह्म राक्षसों की छायाएँ
गांधी जी की चप्पल पहने घूम रही हैं।

आज भी हम पलट कर अपने देश के अतीत को देखें तो स्वतंत्रता के पश्चात् गांधी के आदर्श षड्यंत्रों की भेंट चढ़ गये। चारों

तरफ एक कुहासा पसर गया और हमारे ही जन सेवक सत्ताधारी के रूप में अपने आपको सर्वशक्तिशाली मानते चले गए। लेकिन मुक्तिबोध ने तो उसी समय सत्तासीनों की इस धूर्तता का चित्रण कर हमें आगाह कर दिया था। 'शब्दों का अर्थ जब' नामक कविता में मुक्तिबोध ने लिखा है–

सत्ता के पर ब्रह्म
ईश्वर के आस-पास
सांस्कृतिक लहंगों में
लफंगों का लास-रास।

अपने देश के सत्तासीन नेताओं के चरित्र को मुक्तिबोध ने स्वतन्त्रता की अर्धरात्रि से भी पूर्व उद्घाटित कर दिया था और हम हैं कि आज तक नेताओं के चरित्र के घिनौनेपन को बड़े सब्र के साथ झेलते चले जा रहे हैं।

भू-मण्डलीकरण और वैश्विक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने आज के भारत को जिस आग की भट्टी में झोंक दिया है इसका दृश्य मुक्तिबोध ने बहुत पहले ही देख लिया था। 'जमाने का चेहरा' नामक कविता में मुक्तिबोध ने लिखा है–

साम्राज्यवादियों की जलती है घोर आग
तीसरी लड़ाई की साम्राज्यवादियों के पैसों की संस्कृति
भारतीय आकृति में बंध कर
दिल्ली को
वाशिंगटन व लंदन का उपनगर
बनाने पर तुली है!!
भारतीय धनमंत्री
जनतंत्री
बुद्धिवादी
स्वेच्छा से उसी का ही कुली है।

सोचता हूँ– और कौन से शब्द होते जिनसे मुक्तिबोध कविता के माध्यम से हम भारतीयों को यथा स्थिति से अवगत करा पाते। न हम तब चेते और न अब अपने आप को जाग्रत कर पाये। इसे हम कविता की विडम्बना कहें या अपनी समझ की बेवकूफी।

मुक्तिबोध की कविता में कवि होने की दीवानगी स्पष्ट झलकती है। इसे कविताई का फेर ही कहना होगा कि मुक्तिबोध का समूचा जीवन कभी भी सहज-सरल न हो पाया, किन्तु यह निर्विवाद तथ्य है कि मुक्तिबोध ने कवि साहित्यकार होने की जिम्मेदारी को बखूबी निभाया। मुक्तिबोध की कविता के बारे में अनेक विपरीत धारणाएँ हिन्दी कविता के पाठकों के मन में जाने कैसे विकसित होती चली गई कि, वे बड़े दुरूह, छन्द भंजक और कम्युनिस्ट कवि हैं। जबकि ये सारी धारणाएँ सुनी-सुनाई और प्रयोजन विशेष से प्रसारित की गई ही हैं और जिन लोगों ने इस गलत बयानी को सही माना उन्होंने मुक्तिबोध को पढ़ा ही नहीं, पढ़ा तो समझने की चेष्टा ही नहीं की । यह लगभग ऐसी ही स्थिति है जैसे किसी ने श्योपुर की सीप नदी का पानी चखा ही नहीं और उसे खारा कह डाला।

उपर्युक्त संदर्भ में एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि भले ही मुक्तिबोध की कितनी ही आलोचना की गई हो और मुक्तिबोध को लोगों ने उस अनुपात में जितना इस कवि को पढ़ा जाना चाहिये था, उतना न भी पढ़ा हो तब भी मुक्तिबोध आधुनिक हिन्दी कविता के शीर्षस्थ युग प्रवर्तक कवि हैं इस बात को उनके आलोचक भी मुक्त कंठ से स्वीकारते हैं। सच्चाई तो यह भी है कि सच्ची कविता कभी भी 'इज्म' की मोहताज नहीं होती 'इज्म' याने 'वाद' ही कविता को तलाशता हुआ आता है। बेहतर होगा कि मुक्तिबोध के काव्य को स्वतंत्र और उन्मुक्त भाव से पढ़ा जाए तब ही मुक्तिबोध से परिचय संभव होगा।

संपर्क – 9, विवेकानंद कालोनी, बलवंत नगर, गाँधी रोड,
ग्वालियर-476002 (म.प्र.)
मो. 9406581432

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

कलाओं का उत्स-बिंदु

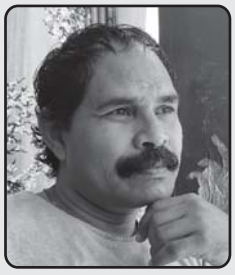

चेतन औदिच्य

लब्धप्रतिष्ठ चित्रकार श्री चेतन औदिच्य ने हमारे आग्रह पर चित्रकला विषय में 'कला-अक्ष' नाम से स्तंभ की शुरुआत की है। निश्चित ही पाठको, शोधार्थी विद्यार्थियों को चित्रकला पर महत्वपूर्ण मौलिक सामग्री पढ़ने को मिलेगी।

- संपादक

महान दार्शनिक अरस्तु के प्रसिद्ध सिद्धांत 'साध्य सिद्धि' को कलाओं के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तो कला जगत की यात्रा, और उसके उत्स बिंदु को बहुत स्पष्ट तरीके से समझा जा सकता है। इस सिद्धांत से हम, उन मूल प्रश्नों के समाधान की ओर बढ़ पाते हैं, जो कदाचित् कम अथवा ज्यादा मात्रा में किसी भी कला-मन वाले व्यक्ति के भीतर उठते हैं। यथा- कलाओं का यथार्थ स्वरूप क्या है? कलाओं में भिन्नता क्यों होती है? हर थोड़े कालखंड के बीतने के बाद, कला नए रूप में कैसे आ जाती है? कलाकार तथा भावक के मन में 'अज्ञात' और 'नए' के प्रति मोह क्यों जगा रहता है? इत्यादि। अरस्तु अपने 'वास्तविकता (साध्य) और संभावना (सिद्धि)' सिद्धांत के द्वारा जगत और उसके समस्त कार्य व्यापार की व्याख्या 'गति' के रूप में करते हैं। कलाओं की दुनिया में भी यही गति अस्तित्ववान है।

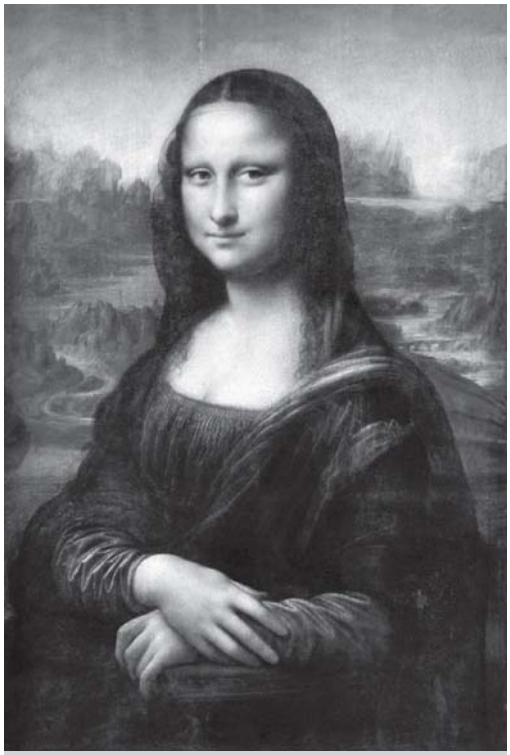

लियोनार्डो दा विंची की विश्वप्रसिद्ध पेंटिंग मोनालिसा

किसी भी कृति का होना साध्य अथवा वास्तविकता है, तदनंतर उस कृति का (अथवा उसके जैसी कृति का) भाविष्यिक- रूप, सिद्धि अथवा संभावना है। इस तरह कला, वास्तविक- रूप तथा उसके परिवर्तित, संभावना-रूप के मध्य ठहरी रहती है। किंतु यह ठहराव, अत्यंत ऊर्जामय और गतिमान होता है। हम इस ठहराव की गति को अपनी सीमित इंद्रियों के माध्यम से नहीं देख पाते। जिस कलाकार का आंतरिक जागरण जितना गहरा और सघन होता है, वह उस गति को उतनी ही स्पष्टता से देख पाता है। इससे आगे चेष्टावान सर्जक, उस गति ऊर्जा को साधते हुए, कलात्मक अभिव्यक्ति भी कर पाता है। इस तरह कला का यथार्थ स्वरूप वास्तविकता और संभावना के मध्य ही ढूंढा जा सकता है। कलाओं पर हो रही, सतही चर्चाओं जैसे पुरानी कला अच्छी थी! नई कला बेकार है! या ऐसी क्या कला बनाई कि समझ में ही नहीं आती! फलां तरह की कृतियां अनुचित है ,फलां तरह की उचित! आदि आदि निष्कर्ष बहुत ही संकीर्ण तथा एक पक्षीय हैं। बहुत मूल में कलाओं की सापेक्षता, देश और काल (टाइम एंड स्पेस) में घट रही वास्तविकता और संभावना की गति के प्रति ही जिम्मेदार हैं। उसकी सार्थकता- निरर्थकता के प्रश्न कला से भिन्न, अन्यान्य प्रश्न है। कला का यथार्थ स्वरूप कला-वस्तु में नहीं, भावक की संचेतना में है।

अरस्तु गति पर आकर ठहरतें हैं। गति का संबंध भौतिक-तत्व से है। यह पाश्चात्य दृष्टि है। भारतीय दृष्टि-आध्यात्म-की

पूरक(विरोधी नहीं)। कला के व्यापक परिदृश्य में इन दोनों ही (भौतिक और आत्म) तत्वों से गुजरना होता है। किसी कलाकार की सभी तरह की इच्छाएं या नया करने की बेचैनी के पीछे भी उसी तात्विक गति का दबाव होता है। इसी दबाव के चलते नित-नवीन कला रूप, सामने आते रहते हैं। कलाओं की भिन्नता का कारण भी यही है। क्योंकि 'गति' का स्वभाव 'स्थिति' को बदल देने वाला होता है। ऐसे में गति, जितनी अधिक तीक्ष्ण होगी, स्थिति का परिवर्तन भी उतना ही भिन्न और अटपटा होगा। यही कारण है कि, अनेक महान कलाकारों की कृतियों को बहुत बाद में पहचाना गया। लंबा कालखंड बीतने के बाद ही, वे कृतियां प्रसिद्ध हुई।

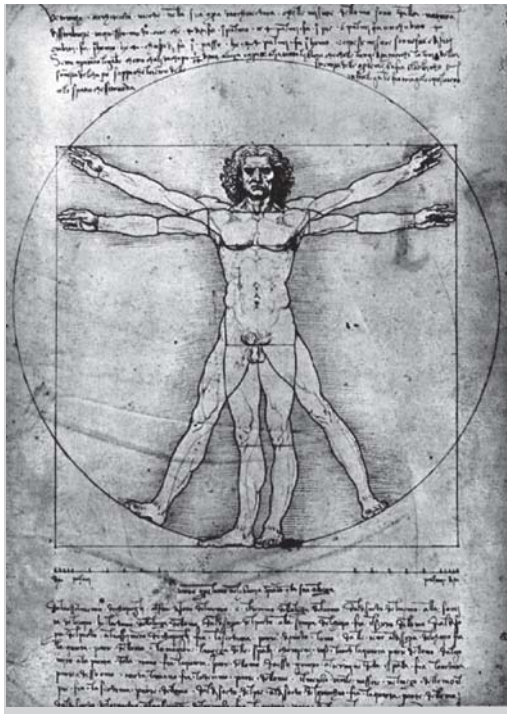

लियोनार्डो दा विंची द्वारा बनाया रेखाचित्र

कुछ वर्षों पूर्व हमने गॉड पार्टिकल अथवा हिग्स बोसोन कण की चर्चा सुनी थी। संसार भर की पत्र-पत्रिकाओं में सृष्टि की उत्पत्ति के कारण और उसके मूल कण पर विमर्श हुआ। फ्रांस की सीमा पर बनी भूमिगत लैब में अनेक देशों के वैज्ञानिकों ने इस पर शोध किया। शोध अभी भी चल रहा है। सार रूप में, विश्व-उत्पत्ति के, 'कारण' के रूप में, गॉड पार्टिकल की खोज हुई। किंतु वैज्ञानिक मानते हैं कि, इस गॉड पार्टिकल से आगे भी, ऐसा कुछ है, जो सृष्टि का मूल कारण है। वैज्ञानिकों का कहना है कि वह कारण तत्व, पकड़ में नहीं आ रहा। इसका पकड़ में नहीं आना, उसकी गति के कारण है। वह इतना गतिशील है कि, हमारे उपकरण उसे नहीं पकड़ पाते । यही भौतिक कण, मूल है, जो हमारी सीमाओं से बाहर है। इसी मूल कण के कारण समस्त चराचर में आंतरिक गतिशीलता है। यही आंतरिक गतिशीलता बाह्य कलाकृतियों की निर्मात्री है। आंतरिक गतिशीलता के उत्स का विस्फोट हमारे संसार को, कलाकारों के निमित्त, नई-नई सर्जनाएं सौंपता रहता है। शुभम्।

- 49-ही, जनता मार्ग,
सूरजपोल अंदर, उदयपुर -313001(राज.)
मोबाइल: 9602015389

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

आलेख

सूरियाभान - लोक का सूरज

डॉ. सुमन चौरे

आदिदेव को नमस्कार है, भास्कर को नमस्कार है, प्रभाकर को नमस्कार है। सब मुझपर प्रसन्न हों।

हमारे मंत्र दृष्टा ऋषियों ने जप-तप, अनुष्ठान, साधना-योग से सूर्य के स्वरूप और उसकी सृष्टि व उसकी महिमा के रहस्य को जान लिया था। इसीलिए उन्होंने सूर्य में आदि देव स्वरूप के दर्शन किये और उस ज्योति पुंज की आराधना की।

सूर्य साक्षात् देवता है, वह जीव मात्र ही नहीं सम्पूर्ण चराचर का सृष्टा है, दृष्टा है। लोक ने उसे सहज ही अपनी जिज्ञासा से प्राप्त कर लिया है। लोक ने जब धरती पर अपनी जीवन लीला प्रारंभ की होती तो पहली बार उसे अंधकार, घोर अंधेरी रातों के बाद किसी पर्वत की कोर से लालिमा के साथ एक किरण चमकती दिखाई दी होगी। तब लोक को वह किरण एक चमत्कार, अपूर्व शक्ति देवत्त्व की अनुभूति करा गई होगी। इन क्षणों में लोक कंठ से स्वत: ही उस रश्मि के लिए एक स्वर फूट पड़ा होगा, वह नाच उठा होगा- ''ऊँग्योऽ ऊँग्योऽ सूरिया भानऽ'' उदित हो गया उदित हो गया सूर्याभान, उदित हो गया है। जैसे ऋषियों ने सूर्य को उसके कई नामों से स्मरण किया, उसी प्रकार लोक ने पृथ्वी के उन्मुक्त वातावरण में खुले आकाश तले सूर्य की सभी लीलाओं के दर्शन किये। वह भी सूर्य के महत्त्व और रहस्य को जान गया, और उसकी स्तुति में गीत गा उठा। लोक ने अपने हर्षोल्लास के प्रत्येक अवसर पर सूर्य की आराधना के गीत गाए। उसके भाव भाषा में बिखरे पड़े। ऋषियों की तरह लोक के भावों में भी सूर्य के विविध नाम प्रकट हो गये - सूरिमल, सूरियाभान, सूरिज मल, सूर्या, सूरज देवा, सूर्यी, सूरिज देव।

सूरिमलऽऊँग्यो होऽ, बयड़ाऽ केरी कोरऽ
सूरिज मलऽ ऊँगियो होऽ...
ओऽ तो ऊत्तर का बदरीनाथ जागियाऽ
दक्षिण का रामेसर देवऽ...
इना पच्छिम का द्वारकाधीश जागियाऽ
पूरब का जगन्नाथऽ देव...
ओऽ जो जाग्या सूरिमलऽ देवऽ...
जगाड्या सब जगतऽ खऽ जीऽ
जगऽ-मगऽ करयो संसार जीऽ

भावार्थ: पर्वत की कोर से सूर्य देवता का उदय हो गया है। सूर्य के उदित होते ही उत्तर दिशा के बद्रीविशाल देव जाग गये हैं, वहीं दक्षिण दिशा के रामेश्वर देव भी जाग गये हैं, पश्चिम दिशा के द्वारकाधीश जाग गये हैं, और पूर्व दिशा के जगन्नाथ देव जाग गये हैं। हे सूर्य देवता आप जाग गये हैं, आपके जागने से पूरा जगत जाग गया है। पूरा संसार जगमगा उठा है। लोक ने सूर्योदय होने पर चारों दिशाओं के अपने चारों देवताओं के जागने की जानकारी दी।

लोक ने सूर्य की ऋचायें नहीं लिखीं, सूर्य की अपने से अलग कर स्तुति नहीं की, उसने तो सूर्य को अपने, और अपने संस्कारों के साथ बाँध लिया, गूँथ लिया। निमाड़ में विवाह के अवसर पर सूर्योदय से पूर्व महिलाएँ मंगलगीत गाती हैं। इन मंगलगीतों में सूर्य को जगाने के गीत भी गाती हैं। इन गीतों को 'कूकड़ा' कहा जाता है। वे गाती हैं, ''हे सूर्य देवता तुम जागो, तुम्हारे जागने से प्रकाश होगा, तब-तब हमारे घर के पुरुषजन जाग जाकर विवाह का कार्य करने लगेंगे।''

गीत -

जागोऽ जागोऽ सूरिया भानऽ
जगाड़ोऽ ते सबऽ जगत खऽ जीऽ
फूटी पड़्यो थारो तेजऽ
जगऽमगऽ ते यो जगतऽ हुयोऽ जीऽ
जाग्या म्हाराऽ सासुजी राजऽ...
जगाड़ऽ ससराजी राजऽ खऽ जीऽ...
जागोऽ जागो नणदीऽ बाई रावीरऽ भरो सबऽ भण्डारजीऽ
जागी म्हारी जेठानी जी राजऽ...
जगाड़ऽ जेठजी राजऽ खऽ जीऽ...
जागोऽ जागो नणदीऽ बाई रावीरऽ भरो सबऽ भण्डारजीऽ

जागो जागोऽ जागो नणदीऽ बाई रावीरऽ भरो सबऽ भण्डारजीऽ
जागोऽ जागो सासुबाई रा हीरऽ...
हमऽ घरऽ कन्या कुआरीऽ वरो ओको भरतार जी
सूरिमलऽ जागी गया जीऽ

भावार्थ: हे सूर्य देवता! आप जागिये और सब संसार को भी जगा दीजये। सूर्य देवता का तेज फूट पड़ा है, पूरा जगत, जगमगा उठा है। मेरी सासुजी जाग गई हैं, वे मेरे ससुरजी को जगा रही हैं, हे नगरी के राजा जागिये, सूर्य देवता जाग गये हैं। आपको राजकाज करना है। मेरी जेठानी जाग गई है, वे मेरे जेठजी को जगा रही है। हे मेरी नणद के वीर आप जाग जाइये सूर्य देवता जाग गये हैं। आपको खेतीबाड़ी का काम सम्भालना है, अनाज का भण्डारण करना है। हे मेरे सासुजी के सुपुत्र आप जागिये, हमारे घर कन्या कुआरी है, उसका पाणीगृहण करना है।

सूर्य देवता के उदित होते ही कैसी शक्ति संचरण होता है, दिनचर्या प्रारंभ हो जाती है। लोक जीवन की छबि इस गीत में सुस्पष्ट है, कैसे घर की महिलायें, घर के पुरुषों को आदरपूर्वक जगाती हैं और उनके दिनभर के कार्यों का उल्लेख भी कर देती हैं।

गीत–

सूरिमलऽ ऊँग्यो हो सुवर्ण की कोरऽ...
सूरिमलऽ ऊँग्यो हो रातऽ का छोरऽ...
तुमऽ तो जागो हो मोठाजी भाई उमरावऽ
तुमऽ तो लेवोऽ हो सिरी रामऽ को नावऽ
तुमऽ तो लेवोऽ हो दातूणऽ झारी हाथऽ
तुमऽ तो करो हो गंगा–रेवा असनानऽ
तुमऽ तो रे देवोऽ हो गउवा बछुवा को दानऽ
तुमऽ तो करो हो कन्या का पेळाऽ हाथऽ
सूरिमलऽ ऊँग्यो हो सुवर्ण की कोरऽ...
तुमऽ तो जिमाड़ो हो, भाणिजऽ बामण हजारऽ
सूरिमलऽ ऊँग्यो हो सुवर्ण की कोरऽ...

भावार्थ: रात्रि के अंतिम छोर पर सूर्य देवता का जागरण होने जा रहा है। स्वर्ण की किनार जैसे चमकने वाले सूर्य देवता उदित हो गये हैं। ओ घर के मोठा भाई, आप जागो और जागकर श्रीराम का नाम स्मरण करो। हे मोठा भाई, आप हाथ में गंगाझारी और दातून लेकर अपना मुख धोइये। आप गंगा–नर्मदाजी में स्नान करिये। स्नान करने के बाद आप गाय–बछड़े का दान दीजिये। अपने घर कन्या कुआरी बैठी है, उसके हाथ पीले करें। आप भानज–भानजियों और हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराइये।

निमाड़ी लोकगीतों में प्रकृति का सौंदर्य फूट पड़ता है। अनपढ़–अनजान कहलाने वाली महिलाओं ने लोकगीतों का ऐसा साहित्य रच डाला है जिसमें सौंदर्य और उपमाओं के पर्वत खड़े कर दिए हैं। जब वे सूर्य के उदित होने के पहले उषाकाल में पूर्व दिशा की ओर रक्तिमवर्णी आकाश को देखती है, तब उस लाली की अद्भुत सुन्दर उपमाएँ उनके गीतों से नि:स्रत हो पड़ती है। ऐसा एक गीत है–

कुंकुं का वरणऽ कईऽ सूरिमल ऊँग्योऽ
मोतीऽ का वरणऽ अम्बों मौरियोऽ जीऽ
आमुलड़ा री डाळ, सिंगायणऽ जाई गढ़जोऽ
इन्द्रासणऽ जाई गढ़जोऽ, गढ़जोऽ चौळई पानऽ की जी
येऽ ही रे सिंगासणऽ पऽ गणपति देवऽ राजऽ
चोळई वरऽ ते नानी ववू पानऽ की जीऽ..
येऽ यी रे कुंकुं कुळववू भरऽ पूजऽ ते कुळदेवीजी

भावार्थ: कुंकुम के वर्ण के लाल–लाल सूरिज देव ऊँग गये हैं। और मोती के वर्ण की छोटी–छोटी कणियों से आम्रवृक्ष बौरा उठा है। अमुवा की डाल को काटकर उसका आसन बनायँगे। जिस पर गणपति देव को विराजित कर देंगे। आम के कोमल पत्तों से बहूरानी की चोली बना देंगे। और जिस रंग से सूर्य देवता उदित हुये हैं, उस कुंकुम को कुल की बड़ी बहू एकत्र कर लेगी और उससे कुल देवी का पूजन करेंगे।

सूर्योदय की छटा अद्भुत है, मनोहारी है, कितनी शोभा है, 'शोभा वरणी न जाय'। प्रकृति प्रेम और नैसर्गिक कृतियों को जीवन नें सम्मिलत करना जैसे सूर्य के रक्तिम वर्ण से कुंकुम एकत्र करना, आम के कोमल पत्तों से चोली बनाना लोक के प्रकृति प्रेम के अनूठा उदाहरण हैं। गणगौर गीतों में तो प्रकृति में बिखरे सूर्योदय के रक्तिम वर्ण का विराट चित्रण है।

गीत:

कुंकुं का क्यारा भरीयाऽ कुंकुं हुओ आसमानऽ
कुंकुं सो तेजऽ फूटी पड्यो
ऊँग्यो ते सूरिया भानऽ जी
टीका की मखऽ अभरातऽ
कसो गढ़ो टीकलो जीऽ
ईशवरऽ सूरिया जो रंग को म्हारो टीकलो जीऽ
किरणऽ की कोरऽ गढ़ा वोऽ
शोभा को सोभागेणऽ टीकलोजीऽ
सुन्ना की कोरऽ सूर्यी हुई रह्योऽ
ईशवरऽ तेकी मखऽ गळसजी गढ़ावोऽ

भावार्थ: रक्तिम वर्ण से क्यारियाँ भर गई हैं और आसमान भी लाल हो उठा है। उस कुंकु वर्ण से एक तेज फूट पड़ा है। हे स्वामी सूर्य देवता उसी से प्रगट हो गये हैं। हे स्वामी मुझे टीका लगाने की अभिलाषा है। आप मेरे लिये उसी प्रकार का टीका गढ़वा दीजिये जैसे सूर्य का रंग है और किरण की स्वर्णिम कोर से मेरे गले की गळसणी (कण्ठी) गढ़वा दीजिये। यह टीका शोभा का और सौभाग्य का प्रतीक है। गणगौर लोकगीतों मे तो 'शुक्र के तारे' की टीकी के बड़े सुन्दर श्रृंगार गीत हैं। इस गीत में सूर्योदय के रंग की टीकी गढ़वाने की अभिलाषा प्रकट की गई है।

निमाड़ में गणगौर पर्व महालोकोत्सव के रूप में मनाया जाता है। ईश-गौर अर्थात् शिव-गौरी की आराधना का यह नौ दिवसीय पर्व है। इस पर्व में रनादेवी (गौरी) अपने पीयर याने निमाड़ में नौं दिनों कर रहतीं हैं। निमाड़ के किसान, रनादेवी के भाई है। वे रनादेवी को नौं दिनो के लिए मायके लेकर आते हैं। तब मायके में उनका बड़ा आदर सत्कार किया जाता है। उसी अवसर के गीत हैं। जब बाड़ी में आम-जामुन, करोंदी-चिरोंजी अचार की झाड़ियों के झुरमुट से सूरज के दर्शन होते हैं, तो कभी बावड़ी और तालाब के जल में सूर्योदय के पूर्व की लालिमा का लालित्य घुला हुआ दिखाई देता है। सूर्य जब ऊपर चढ़ जाता है, फिर तो किसी की हिम्मत कहाँ कि उसे आँख उठाकर देख सके। सूर्य के रक्तिम आभा मण्डल के नयनाभिराम दृश्य का वर्णन लोक गीतों में है।

गीत-

ऊँग्योऽ ऊँग्यो सूरियाभानऽ
रंगऽ कुसुमलऽ हुई रह्यो जी
भरयाऽ भरयाऽ रतन तळाव
रंगऽ कुसुमलऽ हुई रह्यो जी
रंगोऽ रंगो धणियर जी का पागऽ
राणी रनुबाई की चूंदड़ी जीऽ
बाँधोऽ घणियरऽ पागऽ
रनुबाई ओढ़ो लाल चूंदड़ऽ जीऽ
दूर का मोठाजी भाई आणो लेणऽ आयाऽ
उनऽ घरऽ नौ दिन, वास करोऽ जीऽ
उनऽ घरऽ अम्बा आमली हो, उनऽ घर सूरियो केवड़ो जी
लाड़ी ववू नवी-नवी लागऽ थारा पाँयऽ
उनखऽ ववू को अचल अह्वात
मोठा भाई की वाड़ी लहऽ लहऽ जी

भावार्थ: सूर्य देवता उदित हो रहे हैं। सभी ओर लाल रंग की छटा बिखर गई है। रत्न तालाब जल से लबालब भरा हुआ है। उसका जल भी लाल हो गया है। इसी लाल रंग से धणियर राजा की पागा रंग दो। किसान भाई, रनुबाई की चूंदड़ भी रंग दो। हे धणियर राजा, आप कुसुमल पाग बाँधिये और राणी रनुबाई आप कुसुमल चूंदड़ पहन लो। दूर गाँव से मोठा भाई आपको लेने लाये हैं। आप उनके घर नौ दिन वास करिये। उनके घर आम-जामुन और इमली के बाग हैं। बागों का सूरिया केवड़ा महक रहा है। उनके घर रमण करो। उनकी बहू आपके चरणों में झुक-झुककर प्रणाम करेगी। तुम किरसाण भाई के परिवार पर आशीषों की बौछार करो। बहू को अखण्ड सौभाग्य दो। मोठा भाई की बाड़ी सदैव लहलहाती रहे।

निमाड़ में नौं दिनो तक गणगौर देवी की लोक आराधना करते हैं। धणियर राजा-रनुबाई के पाँच रूपों में एक शिव-गौरी तो है ही, उनका स्वरूप सूर्य और उनकी अर्धांगिनी रना देवी के नाम से भी पूजा जाता है। ऐसी मान्यता है कि रना देवी सौराष्ट्र से आई हैं, इसलिए देवी के गीतों में सौराष्ट्र का उल्लेख मिलता है। यह भी लोक मान्यता है कि सौराष्ट्र में जिन रनादेवी का मन्दिर है वही निमाड़ में गणगौर के नाम से पूजी जाती है। इन देवी के सौंदर्य का एक गीत है, जिसमें उपमाओं के माध्यम से देवी की सुन्दरता का वर्णन श्रद्धापूर्वक किया गया है।

गीत-

थारो काई-काई रूपऽ वखाणूऽ रनुबाई
सोरठ देसऽ सु आई हो
थारी आँगळई मूँग की सेंगलई रनुबाई
सोरठ देसऽ सु आई हो
थारो सीसऽ नारेळरी रेखऽ रनुबाई
थारो भालऽ सुरिमलऽ, तेजऽ रनुबाई
सोरठ देसऽ सु आई हो

भावार्थ: हे देवी, तेरे किन-किन रूपों का बखान करूँ। तू सौराष्ट्र देश से आई है। तेरे हाथ की अंगुलियाँ हरे मूँग की फल्ली जैसी लम्बी और कोमल हैं। तेरा शीश नारियल के समान दृढ़ है। हे रनुबाई तेरा ललाट सूर्य सा तेजस्वी है।

एक अन्य गीत में पति ईश्वर से अनुनय है गौरीजी का -

शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि तेकी मख ऽ टीकी गढ़ाव ऽ
शुक्र को तारो रे ऽईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि ध्रुव की वादळई रे ऽ ईशवर तुली रही ऽ
कि तेकी मख ऽ तहबोळ रंगाड़ ऽ

शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि सरग की बिजळई रे ऽ ईशवर चमकी रही ऽ
कि तेकी मख ऽ मगजी लगाड़ ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि नवलख ऽ तारा ऽ रे ईशवर चमकी रह्योज
कि तेकी मख ऽ चौळई सिवाड़ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि चाँद अरु सूरज ऽ रेऽ ईशवर ऊँगी रह्यो
कि तेकी मख ऽ टूकी लगाड़ ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि वासुकी नाँग ऽ रे ऽ ईशवर बलखई रह्या
कि तेकी मख ऽ वेणी गुथाड़ऽ
शुक्र को तारो रे ऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ
कि असी छंद ऽ वाळई रे ऽ गवरल गोरड़ी
शुक्र को तारो रेऽ ईशवर ऊँगी रह्यो ऽ

भावार्थ: हे ईश्वर, आकाश में जो महातेजस्वी शुक्र का तारा चमक रहा है ना, उसी की मेरी टीकी गढ़वा दो। हे ईश्वर, ध्रुव वाली दिशा में बरसने के लिए जो काली-काली बदली गुमड़ रही है, उसी बदली के रंग से चुँदरी (चुनरी) रंगवा दो। हे ईश्वर, जो स्वर्ग में बिजली कड़क रही है, उसी बिजली की मेरी साड़ी में मगजी लगवा दो। हे ईश्वर, आकाश में जो नवलक्ष तारे चमचमा रहे हैं, उसी से मुझे चोली सिलवा दो। हे ईश्वर, चाँद और सूरज जो चमक रहे हैं, उसी से मेरी चोली में टूकी लगवा दो। हे ईश्वर, जो वासुकी नाग बल खा कर इठला कर चल रहा है, उसको मेरी वेणी में गुँथवा दो। रानी गौर देवी की ऐसी कामना को सुनकर ईश्वरजी सिर्फ़ एक ही बात कह पाते हैं, ''हे गौरल, हे गौरवर्णी, तूने श्रृंगार के लिए जिन-जिन वस्तुओं को माँगा है, मैं वे वस्तुएँ तुझे देने में समर्थ नहीं हूँ, तू तो बड़ी ही छन्दवाली अर्थात् नखरे करने वाली है।''

लोकगीतों में रनुबाई के प्रबल आग्रह को दर्शाती हुई लोक नारी की आकांक्षा है कि विराट से श्रृंगार करे। यह सत्य है कि वह नारी सूर्य के तेज का प्रभाव जानती है और चन्द्रमा के शीतल गुण का भी उसे ज्ञान है। यह अदम्य साहस ही है कि लोकनारी ऐसी आकांक्षा करे कि सूर्य-चन्द्र को अपने शरीर से लगाकर धारण करे। दिव्य कल्पना है ये लोकनारी की।

गणगौर गीतों में जहाँ एक ओर सूर्य गढ़वाने की आकाँक्षा है, अंगिया में सूर्य की टूकी लगाने की अभिलाषा है वहीं सूर्य के उज्जवल तेजस्वी रूप की उपमा भी दी गई है। नृत्यगीतों में किसान सूर्य से अरज करता है कि है सूर्य देव इतनी तेजी से मत तपो, खेत में काम करती हुई मेरी पत्नी का रूप कुम्हला जायेगा।

गीत-

तीखा मतिऽ तपो सूर्याभानऽ
म्हारी गोरी को रंगऽ बळई जायऽ
ओको ते अंग झुळसायऽ
फूलऽ सी कोमल म्हारी हिलकड़ीऽ
ओको ते रूप कोम्हलाय, धीरऽ तपोऽ
पचरंगी ओनऽ ओढ़ी चूंदड़ऽ
चूंदड़ को रंगऽ बळई जायऽ धीरऽ तपोऽ
घरऽ आवऽ तो रोटला कसी थापऽ
ओको ते जीवऽ धड़कायऽ धीरऽ तपोऽ

भावार्थ: हे सूर्य देवता, तुम तेज मत तपो। मेरी सुन्दर गोरी नार खेत में काम कर रही है। उसका रंग जल जायगा। मेरी हृदय प्रिया फूल के समान कोमल है, तुम्हारे तेज से उसके अंग झुलस जायँगे और उसका रूप कुम्हला जायगा। उसने पंचरंगी चूंदड़ ओढ़ी है, तुम्हारे ताप से उसके चूंदड़ का रंग उड़ जायगा। हे सूर्य देवता, उसे तेज धूप का ताप लग गया तो उसके हृदय की घड़कन बढ़ जायगी। तब वह घर आकर रोटला कैसे थापेगी। इसलिए हे सूर्य देवता धीरे तपो।

निमाड़ के नृत्य गीतों में सूरज की सहज स्तुति एवं प्रस्तुति की गई है। पति को अपनी पत्नी की जितनी चिन्ता है उतनी ही चिन्ता पत्नी को अपने पति की भी रहती है। पति खेत पर गया और सिर पर फेटा बाँधना भूल गया। तो फिर क्या होता है, इस नृत्यगीत में जीवन्त वर्णन है।

गीत-

आजऽ मति तपऽ रे भानु खोटो
स्वामी म्हारो बाँधी नी गयो फेटो
फेटो नी बाँध्यो ते खोपड़ी ओकी चटकऽ
खोपड़ी चटकऽ तो म्हळकऽ म्हारो स्वामी
खायऽ नी बल्लम मही रोटोऽ
तपऽ मति रे भानु खोटो
खोटो तपगऽ तो खेत कसाँ फिरसाँ
खेतऽ नी जासाँ तो अन्न को होसे टोटो
तपऽ मति से भानु खोटो

भावार्थ: हे सूर्य देवता, तुम प्रचण्ड मत तपो। मेरे स्वामी आज खेत पर जाते समय सिर पर फेटा बाँधना भूल गये। खेत में तेज घाम

लगेगा तो उनकी खोपड़ी चटक जायगी। खोपड़ी चटकेगी तो वे उछाट मारेंगे और उन्हें उल्टी होने लगेगी। वे मही रोटा भी नहीं खा पायँगे। अगर खेत पर नहीं जा पायँगे तो अन्न का टोटा पड़ जायगा। हे सूर्य देवता आप धीरे तपो, मेरे पति खेत पर फेटा बाँधकर जाना भूल गये हैं। आप प्रचण्ड मत तपो।

एक और बड़ा ही मार्मिक भजन है, जिसमे एक नारी सूर्य देवता से अरज करती है, कि वह अभी थोड़ी देर रुके, उदित न हो। गीत है–

धड़केऽ मति ऊँगजेऽ रे, सूरिया भानऽ...
खेतऽ मऽ गयो म्हारो पति भगवानऽ
आठऽ घोड़ा नऽ खऽ थोबो सूरिया भानऽ..
किरण की लेज़ खऽ खैचलो सिरि भगवानऽ
मायऽ बिनऽ मायक्यों नऽ बापऽ बिनऽ लाड़ऽ
वीरा बिना सूना पीयर परिवारऽ...
सासु बिनऽ मायक्यों नऽ बापऽ बिनऽ लाड़ऽ
वीरा बिना सूना पीयर परिवारऽ ...
सासु बिनऽ सासरो न ससरा बिनऽ लाजऽ
स्वामी बिना पूरा रह्य संसारऽ...
सूरजऽ बिनऽ दिनऽ नऽ चाँद बिनऽ रातऽ...
तारो बिनऽ सूनो पूरो आकाशऽ...

भावार्थ: हे सूर्य देव, तुम अभी उदित मत होना मेरा पति खेत में गया है। तुम अपने आठ घोड़ों को किरण की सुनहरी लेज से कसकर रखना। यदि तेज तपोगे तो मेरे पति को घाम लग जायगा। माता के बिना मायका, पिता के बिना लाड़ और भाई के बिना पीयर सुनसान है। सासु के बिना ससुराल,ससुर के बिना मर्यादा और पति के बिना तो पूरा संसार सूना है। सूर्य के बिना दिन और चंद्रमा के बिना रात सूने हैं। तारों के बिना आकाश सूना है।

सूर्य की दृष्टि, हमारी सृष्टि में हमारी छोटी से समझ से परे है। लेकिन, तब कुँआरी कन्याएँ वर की कामना करती हैं तो गाती हैं–

पति दीजे परमेसर गौराऽ पति दीजे परमेसर,
पानऽ एतरो पतळो गौरा, फूलड़ा एतरो ओको भारऽ
सूरिया एतरो तेजऽ औऽ गौराऽ चाँदऽ एतरो सीतळायऽ
पाणी एतरो निरमळो औऽ गौरा, केवड़ा एतरो म्हकायऽ
पति दीजे परमेसर गौराऽ

भावार्थ: हे परमेश्वरी गौरा, आप हमें आपके पति जैसे ही पति परमेश्वर का वर दीजिए। हे गौरा माता, मेरा पति पान जैसा पतला हो और उसका भार फूल जैसा हो। वो सूर्य जैसा तेजवान् हो साथ ही चन्द्रमा की तरह शीतलता प्रदान करने वाला भी हो। हे गौरा माता मुझे ऐसा पति परमेश्वर दीजिए जो जल जैसा निर्मल हो और उसकी सुगन्ध केवड़े जैसी फैलती रहे।

पुरुष का तेज ही उसकी ऊर्जा है, वही पौरुष्य है। सूर्य के तेज को सहना असम्भव है, लेकिन चराचर जगत पर सूर्य के तेजोमय रूप का प्रभाव कन्या को आकर्षित करता है। कन्या विराट की कल्पना करते हुए अपने गौरा माता से वर माँगती है। केवल विवाह के लिए ही कन्यायें वर नहीं माँगती हैं। अपितु बालिकाएँ खेल-खेल में नाचते-कूदते भी अपने लिए दो वीरा (भाई) बहुत सी बहनें माँगती हैं। वे गीत के माध्यम से आकाँक्षा व्यक्त करती हैं कि उन्हें कैसा वीरा और कैसी बहन चाहिए। इसी से संबन्धित, बाल सुलभ समझ के गीत हैं–

देवी माँयऽ देवी माँयऽ झूलाडूँ तुखऽ पाळना माँयऽ
छाबड़ी भरी फूलड़ा लावाँऽ, गूँथा ओकी माळा माँयऽ
चाँद सूरजऽ जसा वीरा दीजे, तारा जसी बईण माँयऽ

भावार्थ: हे देवी माता, तुझे पालने में बैठाकर झूला झुलाउँगी, छाबड़ी भर फूल लाकर उनकी माला गूँथकर तुम्हें पहनाऊँगी। तू हमें आशीषों से भर दे। तू हमें चन्द्रमा और सूर्य जैसा वीरा दे और तारों जैसी झिलमिल बहनें दे। बालिकाओं के ऐसे कई गीत हैं जिनमें वे सूर्य, चन्द्रमा और तारों का मानवीकरण करती हैं।

निमाड़ में कही जाने वाली कथाओं, व्रत-त्योहारों की वार्ताओं में भी सूर्य-चन्द्रमा का वर्णन आता है। निमाड् के भित्ति चित्रों और माण्डणों में सूर्य-चन्द्रमा को व्यापकता से स्थान दिया जाता हैं। श्रावण मास की अमावस्या पर जिरोती (निमाड़ के विशिष्ट भित्त चित्र) पूजन किया जाता है। जिरोती घर के मध्य कक्ष या चौके के द्वार के दोनों ओर दोनों कवलों पर बनाई जाती है। उन दोनों जिरोतियों में सूर्य और चन्द्रमा उकेरे जाते हैं और उनका पूजन भी होता है।

निमाड़ में नाग भित्ति चित्रों की भी पुष्ट परम्परा है। नाग के विवध प्रकारों के भित्ति चित्र बनाए जाते हैं कुछ बहुत जटिल और कलात्मक तो कुछ सरल होते हैं। प्राय: सभी चित्रों में नागों के साथ भी सूर्य और चन्द्रमा बनाये जाते हैं।। जिरोती अमावस्या के बाद नाग पंचमी पर नाग पूजन किया जाता है। जिरोती के ऊपरी भाग में नाग बनाये जाते हैं। इनके साथ भी सूर्य-चन्द्रमा रहते हैं। दशहरा के दिन बनाये जाने वाले माण्डणों में भी सूर्य और चन्द्रमा बनाये जाते हैं।

कुआर मास की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक पंद्रह दिन तक निमाड़ की बालिकाएँ साँझाफूली खेलती हैं। दिन

और रात के मिलन को निमाड़ में साँझ कहते हैं। जब सूर्यदेव अस्ताचल को जाते हैं, तब आकाश में उनके आभामण्डल का स्वर्णिम वर्ण बिखर जाता है। आकाश की इस स्थिति को साँझाफूली कहते हैं। कुआर में सायंकाल में सूर्य की अद्भुत स्वर्णिम आभा से मोहित होकर बालिकाएँ उसे अपनी सखी के रूप में देखती हैं।

निमाड़ की बालिकाएँ इसी काल में अपने आँगन की दीवाल पर गोबर से आकृतियाँ बनाती हैं, जिसमें प्रकृति के सब रूप रहते हैं। गोबर से दीवाल पर एक बड़ा परकोटा बनाती हैं। जिसमें गोबर से पूरब दिशा में सूरज और पश्चिम में चाँद बनाती हैं। जीवन, परिवेश और पर्यावरण से संबंधित विविध आकृतियाँ गोबर से उकेरी जाती हैं। इनको फूल-पत्तियों आदि घर में उपलब्ध सभी सामग्रियों से सजाया जाता है। वे गीत गाती हैं, साँझाफूली उनकी एक दिव्य सहेली है, जो आकाश से सांझ को उतार कर धरती पर लाती है।

गीत-

बईणऽ साँझा थारा बागऽ मंऽ
कौन साऽ फूलड़ा खिलऽ हो खिलऽ होऽ...
म्हारा बाग मऽ सुणऽ सहेलीऽ
चमेली चम्पो गेंदो खिलऽ हो खिलऽ होऽ..
बईणऽ साँझा धारा आँगणा मंऽ
कौन साऽ वीरा खेलऽ हो खेलऽ होऽ
म्हारा आँगणऽ मंऽ सुणऽ सहेलीऽ
दिनऽ मऽ सूरजऽ वीरो दमकऽ हो दमक होऽ
रातऽ पड़े आँगणऽ मंऽ चन्दो बीरो चमक हो चमकऽ हो

भावार्थ: साँझाफूली से सखियाँ पूछती हैं, कि हे साँझा बहन तेरे बगीचे में कौन से फूल खिलते हैं। साँझाफूली कहती है, मेरे बाग में चम्पा, चमेली और गेंदा खिलता है। सखियाँ फिर पूछती हैं, हे साँझा बहन तेरे आँगन में कौन से भाई खेलते हैं। साँझा कहती है, मेरे आँगन में दिन में सूरज वीरा (भाई) दमकता है और रात होने पर आँगन में चन्दा वीरा चमकता है।

सन्तान जन्म के ग्यारहवें दिन सूरज पूजा की परम्परा है। इसमें हलदी से एक परकोटा बनाकर उसमें जलदेवी बनाई जाती है। इस परकोटे में पूर्व सूरज और पश्चिम में चन्द्रमा बनाया जाता है।

लोक का यह उपकृत भाव है हमारे आदि देव के प्रति। आदि देव को लोक कभी नहीं विसरते। यहाँ तक कि शिशु की बाह्य बाधाओं से रक्षा के लिए उसके मस्तक पर काजल से सूर्य और चन्द्रमा का टीका लगाया जाता है।

लोक सदैव अपने आराध्य देवी- देवताओं एवं चराचर जगत में तादात्मय भाव बनाये रखता है। ऐसे ही भाव की अभिमति का एक गीत है। समस्त जीवों को विश्राम की आवश्यकता होती है, फिर सूर्य देवता तो नवखण्ड पृथ्वी पर चलते हैं। तब तो उन्हें भी कुछ समय विश्राम मिलना चाहिए। जब सूर्य देवता विश्राम करने जायँगे तब इस जगत को भी विश्राम का अवसर प्राप्त हो सकेगा। जब सूर्योदय का सगुण जीवंत चित्रण गीतों में गूँथा, लोक ने तब वह सूर्यास्त बेला को कैसे भूल सकता है। यहाँ सगुणी सांझुली आती हैं, और सूर्य देवता से सोने का आग्रह करती हैं।

गीत -

साँझ भई दिन अथणऽ लाग्योऽ
सूरिमलऽ करोहोऽ विसराम
सगुणी वय लड़ीऽ सांजुली आवऽ
सूताऽ हो सूरिमलऽ जागऽ चन्दा हो राज
पलंगऽ पिछोड़ी हुयो रे मिलापऽ
राजा राणी हुचो रे मिलापऽ
वय लड़ी सगुणी साँझुली आवऽ
अस्ताचलऽ मंऽ मच्योरे घमसाळऽ
गौवा बछुआ हुयो रे मिलापऽ
तो सगुणी साँझुली आवऽ

भावार्थ: साँझ का उदय हो गया है, दिन का प्रकाश अब जम कर अन्धकार में बदलने लगा है। हे सर्वगुणी साँझ! तुम्हारा आगमन हो गया है। अब सूर्य देवता विश्राम करेंगे, सो जायँगे। अब चन्द्रमा जागकर पृथ्वी को जगमग कर देगा। सम्पूर्ण जगत विश्राम करेगा। पलंग और बिस्तर का मिलन होगा, राजा-रानी का मिलन होगा। सर्वगुणी साँझ आ गई है, अब गो और बछुआ का मिलन होगा। सूर्य अस्ताचल में गया है। आकाश में अंधेरे का घमासान हो रहा है।

लोक ने ब्रह्माण्ड के सर्व शक्तिमान पिण्ड आदि देव को भी अपने गीतों में सरल-सहज भाव से गूँथा लिया। जिन्हें ऋषि-मुनियों ने स्तुति की- ''आदि देव नमस्तुभ्यम् प्रसीद मम भास्कर'' और उसे लोक ने गाया ''ऊँग्यो, ऊँग्यो सूरियाभान''।

- लेखिका- वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन, बावड़िया कला, पोस्ट ऑफिस
त्रिलंगा, भोपाल-462039
मो.: 9819549984

■

कवि फ़ेदेरिको गार्सिया लोर्का की कविताएं

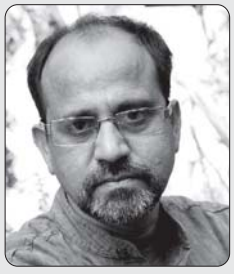

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रति: शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

भाषान्तर में इस बार स्पेनिश कवि फ़ेदेरिको गार्सिया लोर्का (1898–1936) की एक कविता का अनुवाद।

मेरी बहन इसाबेलिता के लिए एक कविता

शाम गाती है एक लोरी
संतरों के लिए
मेरी छोटी बहन गाती है
''यह पृथ्वी एक संतरा है''

रोता हुआ चाँद गाता है
''मैं संतरा होना चाहता हूँ''

तुम नहीं हो सकते – ओ मेरे प्रिय –
भले ही तुम थोड़ा गुलाबी हो जाओ
या फिर थोड़ा बहुत पीला नींबू की तरह
यह कितना दु:खद है!

रेखांकन : सिद्धेश्वर

संतरे के बाँझ पेड़ का गीत

ओ लकड़हारे
मेरी छाया काट कर अलग कर दो मुझसे ।
बिना फल के खुद को देखने की यातना से
आजाद कर दो मुझे ।

आइनों के बीच क्यों जन्म लिया था मैंने ?
दिन घेरा बनाकर बढ़ रहा है मेरी तरफ,
और रात अनुकरण कर रही है मेरा
अपने सितारों के साथ।

मैं खुद को देखे बिना जिंदा रहना चाहता हूं,
और मैं स्वप्न देखूंगा कि चींटियाँ
और भटकटैया
मेरी पत्तियां और परिंदे हैं ।

ओ लकड़हारे
मेरी छाया काट कर अलग कर दो मुझसे ।
बिना फल के खुद को देखने की यातना से
आजाद कर दो मुझे।

गिटार

गिटार का रोना शुरू हो गया है ।
भोर के प्याले चकनाचूर हो गए हैं ।
गिटार का रोना शुरू हो गया है ।
व्यर्थ है उसे ख़ामोश करना ।
असम्भव है उसे ख़ामोश करना ।
नीरस है इसका रोना
जैसे पानी रोता है
जैसे हवा रोती है
बर्फ़ीली धरती पर ।
असम्भव है उसे ख़ामोश करना ।
वह दूरस्थ चीजों के लिए रोता है ।
दक्षिण की गर्म रेत
उदास है कमेलिया के सफेद फूलों के लिए।
बाण रोता है बिना लक्ष्य के
बिना सुबह की शाम
और वह पहली मरी हुई चिड़िया
शाख पर ।
ओह, गिटार !
हृदय बुरी तरह ज़ख्मी है
पांच तलवारों से ।

■

गीत

डॉ. वीरेन्द्र स्वर्णकार 'निर्झर' के नवगीत

डॉ. वीरेन्द्र स्वर्णकार 'निर्झर'

जन्म - 15 अक्टूबर, 1949, महोबा (उ.प्र.)
प्रकाशन : ओंठो पर लगे पहरे (नवगीत संग्रह), सपने हासियों पर (नवगीत), खिड़की पर सूरज बैठा है (नवगीत), ठमक रही चौपाल (दोहा संग्रह), संघर्षों की धूप (दोहा सतसई), वार्ता के वातायन (वार्ता संकलन), विप्लव के पल (प्रबंधात्मक काव्य संग्रह)
संपर्क : एम.बी./120, न्यू इंदिरा कॉलोनी, बुरहानपुर, मप्र.
मो. 9425951297

कहानी में मोड़

खुशियों पर प्रतिबंध लग गया
और जिन्दगी रद्द हो गई
सचमुच यह तो हद्द हो गई।
दिन भर की पीड़ा कुंठा के
जख्मों को सीते
रोज रोज की आपाधापी
में मरते जीते
सब कुछ इतना ठोस हो गया
कविता जैसे गद्द हो गई ।
सहमी हुई हवाओं में
पुश्तों की खामोशी
दोषों की शिनाख्त पर
हम ही गिने गए दोषी
सच को कारावास हो गया
पाप वृत्ति अनवद्द हो गई।

रेखांकन : सिद्धेश्वर

किन किन बातों कों हम छोड़ें
कहाँ आँख मीचें
किनसे लड़ें किन्हें सहलाएँ
और किन्हें सींचें
मनमानापन आम हो गया
बोध दृष्टि प्रतिबद्ध हो गई।

पीढ़ियाँ भटकी हुई हैं

पीढ़ियाँ भटकी हुई हैं
अधर में /अटकीं
न इस घट की
न उस घट की हुई हैं।
प्रगति और विकास के
नवसूजन की मंगल ऋचाएँ
रुष्ट हैं अपने समय से
ये शिखंडी आत्माएँ
वृद्ध बरगद पर
किसी बैताल सी लटकी हुई हैं
स्वयं के अस्तित्व से
विश्वास ऐसे हट गया है
रूपसी के वस्त्र का
आकार जैसे घट गया है
सभ्यता की होड़ में
कुछ चिंदियाँ अटकी हुई हैं।
मंजिलों के मोह में
सूरज तमस से मिल गया है
रोशनी का फलसफा
रिद्धान्त से ही हिल गया है
स्याह गहरी रात है
औ चिमनियाँ चटकी हुई हैं।

कुछ तो कर

समय सभी से है ऊपर
हाथ बाँध कर बैठ न ऐसे
गाण्डीव पर शर तो धर
कुछ तो कर...
उसके गेह धूप ने आना
ही कर दिया मना
भूख प्यास का जोड़ घटाना
जिससे नहीं बना
सूरज की मत बाट जोह तू
अमा निशा है दीपक धर ।
कुछ तो कर...
यह निस्सीम गगन उनका है
जो उड़ान भरते
हर बाधा को लाँघ नियति के
सिर पर पग धरते
बातों के मत शिखर खड़ाकर
नीवों में ही पत्थर भर
कुछ तो कर...
रददी में मत फेंक समय के
किसी विफल पल को
अनउत्तरित समस्याओं को
आज और कल को
शब्द नहीं यदि पढ़ पाता है
जोड़ जोड़कर पढ़ अक्षर।
कुछ तो कर....

■

कविता

सदाशिव कौतुक की कविताएँ

सदाशिव कौतुक

जन्म - 1 जनवरी, 1948, गोगावाँ, प. निमाड़ (म.प्र.)
प्रकाशन : अनेक विधाओं में 65 कृतियाँ
संपादन : इंदौर के ग्यारह कवि, निमाड़ की माटी मालवा की छाँव, उबाल एवं चार अंगुल- कविता संग्रह
सम्मान: देश के प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा अखिल भारतीय 46 सम्मान एवं पुरस्कार
संपर्क : 'श्रमफल', 1520, सुदामा नगर, डी-सेक्टर, 60 फीट रोड, इंदौर-452009
मो. 9893034149

चाँद - एक

चरखा चला रही माँ ने
अपने बेटे चाँद को
बादल से गुफ्तगू करते देखा
और पूछा -
बादल उसके कान में
क्या कह रहा था ?
चाँद ने कहा -
बादल कह रहा था मुझसे
दूर से आए हो / और
दूर तक जाना है
मैं पानी से लबरेज हूँ
प्यास लगी हो तो
शीतल पानी पीते जाना
हम दोनों सहयात्री हैं
मैं भी तुम्हारी तरह अनवरत
विचरण करने निकलता रहा हूँ
धरती की प्यास बुझाने
और तुम भी निकलते रहे हो
धरती पर चाँदनी बिखेरने।

रेखांकन : सिद्धेश्वर

चाँद - दो

आज पूनम की रात है
है पूरे शबाब पर चाँद
ऐ रात !
जल्द मत गुजर जाना
आज सबेरा देर से होने देना
आज चाँद....
मेरी प्रियतमा की जुल्फों के
काले बादलों में उलझ कर
भटक गया है
भूल गया है रास्ता अपना
उसे जुल्फों के बादलों से
बाहर निकलने में
देरी हो सकती है
चाँद की माँ से कह देना
वह इन्तजार नही करे
उसकी चाँदनी उसके साथ ही है
वह घर आ जाएगा सुरक्षित
चाँदनी के उजाले में।

अमरफल

ईश्वर मुझे
अमर होने के लिए
अमरफल खाने को देवें
तब भी मैं
अमरफल नहीं खाऊँगा
कितने भी अमरफल खा लूँ
फिर भी यह कमबख्त मँहगाई
मुझे मार ही डालेगी/ और
अमरफल का वरदान
झूठा साबित हो जाएगा
इसलिये...
हे ईश्वर!
अमरफल की अवधारणा बनी रहे
यही तुम्हारे हित में है।

■

ग़ज़ल

महेश कटारे 'सुगम' की (त्रिपदी) गजलें

महेश कटारे 'सुगम'

जन्म - 24 जनवरी 1954, पिपरई, ललितपुर (उ.प्र.)
प्रकाशन : प्यास (कहानी संग्रह), गाँव के गेंवड़े (बुंदेली ग़ज़ल संग्रह), हरदम हँसता गाता नीम (बाल-गीत संग्रह), तुम कुछ ऐसा कहो (नवगीत संग्रह), वैदेही विषाद (लम्बी कविता), आवाज़ का चेहरा (ग़ज़ल संग्रह) सहित अनेक कृतियाँ प्रकाशित
संपर्क : काव्या, चंद्रशेखर वार्ड, बीना, जिला सागर (म.प्र.)
मो. 9713024380

उस चलनी में छेद बहत्तर

एक छेद का ऐब दिखाकर
मांग रही सूपों से उत्तर
उस छलनी में छेद बहत्तर

स्वयं सिद्ध कौए हो बैठे
काँव काँव ही हुआ श्रेष्ठ स्वर
कोयल को कर दिया निरुत्तर

ठुमुक ठुमुक चलती बासंती
इम्तिहान में फैल हो गई
अंधड़ का है शुभ्र चरित्तर

वर्तमान की तुलना करने
ले आये हैं ढूढ़ उद्धरण
फिर अतीत का वर्ष पचत्तर

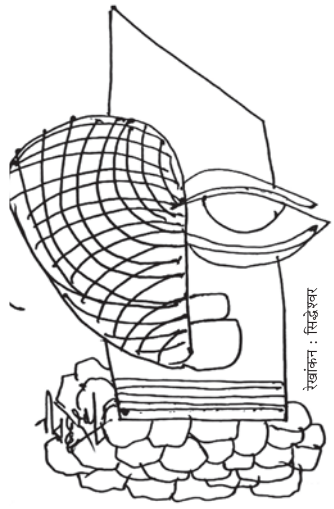

रेखांकन : सिद्धेश्वर

कुटिल सोच ने धूल झोंकने
रांगे की हसुली बनवाकर
चढ़ा दिया सोने का पत्तर
उस छलनी में छेद सतत्तर

सबके लिए खुशी का क्षण है

एक पेड़ के मृत्यु भोज में
अमर बेल का आमंत्रण है
सबके लिए खुशी का क्षण है

दरबारी रिश्तों के चलते
सच्चाई के हुए चींथड़े
खुद्दारी का चीर हरण है

पूंजी के इस चक्रवात में
श्रम का शरणागत हो जाना
मूल्यों का हो रहा क्षरण है

अम्ल, क्षार का मिलन हो रहा
गलबहियां डाले फिरते हैं
बना जा रहा नया लवण है

सन्नाटे के पीछे पीछे
उबल रहा आक्रोश भयानक
साफ दिख रहा उदाहरण है
सबके लिए खुशी का क्षण है

बुंदेली त्रिपदी
भइया मोरी बात अलग है

हम नंइयां तुम सब मे सामल
बिना जात की जात अलग है
भइया मोरी बात अलग है

मिली मुफत में जब सें गागर
मरे जात हैं रखवारी में
दिरकी हती चिचात अलग है

जब सें पकौ भरोसा टूटौ
गुरा गुरा टूटे जियरा के
नग नग देह पिरात अलग है

पोंच गये ते हम यारी में
हन कें मोरी करी फजीती
अब हर दिना बुलात अलग है

कैत भले हम सब एकई से
लिगां न बैठन देत मनौ वे
कैवे खों कैनात अलग है
भइया मोरी बात अलग है

शब्द एवं अर्थ-
सामल-शामिल। दिरकी - दरार पड़ी हुई। चिचाना - पानी रिसना। गुरा गुरा - नस नस। नग नग - हड्डियों के जोड़। पिराना - दुखना। हन कें - बुरी तरह से। कैनात - कहावत।

■

कविता

राष्ट्रकवि श्रीकृष्ण सरल की कविता

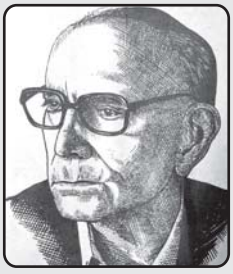

श्रीकृष्ण सरल

जन्म - सन् 1919, उज्जैन (मध्यप्रदेश)
प्रकाशन : क्रांति व अध्यात्म पर विश्व में सर्वाधिक 15 महाकाव्य, गद्य व पद्य में समान लेखन, कुल 125 पुस्तकें निजी व्यय से तथ्य संकलन के लिए 12 देशों का भ्रमण, सर्वाधिक बड़ा सचित्र महाकाव्य 'क्रांति गंगा' 1052 पृष्ठ। क्रान्ति साहित्य, राष्ट्रीय साहित्य, नारी-महिमा, युवा शक्ति, काव्य-सूक्ति
मो. -919537060794

रेखांकन : सिद्धेश्वर

प्रसंग: 7 नवंबर 2022 को शहीद भवन, भोपाल में 'कला समय' संस्था द्वारा आयोजित 'संस्कृति-पर्व: तिरंगे की शान में' इंजी- अभिषेक सरल, पौत्र राष्ट्रकवि श्रीकृष्ण सरल का उद्बोधन। प्रस्तुत पद्यांश सरलजी की पुस्तक 'राष्ट्र-वीणा' में प्रकाशित कविता 'नवरस' से उद्धृत तिरंगे की व्याख्या है -

तिरंगा (गणतंत्र दिवस 2023)

दे गए देश को जो अपनी तरुणाई
जो मरे-खपे, उन सब की याद भुलाई,
जो आज तिरंगा लहर-लहर लहराता
लहराने का बल यह लाशों से पाता।

यह केशरिया रंग भगत सिंह का रंग है,
देखो तो दीवाने का कैसा ढंग है -
कल सुबह मौत की गोदी में सोयेगा,
क्षण एक नहीं वह आज व्यर्थ खोयेगा ।

बेड़ियों और हथकड़ियों को खनकाता,
क्या झूम-झूमकर यह मस्ती से गाता -
माँ ! रँग दे मेरा आज बसंती चोला,
जो पहन शिवा ने माँ का बन्धन खोला ।

राणा प्रताप ने भी यह चोला पहना,
यह युगों-युगों से है वीरों का गहना ।
जो दूध पिलाया, उसमें अमृत घोला,
माँ रँग दे मेरा आज बसंती चोला ।

बासंती फूलों-सा मन फूल भूल गया रे !
लो, खींची डोर मस्ताना झूल गया रे !
क्या याद हमें आज़ाद नहीं आयेगा ?
क्या उसका सारा खून व्यर्थ जायेगा ?

क्या नहीं किन्हीं आँखों का वह तारा था ?
अँधियारे घर का वह भी उजियारा था ।
माँ ने, बेटे की दु:खद खबर थी पाई थी,
पूनम के घर जैसे मावस आई थी ।

जो मिले, पूछती मेरा लाल कहाँ है ?
मेरे मानस का मंजु-मराल कहाँ है ?
मुझ हतभागिन का उन्नत भाल कहाँ है ?
इस धरती का जोगी बेताल कहाँ है ?

है अकथनीय जो उस माँ पर बीती थी,
खाने को क्या रक्खा, आँसू पीती थी।
आज़ाद वीर की ही माँ नहीं अकेली
कितनी माताओं ने यह पीड़ा झेली।

है माताओं का ही यह विकट कलेजा,
जो कोख उजाड़ी, गौरव सदा सहेजा।
जो रंग तिरंगे में यह अमल-धवल है,
यह भारत की माताओं का आँचल है।

ये शुभ्र सफेदी का जो रंग चमकता,
इसमें माताओं का ही दूध दमकता।
वह दूध प्रेरणा उत्सर्गों की देता,
वह दूध खून में है बिजली भर देता।

यह हरा रंग प्रिय क्रांति-कहानी का है,
यह रंग देश की चूनर धानी का है।
यह रंग धर्म का नहीं, देश का अपना,
आज़ादी की आँखों का पहला सपना।

प्रस्तुति : इंजी. अभिषेक सरल ■

प्रवासी भारतवासीमिशन के सूत्रधार पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी

– डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

भारत की सीमा आज भारत के नक्शे तक ही सीमित नहीं हैं। धरती के विस्तार में जहाँ जहाँ तक प्रवासी–भारतवासी रह रहे हैं, वहाँ– वहाँ तक भारत है, यह बात गहराई और संवेदना के साथ समझने की है।

विश्व में प्रवासी–भारतवासियों का विस्तार वास्तव में भारत का ही विस्तार है।

अपनी मातृभूमि और मूलस्रोत के प्रति प्रवासी–भारतवासियों की सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं, यह स्वाभाविक भी है।

भारत–सरकार के प्रयासों से प्रवासी–भारतवासियों के बहुत विशाल सम्मेलन होते रहते हैं। अब तो बात नागरिकता के अधिकार तक पंहुच चुकी है, लेकिन यह संपर्क जनता के स्तर पर और–अधिक व्यापक तथा गहरा होना आवश्यक है।

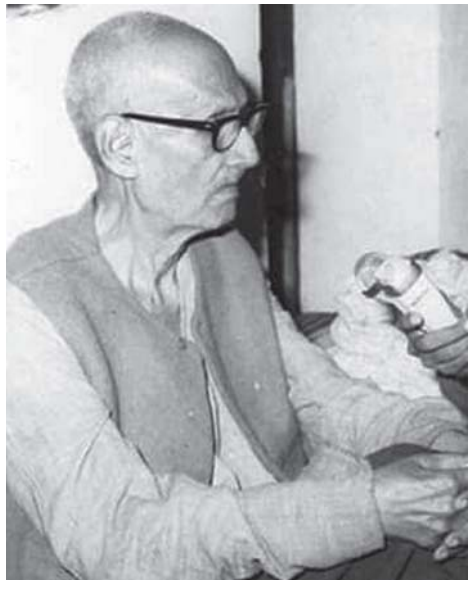

हमें निरन्तर यह जानने की उत्सुकता बनी रहनी चाहिए कि विश्व के किन–किन देशों में भारतवंशी रह रहे हैं, वहाँ उनकी जीवन स्थितियाँ क्या हैं ? वहाँ कौन कौन से भारतीय वैज्ञानिक हैं, कौन कौन से भारतीय साहित्यिक और चिन्तक हैं, उनका उन देशों के प्रति क्या योगदान है ?

मानवता की दृष्टि से भी उनकी वैज्ञानिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों, उपलब्धियों और साधनाओं के प्रति हमारी जिज्ञासा बनी रहनी आवश्यक है।

हमारे युवकों के लिए प्रवासी भारतीयों के इतिहास को जानना समझना भी आवश्यक है। प्रवासी भारतीयों का इतिहास अभ्युदय और विस्तार के साथ ही बहुत कठिनाइयों, अन्याय–अत्याचार के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष तथा उथल–पुथल का इतिहास है।

भारत के लोगों ने उन देशों में जाकर जंगलों, पहाड़ों और मरुस्थलों को मनुष्य के रहने योग्य बनाया और वे स्वयं भी वहाँ बस गये। वे जहाँ बसे वहाँ भारत की भाषायें बस गयीं, भारत की चिन्तनप्रणाली बस गयी, भारत का सौन्दर्यबोध बस गया, भारत की सांस्कृतिक–परंपराएं बस गयीं।

प्रवासी–भारतवासियों के प्रति महात्मागांधी बहुत सचेत थे, यही कारण है कि 1914 में श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी की पुस्तक ''फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष'' प्रकाशित हुई तो उन्होंने इसके लेखक को खोजने का प्रयास किया और खोज कर के साबरमती– आश्रम में अपने पास बुला लिया , जहाँ श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी बापू की देख–रेख में 1921 से 1925 तक कार्य करते रहे। इस सम्मिलन से जो अभियान आगे बढ़ा उसे हम प्रवासी–भारतवासी– मिशन के रूप में जानते हैं।

निश्चित ही इस मिशन के सूत्रधार पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी थे और उनकी (1914 से लेकर 1936 तक) बाईस बरस की साधना को भुलाया नहीं जा सकेगा। ध्यान देने की बात यह है कि इस अभियान में लाभ पाने या कमाने का भाव नहीं, मानवीय–संवेदना थी, दर्द था और इसीलिए वह मिशन था।

फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष

वास्तव में ''फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष'' नामक पुस्तक श्रीतोताराम सनाढ्य की अपबीती थी, जिसमें गिरमिटियों की दशा का दिल दहलाने वाला वर्णन था, स्वयं चतुर्वेदीजी ने लिखा है कि इस वृतान्त को लिखते समय मैं रोता रहता था। उस जमाने के बहुत बड़े अखबार ''लीडर'' ने इस किताब को लेकर अग्रलेख लिखा तथा ब्रिटिश साम्राज्य की शाही –परिषद में इसका उल्लेख हुआ।

इस किताब ने ब्रिटिश–सरकार को बाध्य किया और फीजी में रह रहे भारतीयों की जीवनस्थितियों का अध्ययन करने के लिए

एक प्रतिनिधि-मंडल भेजा गया, जिसकी रिपोर्ट श्री कार्बेट ने लिखी किन्तु उसे सार्वजनिक नहीं किया गया, आज उस रिपोर्ट की प्रति लन्दन की इंडिया आफिस लायब्रेरी में है।

लेंकास्टरयूनिवर्सिटी के प्रोफेसर श्रीटिंकर ने अपनी पुस्तक ''न्यू सिस्टम आफ स्लेवरी'' में लिखा था कि यह किताब स्त्री-समाज तक पंहुच चुकी है। 1984 में शिकागो विश्वविद्यालय के श्री जौन दी कैली ने इस पुस्तक का अंग्रेजी-अनुवाद पुन: प्रकाशित किया।

प्रवासी भारतवासी

1918 में बनारसीदास चतुर्वेदी ने 728 पृष्ठों की बड़ी पुस्तक लिखी 'प्रवासी भारतवासी', जो सरस्वती सदन इन्दौर से प्रकाशित हुई ! यह अपने विषय की पहली पुस्तक थी! इसमें विदेशों में बसे हुए लाखों भारत-वंशियों का इतिहास है। इस पुस्तक की भूमिका विख्यात भारतभक्त सी एफ एंड्रयूज ने लिखी थी।

फिजी की समस्या

फिजी की समस्या नामक पुस्तक साबरमती -आश्रम से प्रकाशित हुई , जिसमें 1920-21 के उपद्रवों और भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन है।

अभियान

बनारसीदास चतुर्वेदी ने मर्यादा, चाँद, विशाल भारत, गुजराती पत्र नवचेतन के प्रवासी-अंक संपादित-प्रकाशित किये, उन्होंने अपने मिशन को लेकर अभ्युदय, प्रताप, आज, भारतमित्र, लीडर, हिन्दू, बौंबे-क्रोनिकल जैसे विभिन्न अखबारों में निरन्तर प्रवासी भारतवासियों की जीवनस्थितियों पर लेख लिखे, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस अभियान ने सामान्यजन से लेकर राष्ट्रीय नेतृत्व तक को झकझोर दिया।

इसका एक उदाहरण यह था कि जब 'दि हिन्दू' नाम के अखबार में बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रवासी-भारतवासियों के प्रति राष्ट्रीय नेतृत्व की उपेक्षा को क्रिमिनल नेग्लीजेंस लिखा तब साबरमती आश्रम में होने वाली कांग्रेसवर्किंग कमेटी में राजगोपालाचार्य ने कहा कि इतने कठोर शब्दों का प्रयोग कहाँ तक उचित है ?

आगे चल कर महामना मालवीय, गोखले, डा. मणिलाल, भवानी दयाल संन्यासी, सी वाई चिन्तामणि, श्रीनिवास शास्त्री, डा.शिवगोविन्द, कोदंडराव आदि उनके सहयोग के लिए किसी न किसी रूप में आगे आगये !

बनारसीदास चतुर्वेदी ने कांग्रेस को भी प्रवासी- भारतवासी मिशन को लेकर समिति बनाने का सुझाव दिया था। 1922 में इंडियन नेशनल कांग्रेस में प्रवासी- विभाग की स्थापना हुई थी और सरोजिनी नायडू, अशरफ अली, शेरवानी, लाला लाजपतराय की एक कमेटी बनी थी। कलकत्ता कांग्रेस में तो स्वयं नेहरूजी ने कांग्रेस में प्रवासी-विभाग की स्थापना का प्रस्ताव किया था। 1925 में बनारसीदास चतुर्वेदी ने कांग्रेस-प्रतिनिधि के रूप में पूर्व अफ्रीका के केनियाँ, युगांडा, टांगानिका और जंजीबार की यात्रा की थी और प्रवासी भारतवासियों की जीवनस्थितियों का अध्ययन किया था।

1927 में श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने ''प्रवासी'' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। बाबू श्री श्रीप्रकाश ने लिखा है कि जब बनारसीदासचतुर्वेदी 'प्रवासी पत्रिका' का संपादन कर रहे थे , उन्हीं दिनों में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन वहाँ हुआ , मैंने देखा कि बनारसीदासचतुर्वेदी सड़क पर खड़े होकर प्रवासी पत्रिका को बेच रहे थे।

हेनरी पोलक ने कहा था कि प्रवासी भारतवासियों के संबंध में जितनी जानकारी बनारसीदास चतुर्वेदी को है, उतनी किसी दूसरे को नहीं है। उल्लेखनीय है कि हेनरी पोलक ने दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी का साथ दिया था।

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने बनारसीदास चतुर्वेदी को पत्र लिखा कि 'मैं चाहती हूँ कि बृहत्तर भारत के आपकी लगन, श्रम को सभी सफलताएं प्राप्त हों, आपके नि:स्वार्थ परिश्रम से मैं बहुत द्रवित हुई हूँ, अब आपने विश्व का विशालतम परिप्रेक्ष्य प्राप्त कर लिया है, मुझे विश्वास है कि आप अकेले दम पर इस महत्त्वपूर्ण काम को अपने अनुभव और विवेक से परिपूर्ण करेंगे, जो आपने कीनिया और यूगांडा के प्रवासकाल में प्राप्त किया है।

1923 में बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक लेख लिखा 'मेरे स्वप्नों का आश्रम। यह प्रवासीभवन की परिकल्पना थी। यह लेख जीवनसाहित्य, विशालभारत में भी छपा था और 22 नवंबर 1964 को इसे साप्ताहिक-हिन्दुस्तान ने पुन: प्रकाशित किया।

इसके लिए तत्कालीन प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने दिल्ली में भूखंड की व्यवस्था के लिए आदेश दिया था, हालाँकि उस पर किसी प्रभावशाली व्यक्ति ने कब्जा कर लिया था। इसके लिए बनारसीदास चतुर्वेदी ने मारीशस के शिवसागर रामगुलाम, अनिरुद्ध जगन्नाथ आदि से भी बातचीत की थी। बाद में श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने भी पत्र लिखा था।

बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रवासी भारतवासी मिशन संबंधी यह समस्त सामग्री आज राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित है। ■

प्रकृति प्रेम और उनका दार्शनिक पक्ष

अश्वनी कुमार दुबे

साहिर अत्यंत प्रकृति प्रेमी कवि और शायर हैं। प्राकृतिक सौंदर्य को वे समग्रता में देखते हैं। धरती, पहाड़, नदियाँ, दरख़्त, हरीतिमा, चाँद, सितारे, इंद्रधनुष, रात, चाँदनी और विभिन्न ऋतुएँ, इन सबका अपार सौंदर्य उनकी रचनाओं में बिखरा पड़ा है। साहिर मानते हैं कि प्रकृति के विस्तार में उसके विविध रूपों में जीवन का भी विस्तार है। मनुष्य का मन और हृदय प्रकृति के साथ एकाकार है। प्रकृति की हर हलचल; नदियों का मचलना, पहाड़ों का आसमान से बातें करना, हवा की सरसराहट में संगीत के स्वर और बरसात में बूँदों का नाचना, यह सब मानव मन को गुदगुदाता है, इससे उसे एक अव्यक्त सुख और संगीत की अनुभूति होती है। इस अनुभूति की छुअन साहिर के शब्दों में भी महसूस होती है—

उफ़क के दरीचे से किरनों ने झाँका
फ़ज़ा तन गई, रास्ते मुस्कुराए
सिमट ने लगी नर्म कुहरे की चादर
जवा शाखसारों ने घूँघट उठाए
परिंदों की आवाज से खेत चौंके
पुरअसर लय में रहट गुनगुनाए
हसीं शबनम-आलूद पगडंडियों से
लिपट ने लगे-सब्ज़ पेड़ों के साए

साहिर के यहाँ प्रकृति पूरी तरह जीवंत है। हमने भाषा बनाई और भाषा में अपने अहसासों को अभिव्यक्ति दी। प्रकृति की अपनी भाषा है, जिसमें न हों हमारी भाषा जैसे शब्द पर अहसास तो हैं और उनकी अभिव्यक्ति भी। शब्द जहाँ समाप्त होते हैं या जहाँ से शुरू ही नहीं होते, वहाँ प्रकृति के अहसास उपस्थित हैं, उन्हें आत्मसात् करने के लिए शब्दों के छोर तक पहुँचना होता है— साहिर वहाँ पहुँचकर, उन अनुभूतियों को अपने शब्दों में पकड़ने की कोशिश करते हैं। उस अभिव्यक्ति को वे एक नया आयाम देते हैं कुछ इस तरह—

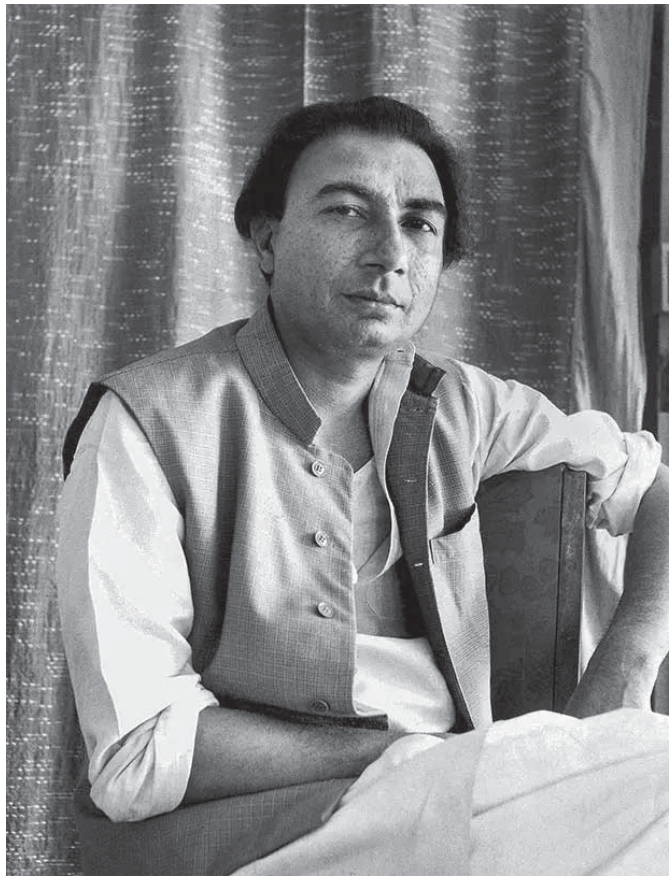

हे..., नीले गगन के तले, धरती का प्यार पले
ऐसे ही जग में, आती हैं सुबहें
ऐसे ही शाम ढले...
शबनम के मोती, फूलों पे बिखरे
दोनों की आस फले...

यहाँ धरती, आकाश, फूल, शबनम, पेड़, नदियाँ और सागर, प्रेम की कैसी अद्‌भुत अनुभूति में रचे-बसे हैं। यह शाश्वत प्रेम की व्यापकता प्रकृति के हर उपादान में किस प्रकार जीवंत हैं, इसका बहुत सुंदर चित्रण इस गीत में हुआ है।

रात और चाँदनी किसे प्रभावित नहीं करती। पर मौसम के साथ यह बदलती भी है। आज है, कल नहीं। थोड़े समय में, इस रात और चाँदनी को पूरी तरह से जी लेना है क्योंकि कल फिर कहाँ? इस

रात और इस चाँदनी में पेड़ हैं, भीगी हवाएँ और तारे। कैसा समां है लेकिन कल फिर कहाँ? साहिर इस अल्पकालिक सौंदर्य को कैसे मानव मन में समेट देना चाहते हैं। देखिए—'ये रात ये चाँदनी फिर कहाँ, सुन जा दिल की दास्तां/चाँदनी रातें प्यार की बातें खो गईं जाने कहाँ?

चाँद और चाँदनी का सौंदर्य है तो सूर्योदय और सूर्यास्त का भी सौंदर्य कुछ कम नहीं है। चाँदनी यदि चाँदी है तो सूर्य का पिघलना सोने से कम है क्या? सूर्यास्त की लालिमा जब फैलती है, धरा पर तब सब कुछ स्वर्णजड़ित हो जाता है। पेड़, पर्वत और जल सब पर एक स्वर्ण परत उतर आती है। इसका ख़ूबसूरत चित्रण साहिर के एक गीत में है— 'पिघलता है सोना दूर गगन पर/फैल रहे हैं शाम के साए...।'

साहिर को पर्वतों से बड़ा प्रेम है। हिमालय उन्हें बार-बार आकर्षित करता है। स्वच्छ धवल उत्तंग शिखर और उसके दामन से निकलती हुई नदियाँ सचमुच उसकी बेटियाँ हैं। ऐसे ही हरे-भरे पर्वत भी हैं, अपने सौंदर्य से अभिपूरित। साहिर लिखते हैं— ये पर्वतों के दायरे, ये शाम का धुआँ...।' और आगे दूसरे गीत में— 'ओ नीले पर्वतों की धारा आई ढूँढने किनारा...।' जब पर्वत हैं, जंगल हैं और इठलाती नदियाँ, तब मदमाती हवा भी तो है। इस सबसे मिलकर जो वातावरण बनता है, वह हर मानव मन में अपार सुख का सृजन करता है। साहिर इस सृजन सुख के साक्षी हैं। तभी तो वे लिखते हैं— 'इस धरती इस खुले गगन का क्या कहना, मदमाती मदमस्त पवन का क्या कहना...।'

बरसात साहिर को बहुत आकर्षित करती है। वे अपने कई गीतों में वर्षा ऋतु का बहुत सुंदर चित्रण करते हैं। जीवनदायिनी वर्षा ऋतु। तपते-झुलसते जेठ और आषाढ़ के बाद जब सावन की फुहारें धरती पर गिरती हैं, तब नाच उठती है पूरी धरती। तन-मन की तपन बुझाती वर्षा ऋतु। प्यासी धरती की प्यास बुझाती वर्षा ऋतु। फिर धरती की कोख में बीजों को अंकुरित करती हुई वर्षा ऋतु। ऐसी वर्षा ऋतु का दिल खोलकर, पूरे उत्साह के साथ शायर स्वागत करता है— 'गरजत, बरसत सावन आयो रे...' इस गीत में आगे सावन से शिकायत भी है कि— 'लायो न संग में हमारे बिछड़े बलमवा?' और जब बरसात में कोई अपने महबूब की एक झलक ही पा लेता है तो शायर के शब्दों में वह कह उठता है— 'ज़िंदगी भर नहीं भूलेगी ये बरसात की रात...।'

जब प्रकृति मन को आह्लादित करती है। भर देती है हृदय को सुखद कोमल भावों से। तब शायर प्रकृति के साथ एक ख़्वाब बुनता है और सुनाता है अपनी महबूबा को कुछ इस तरह—

मैंने एक ख़्वाब सा देखा है
मैंने देखा है कि फूलों से लदी शाख़ों में
तुम लचकती हुई यूँ मेरे क़रीब आई हो
जैसे मुद्दत से यूँ ही साथ रहा हो अपना
जैसे अब की नहीं सदियों की शनासाई हो

प्रकृति के साथ जुड़कर मानव मन का प्रेम कई गुना बढ़ जाता है। वहीं प्रकृति की उपस्थिति प्रेमी हृदयों को मिलन की प्यास बहुत व्याकुल करती है। चाँद है अपने पूरे शबाब पर। चाँदनी छिटकी है। और मधुवन में बहार आई है, फिर अकेला मन और-और व्याकुल हो उठता है अपने मनमीत के लिए। बरसात, ठंडी हवाओं के झोंके भी साथ लाती है। कैसी सिहरन है इन ठंडी लहराती हवाओं में। पर कैसे बुलाए अपने प्रीतम को? देखें इस टीस को साहिर के शब्दों में— 'ठंडी हवाएँ, लहराके आएँ। रुत है जवां, उनको यहाँ, कैसे बुलाएँ?'

प्रकृति तो अपनी जगह है। फैला है उसका सौंदर्य सब जगह। अब नहीं है, अपना प्रीतम अपने पास तो मन को सब ठहरा हुआ सा क्यों लगता है? चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले। हमारी मनोदशा ही प्रकृति में से नए-नए अर्थ निकाल लेती है। धरती, गगन, सितारे सब अपने राग-रंग में डोल रहे हैं वे निमंत्रण देते हैं तुम्हें कि आओ तुम भी इस आनंदोत्सव में शामिल हो। पर न जाने कैसी-कैसी विवशताएँ हैं इस जहान में। तन्हाई में हमें अपना ही अक्स दिखाई देता है प्रकृति में। फिर शायर गा उठता है— 'चुप है धरती, चुप हैं चाँद सितारे/खोए-खोए से ये मस्त नज़ारे।'

वहीं तुम साथ हो और प्रकृति का सान्निध्य भी, तब सुख का पारावार नहीं। बस तुम मुस्कुरा दो तो सारी कायनात मुस्कुरा दे। क्या तादात्म्य है प्रकृति के साथ मानवीय प्रेम का। साहिर लिखते हैं— 'जो तुम मुस्कुरा दो, बहारें हँसें/सितारों की उजली कतारें हँसें।'

प्रकृति का उपहार है फूल। कोमल, सुंदर और सौरभ से भरपूर। न जाने कितने शायरों—कवियों ने फूल से महबूबा का रिश्ता कायम किया है। साहिर पीछे नहीं हैं। उन्होंने मोहब्बत को फूलों से कुछ यूँ जोड़ा है—

पाँव छू लेने दो फूलों को इनायत होगी,
वरना हमको नहीं, इनको भी शिकायत होगी
आप जो फूल बिछाएँ उन्हें हम ठुकराएँ
हमको डर है के ये तौहीन-ए-मुहब्बत होगी

पूरी प्रकृति अपने विविध रूपों में अपने अपूर्व सौंदर्य के साथ

साहिर के गीतों में उपस्थित है। मानव मन के उल्लास में प्रकृति किस प्रकार चार चाँद लगाती है, साहिर इसे बखूबी जानते हैं। साथ ही तन्हाई में प्रकृति के उपादान कैसी टीस जगाते हैं, यह भी साहिर से छुपा हुआ नहीं है। प्रकृति प्रेम से उपजती रागात्मकता मानव को एक आध्यात्मिक ऊँचाई की ओर ले जाती है, साहिर अपने शब्दों से उस ओर इशारा करते हैं, आपके डूबने की प्रतीक्षा तक।

साहिर की शायरी खुद गंगा की तरह पवित्र है। फिर वे पतित पावनी गंगा को कैसे भूल सकते हैं। न धुलते होंगे गंगा में नहाने से किसी के पाप परंतु जन विश्वास, गंगा में नहाने से पापों का अहसास तो अवश्य धो देता है। ईसा कहते थे, मेरी शरण में आओ मैं तुम्हारे पाप धो दूँगा। लोग उनकी शरण में जाकर पाप बोझ से मुक्त हुए और निर्मल होकर शांत जीवन की राह पर अग्रसर हुए। पर इस धरती पर ईसा कितने दिन रहते ? हमने यह विश्वास एक नदी के साथ जोड़ा। नदी तो रहती दुनिया तक रहेगी। हो गई जाने-अनजाने में कोई ग़लती। घट गए कोई पाप जीवन में। अब उनका अहसास कचोटता है। कैसे मुक्ति पाएँ, इन काली छायाओं से ? आगे का जीवन दूभर हो गया है। तो गंगा नहा लो, धुल जाएँगे सब पाप। आज भी लोग कहते पाए जाते हैं कि हम गंगा नहा आए। अब आगे न करेंगे कोई ग़लती। धुल गई अब स्मृतियाँ। मिटा दिए गंगा स्नान ने तुम्हारे सब पाप बोध। अब आगे अवसर है एक सात्विक शांत जीवन जीने का। साहिर इसीलिए तो कहते हैं— 'गंगा तेरा पानी अमृत।' साहिर के लिए गंगा सिर्फ़ एक नदी नहीं, इस देश के इतिहास और संस्कृति की साक्षी अक्षुण्ण जीवन रेखा है। कितने—कितने युग देखे हैं गंगा ने। उन युगों की पीड़ा गंगाजल में समाहित है। चाहे वह राम का काल हो या महाभारत का या फिर आधुनिक काल में लंबी ग़ुलामी की दास्तां। गंगा के तट और उसका पानी इन सारी घटनाओं का साक्षी है। गंगा में इस देश का पूरा इतिहास और धार्मिक, सामाजिक चेतना समाहित है। हिमालय से निकलकर गंगा सागर तक एक लंबा रास्ता तय करता है, इसका जल। दोनों ओर का लंबा-चौड़ा परिक्षेत्र गंगा कछार कहलाता है। यह कछार अत्यंत उपजाऊ है, गंगा इसे रससिक्त करती है और भरती है देश को धन-धान्य से। ऐसी अद्‌भुत गंगा के लिए साहिर ने क्या ख़ूब लिखा है—

गंगा तेरा पानी अमृत झर-झर बहता जाए
युग-युग से इस देश की धरती तुझसे जीवन पाए

मिलता है एक ग्रंथ : 'गंगा लहरी'। उत्तर भारत के लोकगीतों में गंगा की ख़ूब महिमा गाई गई है। परंतु अधिकांश उपलब्ध गंगा साहित्य में गंगा की पौराणिक और धार्मिक महत्ता ही प्रतिपादित की गई है। इतिहास, संस्कृति और कृषि क्षेत्र की संपन्नता में गंगा की महत्ता को व्याख्यायित करने वाला यह अद्‌भुत गीत साहिर की क़लम से ही निकला है।

इस प्रकार नदी, पहाड़, वन-उपवन, सूरज, चाँद, घटाएँ और पूरी प्रकृति इनके बीच मनुष्य अपनी मनुष्यता के साथ साहिर की शायरी में उपस्थित है।

प्रकृति के साथ पूरा प्राणी-जगत् है। नीले गगन के तले धरती का प्यार पले, इस धरती पर हम सब हैं, एक साथ।

आइए अब साहिर के दार्शनिक पक्ष पर कुछ विचार कर लिया जाए। जीवन की क्षणभंगुरता और काल की वर्तमान स्वीकृति के स्वर साहिर की शायरी से बार-बार सुनाई देते हैं। वैदिक काल से लेकर इधर स्वामी विवेकानंद के नववेदांत दर्शन तक मानव जीवन की अनिश्चितता और न जाने किस क्षण काल-कवलित हो जाने वाली संभावना की दार्शनिक व्याख्या मिलती है। जीवन आज भरा-पूरा है। कल भी ऐसा ही हो कोई ज़रूरी नहीं। यह बिलकुल अनिश्चित है कि भविष्य में क्या होगा। अतीत जो बीत चुका है, मर चुका है। उसकी स्मृतियाँ भर शेष रह जाती हैं जीवन में। उन स्मृतियों से समझदार कुछ सीख ग्रहण कर उनसे मुक्त हो जाएँ तो ठीक वरना उन्हें बार-बार याद करते रहने से क्या होगा ? भविष्य तो धुआँ-धुआँ है। उस पर क्या भरोसा करना ! भविष्य के लिए मंसूबे बनाना अँधेरे में हाथ-पैर चलाने से ज़्यादा क्या है ? हम जानते ही क्या हैं भविष्य के विषय में। जब वहाँ सब कुछ अज्ञात है, तब उसकी फ़िक्र क्यों ? जो होगा देखा जाएगा। अब समय की इस धार में हमारे हाथ लगता है, सिर्फ़ वर्तमान। इस वर्तमान की संपूर्ण स्वीकृति, उसे पूरी शिद्दत से जी लेने की आकांक्षा और उसकी महत्ता पर साहिर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं। अपने इसी जीवन दर्शन को वे बार-बार अपने गीतों में गाते हैं। वे कहते हैं— 'आगे भी जाने न तू, पीछे भी जाने न तू/जो भी है, बस यही एक पल है।'

वर्तमान में जीने का दर्शन इस गीत में ख़ूब उभरकर आया है। जीवन में जो भी विद्रूपता है, वह या तो अतीत के मोह के कारण या फिर भविष्य के हवाई दावों के कारण। ये दोनों आपके हाथ में नहीं हैं। एक मर गया है और दूसरे का अभी जन्म ही नहीं हुआ। तो जो एक पल है, अभी और इसी वक्त उसकी महिमा साहिर यूँ प्रतिपादित करते हैं— 'इस पल के होने से दुनिया हमारी है/ये पल जो देखो तो सदियों पे भारी है।'

वर्तमान की स्वीकृति का यह दार्शनिक पक्ष साहिर को विरासत में मिला है। परंतु उन्होंने इसे अपनी शायरी में व्याख्यायित

किया है। कहते हैं वे— 'पल दो पल का साथ हमारा पल दो पल के याराने हैं/इस मंज़िल पे मिलने वाले उस मंज़िल पर खो जाने हैं।'

तुलसीदास 'विनय पत्रिका' में गाते हैं न— 'मन पछितैहैं अवसर बीते/ हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते...।'

साहिर अपने बंजारे से यही तो गवा रहे हैं—

बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत गाता जाए बंजारा
लेके दिल का इकतारा
धन-दौलत के पीछे क्यों है ये दुनिया दीवानी
यहाँ की दौलत यहीं रहेगी साथ नहीं ये जानी

संत कवि महामति प्राणनाथ कहते हैं— 'तू कौन कहाँ से आया और तुझे कहाँ जाना? पाव-पलक का नहीं भरोसा, सिर ब्रह्मांड क्यों ढोए?' दुनिया के हर धर्म-दर्शन के ये शाश्वत प्रश्न हैं। शताब्दियों से आदमी इन प्रश्नों के उत्तर खोजता आ रहा है। किसने क्या पाया, क्या खोया, किसे मालूम। साहिर भी जूझते हैं, इन प्रश्नों से और अपनी छटपटाहट इन शब्दों में व्यक्त करते हैं— 'संसार की हर शय का इतना ही फ़साना है/एक धुंध से आना है, एक धुंध में जाना है/' और ज़िंदगी इत्तफ़ाक़ है। कल भी इत्तफ़ाक़ थी आज भी इत्तफ़ाक़ है....।

जीवन की क्षणभंगुरता साहिर के ज़ेहन में बहुत साफ़ है। वे कल पर कुछ नहीं छोड़ना चाहते। कल चाहे वो आगे हो या पीछे, उनकी नज़र में कुछ भी नहीं है। जो कुछ है वो आज है, इसलिए अभी जीना है पूरे उत्साह और उमंग के साथ, ये है साहिर का समयबोध और गहरी जीवेष्णा। वे लिखते हैं— 'ऐ मेरी ज़िंदगी, आज रात झूम ले, आसमां को चूम ले/किस को पता है कल आए के ना आए?

जीवन में जो भी उथल-पुथल है। अच्छा है। बुरा है। सब वक्त के मिज़ाज से नियंत्रित है। सारे जीवन व्यापार में सबसे पहले तो वक्त को समझने की ज़रूरत है। साहिर कहते हैं—

वक़्त की पाबन्द हैं
आती-जाती रौनकें
आदमी को चाहिए
वक़्त से डर कर रहे
कौन जाने किस घड़ी
वक़्त का बदले मिज़ाज
वक़्त से दिन और रात...

इस प्रकार साहिर के दार्शनिक पक्ष में सबसे पहले तो समय की समझ, उसकी क़द्र और जीवन की क्षणभंगुरता के साथ गहरा वर्तमान बोध उभरकर आता है। जगह-जगह उनके गीतों में वक़्त की अहमियत को जानने-समझने का आग्रह दिखाई देता है। वे फिर-फिर कहते हैं कि जीवन योजनाओं में नहीं जीया जाता। धन-दौलत इकट्ठा करते-करते ही जीवन बीत जाता है और हम सही अर्थों में जीवन जीने से वंचित रह जाते हैं। यह जीवन सापेक्ष समयबोध साहिर की शायरी में जगह-जगह विस्तार से दिखाई देता है।

वे अपने दार्शनिक पक्ष में समूची कायनात के किसी अज्ञात केंद्र पर भी विचार करते हैं। जब मनुष्य में प्रेम है। करुणा है और सारी प्रकृति में; जड़-चेतन, धरती, आकाश, चाँद, तारे, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, पहाड़, नदियाँ सबमें एक आंतरिक जुड़ाव है। आख़िर इसका स्रोत कहाँ है? कहीं तो होगा सारे सद्गुणों का समुच्चय। जब बूँदें हैं तो सागर भी कहीं होगा ही। भले ही हम उसे नहीं जानते बिलकुल। कोई अव्यक्त अहसास छूता तो है कहीं। न व्यक्त कर पाएँ हम उसे किसी भाषा में। किन्हीं शब्दों में उसके प्रति हमारे सारे संबोधन, हमारे असफल प्रयास हैं। सारे सद्गुणों को हम एकीकृत कर लें। सारी कल्याणकारी शक्तियों को उसमें समाहित करें। फिर प्रेम और करुणा के शिखर पर उसे स्थापित करें और उसके विस्तार स्वरूप से हम सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की प्रार्थना करें, याचना करें तो शायद हमारा अंत:करण पिघलेगा। इसी मंगल कामना के साथ उसे कोई भी नाम दे लो। कोई भी संबोधन, उसकी पहचान के लिए ये हमारी आखिरी कोशिशें हैं। साहिर इस जटिल दर्शन को कितने सुंदर, सहज और सरल शब्दों में व्यक्त करते हैं— 'अल्लाह तेरो नाम, ईश्वर तेरो नाम/सबको सन्मति दे भगवान/इस धरती का रूप ना उजड़े/प्यार की ठंडी धूप ना उजड़े।'

साहिर को मानव 'मन' की बहुत गहरी समझ है। फिर याद आते हैं— संत कवि महामति प्राणनाथ— 'मन ही में मन उलझाना साधो, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत, मन ही देवे साहिबी, मन ही करावे फजीत।' अब साहिर क्या कहते हैं, देखिए—

दुखी मन मेरे सुन मेरा कहना
दर्द हमारा कोई न जाने
अपनी गरज के सब हैं दीवाने
किसके आगे रोना रोएँ
तोरा मन दर्पण कहलाए
भले-बुरे सारे कर्मों को, देखे और दिखाए
मन उजियारा जब-जब फैले, जग उजियारा होय
मन से कोई बात छुपे ना, मन के नैन हज़ार
जग से चाहे भाग लो कोई, मन से भाग न पाए

हमारी संस्कृति के प्रज्ञा पुरुष और उनका आदर्श भी साहिर को प्रेरित करता है। राम ने अहल्या का उद्धार किया, प्रसिद्ध प्रसंग है ये। अनजाने दुष्कर्म की शिकार अहल्या, जिसे उसके पति ने छोड़ दिया। समाज ने ठुकरा दिया। वह पत्थरवत् हो गई निष्प्राण। उसे राम ने गले लगाया। मान-सम्मान दिया और उसके पति तथा समाज को उनके कृत्य के लिए दुत्कारा। ऐसे राम के द्वार जाने में किसी तथाकथित पतिता को भला क्या संकोच। याद करें 'साधना' फ़िल्म का वह गीत— 'प्राणी अपने प्रभु से पूछे, किस विध पाऊँ तोहे। प्रभु कहे तू मन को पाले, पा जाएगा मोहे।' 'तोरा मनवा क्यों घबराए, रामजी के द्वारे...।' और 'मेरे रोम-रोम में बसने वाले राम...'

साहिर के काव्य में प्रेम की बड़ी प्रतिष्ठा है, ईश्वर के समतुल्य। फिर कैसे भूल सकते हैं वे कृष्ण को। राधा और कृष्ण का प्रेम मिसाल है भारतीय संस्कृति में। संगीत, कला और काव्य की दुनिया में कौन है जो इस अपरिमित प्रेम से अछूता रह गया हो। किसने—किसने कोशिश नहीं की इस प्रेम की गहराई को जानने-समझने की। साहिर ने भी अपने ढंगसे इस प्रेम-प्रसंग को गाया है—

आन मिलो आन मिलो श्याम साँवरे...आन मिलो
बृज में अकेली राधे खोई-खोई फिरे
आज न काहे जमुना तीरे मुरली मधुर बजाई
हमार आँगन छोड़ के तोहे कौन नगरिया भाई रे
मुख दिखला जा नट नागर साँवरिया रे

उर्दू शायरी में 'इश्क़' को प्राय: मानवीय धरातल पर बहुत अच्छे अंदाज़ में लिखा गया है। इश्क़ को लेकर एक से बढ़कर एक अशआर उर्दू शायरी में मिलते हैं। परंतु 'इश्क़' को जो दार्शनिक ऊँचाई साहिर ने अपने लब्जों में दी है वह बेमिसाल है। देखिए उनके इस अंदाज़ को—

'इश्क़ आजाद है, हिंदू न मुसलमान है इश्क़
आप ही धर्म और आप ही ईमान है इश्क़
अल्लाह और रसूल का फरमान है इश्क़
यानी हदीस इश्क़ और कुरान इश्क़ है
ये क़ायनात जिस्म है और जान इश्क़ है
इश्क़ सरमत, इश्क़ ही मंसूर
इश्क़ मूसा, इश्क़ कोहे-तूर है
ख़ाक को बुत और बुत को देवता करता है इश्क़
गौतम का और मसीह का अरमान है इश्क़
इंतेहा ये है कि बंदे को खुदा करता है इश्क़...'

(बरसात की रात) साहिर तो इश्क़/प्रेम की सार्वभौमिक उपस्थिति के लिए भी कहते हैं— 'यह मस्जिद है वह बुतखाना/चाहे यह मानो चाहे वह मानो...।'

और अंत में कबीर का निर्गुण भाव—

लागा चुनरी में द्राग, छुपाऊँ कैसे ?
हो गई मैली मोरी चुनरिया
कोरे बदन सी कोरी चुनरिया
जाके बाबुल से नज़रें मिलाऊँ कैसे, घर जाऊँ कैसे ?

कबीर तो सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने तो घोषणा कर दी— 'दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया।' साहिर को पता है, इस जग में अपनी चुनरिया को द्राग से बचाना कितना कठिन है परंतु उन्हें द्राग लग जाने का अफसोस तो है। यह वंदना ही तो प्रेरित करती है, चुनरिया को बेद्राग करने के लिए।

शेष अगले अंक में...

संपर्क- 326 बी/आ महालक्ष्मी नगर, इंदौर-452010 (म.प्र.)
मो. 9425167003

कला समय

आगामी अंक
फरवरी-मार्च 2023

जनजातीय संस्कृति में अद्वैत विशेषांक

विशेषांक हेतु आलेख, रचनाएँ, छायाचित्र आमंत्रित है।

अतिथि संपादक
लक्ष्मीनारायण पयोधि

पुस्तक समीक्षा

'बिन गाए गीत' - बहुआयामी लेखन का गद्य

- सुरेखा गायकवाड़

पुस्तक विवरण-

कृति	:	बिन गाए गीत
लेखक	:	नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
प्रकाशक	:	विद्या विहार प्रकाशन, नई दिल्ली
		19, संत विहार (पहली मंज़िल), गली नं 2, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022
मूल्य	:	₹350/-

'बिन गाए गीत' लेखक की वह कृति है जिसमें उन्होंने गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ कर दिया, यह कहना अनुचित न होगा। पुस्तक में संकलित 21 निबंधों, लेखों, यात्रा संस्मरणों, व्यक्तिगत स्मृतियों, व्यक्ति रेखाचित्रों के माध्यम से पाठक लेखक के बहुआयामी व्यक्तित्व से रुबरु होते हैं।

'अब ऋतु आई बसंत बहारन' लेख में लेखक वसंत को प्रकृति का इकलौता त्यौहार मानते हुए धरती के सौंदर्य को पाठकों के सम्मुख अलंकारिक भाषा में प्रस्तुत करते हैं पर साथ में यह कहना भी नहीं भूलते कि ''प्रकृति अपना यह त्यौहार बिना किसी आडंबर, बिना किसी वाद्य और पायल की झंकार के मनाती है। परन्तु उसका यह मौन भी मुखर है क्योंकि तब सौंदर्य की नववधु गंध की डोली में सरसों की केसरिया चूनर ओढ़े बैठी रहती है और दिनों के कहार उसे गांव-गांव, गली-गली और आंगन-आंगन ले जाते हैं।''

पाठक जब वसंत की सुंदरता में स्वयं को सराबोर पाता है, तभी लेखक उसे वास्तविकता के धरातल पर लाकर खड़ा कर देते हैं, इस प्रश्न के साथ कि 'मनुष्य वसंत कैसे बने' ? क्योंकि उसने तो अपने त्यौहार, धर्म, जाति या स्थान की सीमा में बांध रखे हैं इसीलिए प्रकृति के समान निश्चिंत होकर अपने पर्व वह नहीं मना पाता है। त्यौहार के निर्विघ्न संपन्न होने का भय उस पर सदैव हावी रहता है।

प्रश्न को अनुत्तरित न रखते हुए लेखक एक मार्गदर्शक की तरह, एक दार्शनिक की तरह बड़े ही सरल शब्दों में मनुष्य को वसंत बनने की प्रेरणा देते हैं। वे कहते हैं - ''जब सहेजना समाप्त कर हम सहज होना आरंभ कर देंगे तब हमारा जीवन स्वत: ही वसंत हो जाएगा।'' आगे यह भी कि मनुष्य ही अपने आपको वसंत बनाएगा तब जब वह पतझड़ और वसंत में अभिन्नता को निहारेगा। चारों ओर अंधेरा हो, संकट हो, राह न सूझ रही हो, फिर भी यदि वह अपने जीवट की उजास से अपनी यात्रा को आगे बढ़ाए तो ऐसा मनुष्य सच्चा वसंत होगा।

अपने दूसरे लेख में लेखक राजन मिश्रजी को श्रद्धांजलि देते हुए नानक और कबीर के 'जगत में देखी झूठी प्रीत' और 'माया महाठगिनी हम जानी' के सिद्धांत को झुठलाकर कहते हैं 'जगत में देखी सच्ची प्रीत'।

वास्तव में लेखक झुठलाते नहीं हैं, वरन् एक मनोवैज्ञानिक की तरह हमारे सामने सच उजागर करते हुए कहते हैं कि हम स्वयं भ्रमों की दुनिया के बीच जी रहे हैं, हमारे लिए जो समक्ष है वही सच है। इसीलिए जो प्रीत नानक के लिए झूठी थी, वही हमारे लिए सच्ची है, क्योंकि नानक के सामने सच्चा सच था और हमारे सामने झूठा सच।

'धन, निर्धनता का' और 'पत्ता टूटा डाल से' दोनों ही लेख, लेखक के हृदय की कोमल मानवीय भावनाओं एवं मूल्यों को परिलक्षित करते हैं। निर्धनता को अभिशप्त धन की संज्ञा देना लेखक की उदात्त मनोवृत्ति का परिचायक है। निर्धनता को धन मानना क्योंकि कोई उसे छीन नहीं सकता, सुलझे विचारों का ही तो प्रतीक है। निर्धनता के अनेक आयाम लेखक ने अपने मुंबई प्रवास के दौरान ड्रायवर से हुई बातचीत, सुदामा एवं द्रोण के उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किए हैं। पर साथ ही आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए यह कहना भी नहीं भूले कि ''निर्धनता यह भी सीख देती है कि विवशता को पराजित कैसे करें, विपन्नता यह जीवट भी देती है कि संपन्नता का कैसे सिर झुकाया जाए'' खासकर तब जब सम्पन्नता विचारों में विपन्नता ला देती है जैसे द्रोण की निमर्मता या अश्वत्थामा का

प्रतिशोध।

टूटना प्रकृति का नियम है। जो बना है, उसे टूटना भी है, परन्तु इस टूटन को लेखक ने जिस प्रकार गरिमा मंडित किया है वह क़ाबिले-तारीफ है। टूटना दिखाई दे जाए, टूटने की आवाज़ सुनाई दे तो फिर वह टूटना ही क्या ? जैसे मन ! कृष्ण, राधा, बुद्ध, यशोधरा, तुलसी, राम, सीता, बिल्वमंगल और न जाने कितनों के ही मन टूटे और मौन ही उनका एकमात्र साथी बना। पर इस टूटन ने उन सभी को आंतरिक ऊर्जा दी, सर्जनात्मकता दी।

'प्रति स्मृति' में अशोक व कुटज फूलों के माध्यम से एवं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की स्मृति को उद्धृत करते हुए लेखक ने दो विपरीत नियति वाले मनुष्यों की मानसिकता का सूक्ष्म अवलोकन प्रस्तुत किया है। कुटज मानव ने तमाम संघर्षों एवं अवरोधों के बीच अपनी जीवन शक्ति, स्वाभिमान और संघर्ष को विलुप्त नहीं होने दिया। कुटज मानव, अशोक मानव जैसे भाग्यशाली बेशक न हों, पर वह दीन अथवा याचक कभी नहीं बने।

पुस्तक के शीर्षक 'बिन गाए गीत' लेख के द्वारा लेखक ने उन कवियों, गायकों, शिल्पकारों एवं कलाकारों के प्रति अपने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, जो अत्यंत मूर्धन्य, निपुण, दक्ष होते हुए भी अनचीन्हे ही रह गए। लेखक कहते हैं, ''लिखने से गाए जाने के बीच का रास्ता बड़ा कठिन है, दुरुह है। बड़ी भीड़ है इस रास्ते पर। वे जो बेतुके हैं, जिन्होंने बिना किसी परिश्रम के किसी और की पंक्तियों पर कब्जा कर अपने आपको गढ़ लिया है, वे इस भीड़ में सबसे आगे हैं।'' लेखक का कथन अक्षरश: सत्य है। ये विसंगतियां कहां नहीं हैं ? शिल्प, चित्रांकन, स्थापत्य से लेकर ललित कलाओं की तमाम विधाओं में यह परिलक्षित होती हैं। खजुराहो, एलोरा, अजंता और ऐसे तमाम भारतवर्ष में फैले स्थापत्य में अपने सृजन से पत्थरों को प्राणवान बना देने वाले शिल्पियों के नाम हम कहां जानते हैं ? वे केवल अपने कार्य को इतिहास में अमर कर देना चाहते थे, अपने नाम को नहीं। इसीलिए लेखक ने इसे बिन गाया लोक कहा, जिसकी इबारत बहुत कम पढ़ी जा सकी।

एक बार फिर लेखक ने 'भित्ति में प्राण' के माध्यम से उन अनजान चितेरों को अपनी भावांजलि अर्पित की है। वास्तव में जब अंदर और बाहर की आंखों का भेद समाप्त हो जाता है तभी दृष्टि जनमती है। और वह दृष्टि प्रतीति नहीं वरन् प्रत्यक्ष होती है जिसमें छलावा नहीं होता।

अपने अनुज से असमय बिछोह की पीड़ा को वर्षा के ही सदृश्य अद्वैत के द्वैत में और फिर द्वैत के अद्वैत में परिवर्तित होने का दर्शन मानते हैं। आज वर्षा ऋतु मन को उल्लसित नहीं कर रही है क्योंकि मेघ भले ही बाहर बरस रहे हों, लेकिन मन में तो अग्नि प्रज्वलित है, यादों की ऐसी अग्नि जिसे वर्षा की फुहार भी ठंडक नहीं पहुंचा सकती। तभी तो लेखक ने लिखा है, 'भीतर मन के आग है, बाहर बरसे मेघ'।

इन लेखों के पश्चात लेखक की लेखनी अपने व्यक्तिगत संस्मरणों की ओर मुड़ जाती है। लेखक ने संस्मरणों को स्मृतियों के उत्सव कहा है जो फूल और शूल, दोनों ही रुपों में हमारे मन पर अंकित हो जाती हैं। अनेक कवियों, लेखकों की रचनाओं के उद्धरण देने के पश्चात लेखक ने अपना निर्णय इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''वही संस्मरण सर्वाधिक लोकप्रिय होते हैं, जो होते तो निजता पर आधारित हैं, लेकिन जिनका संदेश समग्रता के लिए होता है। निजता से संपृक्त होते हुए भी वे समाज एवं लोक के लिए महत्वपूर्ण संदेश देते हैं।''

इसी कड़ी में लेखक कपिला वात्स्यायनजी को 'गीतगोविंद' के समुचित आख्यान के लिए याद करते हैं तो रविन्द्रनाथ त्यागीजी को अपने आत्मीय संबंधों की उष्मा के लिए जिन्हें लेखक ने ढेरों खतों के माध्यम से अनुभूत किया। उन खतों में त्यागीजी के जबरदस्त संघर्ष की गाथाएं थीं जिन्होंने लेखक को उनकी ओर न सिर्फ आकृष्ट किया वरन् यह लिखने को भी विवश किया कि 'आपबीती एक जैसी हो तो आत्मीयता सहज उत्पन्न हो जाती है।'

अगले तीन-चार लेखों में लेखक ने अपने यात्रा-संस्मरणों को संकलित किया है। प्रस्तुतीकरण इतना जीवंत है कि लगता है हम प्रत्यक्ष वहीं भ्रमण कर रहे हों। 'वर्साय के महल - कला के शोकगीत' मन में ग्लानि अनुभव करने के साथ यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि क्या कोई राजा इतना निर्दयी भी हो सकता है ?

पर अगला ही लेख गर्व की अनुभूति करवाता है जिसमें भारतीय ग्रंथों के अद्भुत संग्रहालय का वर्णन है। पेरिस का बिब्लियोथेक नेशनल ग्रंथालय जिसमें संस्कृत के साथ भारतीय भाषाओं के अनगिनत ग्रंथों का संग्रह है, हमें सोचने पर मजबूर करता है कि हमारी अनमोल धरोहर को संजोना क्या हमारी ज़िम्मेदारी नहीं थी ? हम फ्रांस के आभारी हैं कि फ्रांसिसियों ने हमारी अमानत को ले जाकर पूरे आदर एवं सम्मान के साथ संजोया।

चूंकि लेखक इतिहासकार होने के साथ-साथ कला और साहित्य को अविभाज्य विधा मानते हैं, इसी संदर्भ में वे लेख की व्यंजना को शिल्प की परंपराओं से जोड़ते हुए मिट्टी से जुड़ने का संदेश देते हैं।

अंतिम लेख में लेखक ने श्रृंगार रस के तीनों रचनाकार भर्तृहरि, अमरूक एवं जयदेव के साहित्य की समीक्षा की है एवं भारतीय साहित्य की गरिमा को साकार किया है।

संक्षेप में, 'बिन गाए गीत' हर प्रकार के पाठक को अपनी रुचि के अनुरूप वाचन सामग्री प्रस्तुत करता है। लेखक की भाषा ऊपरी तौर पर बेशक सरल लग सकती है, परन्तु भावों की गहराई तक जाने व उसे समझने के लिए एक बार का पठन पर्याप्त नहीं होगा।

■

पुस्तक समीक्षा

महज़ आदमी के लिए (कविता संग्रह)

- प्रो. डॉ. प्रभा मुजुमदार

पुस्तक विवरण-

कृति	:	महज़ आदमी के लिए (कविता संग्रह)
लेखक	:	अरविंद मिश्र
प्रकाशक	:	आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल, ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कालोनी, भोपाल- 462016
मूल्य	:	₹200/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022

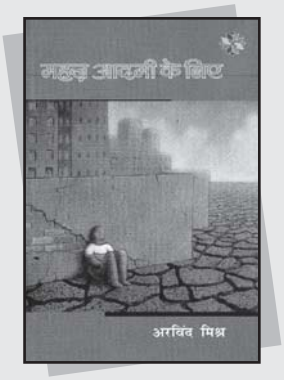

श्री अरविंद मिश्र की कविताएँ आम आदमी की व्यथा, चिंता, सपनों और सरोकारों से जुड़ी कविताएँ हैं उनकी कविताएँ जीवन के विविध रंगों- रसों- आस्वादों, मानवीय सम्बन्धों और भाव संवेदनाओं की अनेक परतों को जानने, समझने, उद्घाटित करने का प्रयास करती हैं। गाँव की पगडंडियों, खेतों और नदियों से शहर की भीड़ भरी सड़कों, बहुमंजिला इमारतों, कोलाहल और बदहवासी के बीच आवाजाही करतीं हुई लगती हैं। आत्मीयता, ऊर्जा तथा निश्छल्ता को अमूल्य सम्पदा की तरह सहेजतीं हैं, वहीं शोषण और अन्याय के प्रति स्पष्ट विरोध दर्ज करतीं हैं। एक स्थायी अभाव के बीच हौसलों की उड़ान जारी रखना, अपने स्वत्व और स्वाभिमान से कभी समझौता न करना, सम्बन्धों में तरलता, सहजता, सरलता का आग्रह और गल्लत का प्रतिवाद इस संग्रह की कविताओं का मूल स्वर है। कवि, जीवन की सार्थकता के लिए प्रकृति पर्यावरण यानि नदी, नाले, जंगल, पहाड़, पेड़, पशु-पक्षी आदि का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं।

चार खंडों में समेटी गई इस पुस्तक के पहले खंड ''हमेशा हाशिया ही आया'' में हाशिये पर जीते लोगों के लिए उनकी सदिच्छा ''एक दिन/ तुम्हारा बेटा भी/ समर्थ बनेगा/ खुद कटेगा/ अपना बोया खेत'', महज एक व्यक्ति के प्रति सदिच्छा या आशीष नहीं है, वरन सामाजिक बदलाव, शोषण से मुक्ति के निहित अर्थ भी इसमें है और इसीलिए यह उम्मीदों और जिजीविषा की कविता है। किसान के श्रम, चुनौतियों, संघर्षों को नजदीक से देखते हुए उन्होंने किसान के चेहरे की चमक को खेतों की उपज से जोड़ा है ''किसान का चेहरा'' कविता में। वहीं ''समय की धार'' में वे दबंगों- महाजनों द्वारा श्रमिक वर्ग की विवशता एवं दुर्दशा का भरपर दोहन किए जाने को अपनी सजग दृष्टि से अनुभव करते हैं। ''उन्हीं के पहरेदार/ सत्ता और न्याय/ उनके ताबेदार''। आज के माहौल में एक त्रासद सत्य है ''बेघर विदा हो जाते हैं। लाखों करोड़ों मतदाता'' तथा हाड़-तोड़ मेहनत करने के बावजूद उनकी फटी तिरपालें के नीचे जीने की अनिवार्यता। ''अंधकूप'' में वे उन साज़िशों को उजागर करते हैं जिन्होंने इन मेहनतकश लोगों का जीवन एक अंधकृप मेँ धकेल दिया है। इससे निजात पाने की कोशिश में ''चाँदनी सी मुस्काती हो'' में कवि हाशिए पर जीते मेहनतकश लोगों के लिए कुछ आसान और सुखमय जिंदगी की कामना करते हैं ।

''महज आदमी के लिए'' उनकी महत्त्वपूर्ण एवं विचारपरक कविताएँ हैं जो अनिवार्य रूप से - पूँजीवाद और फ़ाँसीवाद के विरोध में खड़ी हैं, पहाड़ों को चीरने, जंगल काटने, नदियों को पाटने जैसे षड़यंत्रों के बीच ''आँख मूँद श्रद्धालु/ मंदिरों में संकीर्तन/ मस्जिदों में अजानें / गुरुद्वारों और गिरजाघरों में प्रार्थनाएँ कर रहे हैं। ऐसे में कवि जानना चाहते हैं कि ''किसके लिए है पूरी व्यवस्था ?''और कितने ज़रूरी हैं प्रतिवाद ''बहुत ज़रूरी है/ महज़ आदमी के लिए!। थोड़ी-सी लड़ाई/ थोड़ा-सा आंदोलन / थोड़ा-सा आक्रोश / जो स्वाभाविक रूप से / छिपा होता है/ भूखे व्यक्ति में''।

यह मेहनतकशों की जिजीविषा ही है (वे शेष बच रहे हैं) जो देश-विदेश की अनेक त्रासदियों, बम-गोलियों को झेलते, साहूकारों का कर्ज चुकाते, धनिकों की सेवा और पहरेदारी करते, मेहनत की जिंदगी जीते जिंदा बच रहे हैं। (बँधुआ मजदूर) की भी यही व्यथा है ''मेरे हिस्से का आकाश/ सूरज की रोशनी/ दूसरों के नाम कर दें/ मैं सिर छुपने की जगह / मुट्ठी भर धूप ले लिए/ मोहताज''। (तुम हमेशा बने रहना) में भी लेखक ने गरीबी बनाए रखने के पीछे के स्वार्थों को बेनकाब किया है। ''हमेशा हाशिया आया'', बने बैठे हैं सबसे बेहतर, ''समझ नहीं पा रहे कुचालें'' जैसी कविताएँ श्रम के शोषण और विवशता की अभिव्यक्ति हैं।

निहित स्वार्थों की वजह से मनुष्य-मनुष्य के बीच की दरार पैदा करने वालों के षड़यंत्र वे कुछ इस तरह उजागर करते हैं ''अपने ही लोगों के बीच/ हम धर्म के नाम पर बाँटे गए/.../ हम भाषा और व्यवहार के लिए/ तीज त्योहार, परम्पराओं में... नदी के दो छोरों की तरह बाँट दिए गए /''। बाजारवाद के दौर में ''बिके हुए समय में'' हवा- पानी,मिट्टी से लेकर, डिग्री, नौकरी, सौन्दर्य, प्रतिभा, रिश्ते... सब कुछ बिकने की हकीकत को वे बयान करते हैं। समय की मार से घायल, जीवन खेत में जुता'' आम आदमी फिर भी अपना संघर्ष ता-उम्र जारी रखता है। ''समाजवाद आबाद है'' में वे अन्याय, गैर बराबरी और अभावों को जन्म देती, व्यवस्था का पर्दाफाश करते हैं। कुल मिलाकर इस खंड की कविताएँ मेहनतकश वर्ग के श्रम को प्रतिष्ठा देती हैं, उनकी उम्मीदों और सपनों के साथ खड़ी हैं।

संग्रह का दूसरा खंड ''संसार की सत्ता का उत्सव'' बदलती जरूरतों, परिस्थिति और विवशता की वजह से लोगों के अपने घर-गाँव से पलायन विस्थापन की अनेक रचनाओं को समेटे हैं। कितनी मार्मिक सच्चाई है यह ''रोटी के लिए बिछुड़ रहा है। गाँव, शहर / देश... ऑगन, अमराई नदी किनारा/ सम्बन्धों की मिठास... ''। इस खंड की कविता ''बाबा का गाँव'' बहुत ही मार्मिक एवं त्रासद यथार्थ स्थिति को शब्द देती है ''सब चले गए / एक-एक कर/ केवल बाबा रहते हैं। बचा है टूटा-फूटा मकान''। इतना ही नहीं गाय नहीं गई/ पीतल के बर्तन/ चारपाई, बैलगाड़ी/ गाँव में ही हैं, बाबा के साथ'' साथ छोड़ा तो बस अपने खून ने, मगर इसमें दोष उनका भी तो नहीं।

चापलूसी और मौकापरस्ती के बीच सीधी रीढ़ वाले लोगों की व्यथा को ''अभावों की फसल काटते हुए'' में कुछ इस तरह लिखा है ''उसके पास बहुत सारे कष्टों ने/ एक साथ घुसपैठ की थी''। लौह पुरुष न कहलाने वाले ऐसे ''लोहे के चने चबाना जानने वाले'' लोगों के संघर्ष और जिजीविषा को उन्होने प्रतिष्ठा दी है। यह कवि की सदाशयता ही है जिसकी वजह से वह हाथों में इतनी ताकत चाहता है कि ''हर जरूरतमंद की/ मदद के लिए/ आगे बढ़ा सकूँ''। गरीबी के अनेक रूप इन कविताओं में दर्ज हैं मगर उसके बावजूद ''सिर ऊँचा कर चलना'' लेखक का संकल्प है ''कविता, देह सूखी रखने का जिम्मा''।

''सजा के लिए'' सामाजिक विद्रूपताओं पर एक बयान है- सजा के लिए/ ज़रूरी नहीं। कसूरवार होना''। बाजारवाद के शोषण को उजागर करती है ''पेटेंट कानून की धाराएँ'' जहाँ पक्षी के पर फैलाने, उनके फुदकने और चहचहाने पर भी पाबन्दियाँ लगाने का कानून है। इसी क्रम में उनकी अगली कविता ''सदियों पुराना पोस्टर'' में बड़े सटीक और प्रासंगिक तथ्य दर्ज करते हैं, कुछ बानगी देखिये:-जब सारा शहर/ कर्फ़्यू की नींद सोया हो/ तब कविता/ लिखी पढ़ी नहीं भोगी जाती है। और बाजार में खड़े होकर/ जेब का अर्थशास्त्र/ शब्दों की जगह/ अंकों की कविता रटाता है / जर्जर दीवारें, झीने कपड़े। औंधे मुँह पड़े मिट्टी के बर्तन/ नई कूची, कैनवास तलाशती कविता का/ सदियों पुराना पोस्टर है'' जैसी पंक्तियाँ रच कर लेखक ने अपने गहरे अनुभव, समझ और संवेदना का परिचय दिया है। लेखक का बयान ''न्याय एक मरीचिका है'' समाज के एक बड़े वर्ग के लिए त्रासद सत्य है। वे जानते हैं कि ''सुंदर इमारतों व अजूबों के तहख़ानों, नींवों, पलस्तरों के पीछे/ मजबूर कटे हाथों की व्यथा छिपी होती है''। ''पांडुलिपियाँ'' में और विस्तार देती उनकी पंक्तियाँ ''न्याय अधिकारी कितने भयभीत थे/ कनपटियों पर तनीं पिस्तोलों से''। 'उनके हाथों में' की पंक्तियाँ प्रजातन्त्र के मसीहाओं की पोल खोलती हैं ''धर्म की सारी पताकाएँ उनके हाथों में हैं। ईश्वर उनकी मुट्ठी में''। इस तंत्र में भोपाल गैस कांड हो, गुजरात का भूकंप या ऐसी ही कोई आपदा असली दावेदारों की जगह नकली प्रमाणों पर ही खैरातें बटती हैं। ''खाली फलसफे'', ''अनाथाल्य'', ''सपनों का बिखरना'' जैसी कई कविताएँ आम आदमी की वेदना और असहाय होने के बोध की हैं। ''बचा कर रखो'' में वे माचिस की तीली द्वारा किसी ध्वंस की बात स्वीकारने के साथ ही ''अनेक दिये जलाकर उजियारा फैलाने'' की बात करते हैं और ''बचा कर रखो हृदय में एक तीली का आग्रह भी।'' बोलो पूरी ताकत के साथ में ''वे स्पष्टता के साथ अपने विचारों को रखने की बात करते हैं, यह कह कर कि चुप्पी सांकेतिक भाषा है विस्फोट की''। उनका प्रश्न ''ढेरों उलझनों के बाद भी/

चेहरों पर आश्वस्ति भाव होना/ काली रात से भी भयावह हैं'', वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में बहुत प्रासंगिक है।

संग्रह का तीसरा खंड ''आधी दुनिया की हुक्मरान'' मुख्य रूप से अस्तित्व, अस्मिता, सहभागिता और समानता के लिए आधी दुनिया की जद्दोजहद है। ''अपमान की आग में'' संगठित अपराधियों, तंत्र की मिलीभगत, वैमनस्य से उपजी हिंसा, दहशत और अपमान से व्यथित हो न्याय की गुहार लगती है। ''ठहरो द्रौपदी'' में वे आगाह करते हैं उस षड़यंत्र के विरुद्ध जहाँ ''पसीने की ताकत को/ पारदर्शिता की सुगंध से/ लालच के सब्ज बागों से! बहल रहा है आदमी''। लेखक को विश्वास हैं कि शिक्षित होकर बच्चियाँ अपनी माँओं, दादी-नानियों से बहुत आगे, इक्कीसवी सदी के नए अध्याय रचेंगी ''ये ही बदलेंगी दुनिया के चक्र/ धरती, आसमान, चाँद, सितारे/ सब नाचेंगे इनके इशारे पर/ रचेंगी विद्वत्ता का स्वच्छंद संसार'' (कोचिंग क्लास से बाहर निकलती बच्चियाँ)।

परिवार के लिए सारे दिन खपते,, तिनका-तिनका सहेजने, जिंदगी भर ईंधन-सा जलने के बावजूद सब के लिए दुआएँ और आशीष सहेजे माँ के संघर्ष और जिजीविषा का चित्रण ''इरादों आशीषों की महक'', ''चकरघिन्नी'', ''पसंद-नापसंद'' ''घर की इज्जत'' जैसी कविताओं में हुआ है। वहीं ''आधी दुनिया की हुक्मरान'' में वे आवाज उठाते हैं ''कहाँ है आधा सम्मान/ आधी संपत्ति/ आधा कारोबार/ आधी जमीन जायदाद'', निश्चय ही बहुत दूर है समानता का यह मुकाम, फिर भी आवाज़ तो उठानी ही होगी।

अंतिम खंड ''मित्र लौट आओ'' बीते समय की यादों, अहसासों की गुनगुनाहट है। ''देशी घी की खुशबू, पलाश और शिरीष के चटक रंग, आम के बौर, कोयल की कूँक ... कितनी ही स्मृतियाँ ताजा होती हैं दोस्तों से बतियाते हुए। वे बार-बार उसी अमराई में लौट जाना चाहते हैं, बचे हुए रिश्तों को, सहेज कर रखना चाहते हैं। मित्रों के साथ बेरोकटोक घूमने की उमंग और स्वतंत्रता महसूस करते हैं, नदी जंगलों में आत्मीयता ढूँढते हैं ''दोस्तों से चल रही है दुनिया''। ''मित्र लौट आओ'' उनकी मार्मिक गुहार है ''बाखर ढहने को है। तुम्हें देखकर टिक जाएगी / कुछ दिन और'' तथा ''श्यामा गाय के बछड़े/ अब भी रँभाते हैं''। उनके अनुसार अल्हड़ता और फक्कडपन के साथ, सैकड़ों सालों तक और जिया जा सकता है, इस सरज़मीं पर। दौस्त को ''जीवन निधि'' बताते हुए वे मानते हैं कि ''समय की आँधी में उड़ने से बचाते/ तेज बारिश में छाता से तन जाते/ तू में ठंडी छाया देते हैं''। ''माटी की ओर लौटना'' उन्हें बहुत पसंद है। ''गाँव से लौटते हुए'' एक सुंदर कविता है जहाँ थोड़ी मिट्टी, थोड़ी हवा और धूप और पानी, थोड़ी हरी घास वे अपने साथ ले जाना चाहते हैं, और थोड़ा प्रेम भी। यहाँ गाँव का निवेदन ''हो सके तो मुझे शहर होने से बचाना'' मन को छू लेता है। उसी आत्मीयता से वे याद करते हैं ''डाकिया'' जो समभाव के साथ सुख और दुख भरे समाचार बाँटता रहा है।

संग्रह की अंतिम कविता ''चुप करा दिए जाओगे'' एक सजग, विचारशील व्यक्ति का आक्रोश है जो मौजूदा परिस्थिति में अपनी बात खुलकर कहने को अपराध की तरह देखे जाने से बेचैन और उत्तेजित है। ''तुम चुप करा दिए जाओगे या मार दिए जाओगे'' लिखना, हालात की गंभीरता को स्पष्टता से बयान करता है। इस संग्रह में भरपूर विषय वैविध्य है जो लेखक के व्यापक अनुभव व गहन सरोकार को दर्शाता है। उम्मीद है कि उनकी आगामी रचनाएँ, भाव- संवेदना- विचारों के और भी व्यापक विश्व को प्रतिबिम्बित करेंगी तथा और अधिक सघन एवं परिपक्व होंगी।

संपर्क: B-8/ 803, ला मरीना, शांतिग्राम, एस.जी. हाईवे, दंताली, सब पोस्ट ऑफिस, गांधीनगर 382504 (गुज.)
मो.9969221570

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

पुस्तक समीक्षा

नई जमीन को तलाशता कविता संग्रह - 'इस दौर से गुजरते हुए'

- डॉ. संध्या जैन

पुस्तक विवरण-

कृति	:	'इस दौर से गुज़रते हुए' - कविता संग्रह
कवि	:	सदाशिव कौतुक
प्रकाशक	:	अयन प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य	:	₹240/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022

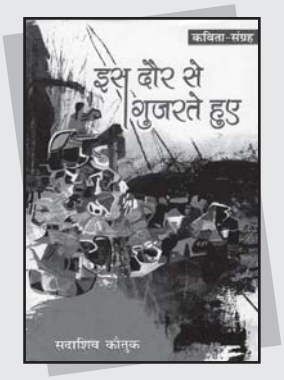

साहित्य रूपी सरिता के माध्यम से भाव, विचार और भाषा की त्रिवेणी प्रवाहित करने वाले सदाशिव कौतुक का सद्य: प्रकाशित काव्य संग्रह 'इस दौर से गुजरते हुए' अपने आप में अद्वितीय है।

सदाशिवजी की दो पुस्तकों 'सच तो यही है' और 'स्याह धब्बों के बीच' पुस्तक की समीक्षा मैं उस समय कर चुकी हूँ; जब मैं उन्हें जानती भी नहीं थी। उनके कविता-संग्रह 'इस दौर से गुजरते हुए' को पढ़कर आनंदानुभूति हुई। इसी पुस्तक के माध्यम से जाना कि वे 65 पुस्तकें लिख चुके हैं और लगभग 47 पुरस्कारों से नवाज़े गए हैं।

सरल, मधुर व्यक्तित्व के धनी सदाशिवजी की इस पुस्तक का मुखपृष्ठ बहुत कुछ बयां कर देता है। वे अपने आत्मकथ्य में ही जो संदेश देते हैं; ग्राह्य है - 'फलों का अलग-अलग स्वाद होकर भी अलग-अलग उपयोग और अलग-अलग पसन्द भी होती है। कोई फल कड़वा है उसे सभी खाना पसन्द नहीं करते परन्तु वह मीठे फल से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण तब हो जाता है, जब वह दवाई बनकर असाध्य रोग को खत्म करके जीवन को मृत्यु से बचा लेता है इसलिए इस बहस में न पड़कर हमें लक्ष्य यह रखना चाहिए कि हम जिस विधा में भी लिख रहे हैं उसमें हम दक्ष हों; हमारा लेखन उत्कृष्ट हो, उसमें नये-नये विचारों का प्रादुर्भाव हो और हम शिखर तक पहुँचने में कामयाब हों।..... कविता छन्दबद्ध हो या छन्दमुक्त संग्रह ''इस दौर से गुजरते हुए'' पठनीय व संग्रहणीय बन पड़ा है। विशेष बात तो यह है कि पढ़ने में रूचि रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसे पढ़कर आसानी से समझ सकता है, दिमागी कसरत करने की आवश्यकता नहीं।

पुस्तक में 64 कविताएँ मानो 64 कलाओं की भांति लगती हैं। छोटी हो या बड़ी - हर कविता अपनी विशेषता लिए है।

एक ओर जहाँ कविताओं में उनकी स्मृतियों का खजाना है तो दूसरी ओर परिवार, समाज, रिश्ते, समस्याएँ, जाति भेद, मूल्य व संस्कृति की झलक देखने को मिलती है।

पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति ही साहित्यकार की कलम को तीक्ष्ण बनाती है; जो उनमें है। स्वयं के धन को साहित्य कर्म में लगाना - बहुम कम ही लोग जानते हैं। वे पुस्तक में अपने आत्मकथ्य में कहते हैं - ''खुशी है कि अपने पसीने से, अपनी मेहनत के धन से मैंने यह साहित्य कर्म करके समाज और राष्ट्र को कुछ दिया है''। ऐसे लोगों के लिए जो मुफ्त में जुगाड़ करके छपना चाहते हैं और ऐसे ही पुरस्कार पा लेते हैं - सीख है। पुस्तक की सभी कविताएँ अच्छी हैं। कोई-न-कोई संदेश दे ही देती हैं - यह बात महती है। भाषा-शैली सहज है, सरल है; विषयानुरूप है। कहीं-कहीं पर व्याकरणगत अशुद्धियाँ- आ गई हैं; जिसे चांद में भी दाग होता है; कहकर ध्यान हटाया जा सकता है।

कविता संग्रह की प्रथम कविता 'भूख' लम्बी कविता की श्रेणी में आती है, पर बोझिल नहीं लगती। यह कविता आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। कवि ने बता दिया है कि

जानवर हो या इंसान – भूख मिटाने की खातिर क्या नहीं करते ? कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

''नारियाँ न चाहते हुए भी
अपना अस्तित्व खोने के लिए
होती रहतीं मजबूर
जिसका कारण मैं ही हूँ।''

'दृष्टि' कविता स्वच्छ दृष्टि; साफ नजरिए का संदेश देती है। आशावादी दृष्टि मानव विकास का संबल बन सकती है–

देवताओं में भी
मिल जाएगी कमियाँ
हर मनुष्य में बुराई है
पर अच्छाई भी है
मनुष्य में ही।

माता–पिता का महत्त्व संस्कारवान बच्चे ही जान पाते हैं। युवा पीढ़ी को माता–पिता का महत्त्व बताती कविताएँ अच्छी बन पड़ी हैं। कवि 'माँ' कविता में कहते हैं –

माँ!
तुम क्या नहीं थी
सब तो थी
क्या फर्क था तुममें और
ईश्वर–अल्लाह में।

'पिता' को लेकर अपने अतीत को पिता के सामीप्य को, श्रम व कर्त्तव्य को और अभी भी उनकी छत्रछाया बनी है; बनी रहे के भाव संजो कर लगभग 4 कविताओं के रूप में आकार दिया है कवि ने। कुछ पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं –

अब पिता नहीं हैं
उनका सम्पूर्ण अस्तित्व
मुझमें समाहित है
उनकी स्मृति अक्षुण्ण रखने के लिए
पितृ पर्वत पर वृक्ष लगाऊँगा
जो फलेगा–फूलेगा
फल देगा /और छाया देगा।

कविता–संग्रह की यह खूबी है कि समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, बदलता दृष्टिकोण, परिवेश, मजदूर, स्त्री, मूल्यों के महत्त्व को कवि ने आसान तरीके से बता दिया है; जिससे ये प्रासंगिक भी बन पड़ी हैं।

'यह कैसा मंजर' में तो नई पीढ़ी, स्त्री, सभ्यता–संस्कृति, विकृतियाँ, कानून आदि सब कुछ एक ही तस्वीर में चित्रित हो जाता है– नई पीढ़ी की सोच मर गई,/ बढ़ गई गिद्ध और चीलों की आवाजाही, बलात्कार, लूट, हत्याएँ/ स्त्री की खरीद फरोख्त,/ रोटी की छीना झपटी,/ पैरों में विवशता की जंजीरें..... / लड़खड़ाता हुआ कानून/ विघटित होती सभ्यता और संस्कृति,/ सिर पर लटकता खंजर/ यह कैसा है मंजर।

'महारोग' कविता के माध्यम से कवि कहते हैं– समर्पण समाप्त हो गया ..... रिश्तेदारों की भूमिका / हाय हैलो तक रह गई ..... ईर्ष्या की सरिता बह रही,/ धैर्य धूमिल हो गया,/ दुनिया मतलब की रह गई।

फिर भी कैसी भी परिस्थितियाँ हों ? धैर्य हर क्षण संकट के समय साथ देता है। ताल–मेल और सामंजस्य के बिना तो जीना भी दूभर हो गया है। कवि 'सामंजस्य' कविता में बड़े मार्के की बात कहते हैं–

इस कठिन समय में
हमें धुआँ–धुआँ हो जाना है
जैसी भी चली ज़िन्दगी
हमें वैसे ही चलाना है।

इतना ही नहीं 'मृत्युद्वार' में तो प्रकृति बचाने का संदेश है। पर्यावरण की हम कितनी भी बातें कर लें ? संगोष्ठियाँ, कवि–सम्मेलन कर लें; पर यदि प्रकृति को बचायेंगे नहीं तो कैसे चलेगा ? कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

कोरोना तो चला जाएगा/ फिर कई कोरोना आएंगे,/ घायल हो रही प्रकृति को/ जब तक नहीं बचाएँगे।

आज सर्वत्र घर, परिवार, समाज, संस्थान, सभा, संगोष्ठी आदि में अपना अधिकार जमाने वालों की कमी नहीं। आवरण पृष्ठ पर इन्हीं सब बातों को इंगित करती पंक्तियाँ ऐसे माहौल से परिचित कराती हैं– आकाश को निजी नहीं बना सकते/ आकाश पर, अधिकार सबका है/ हवाई जहाजों का भी और चील–कौओं कबूतरों का भी..... घर से निकलना होगा/ नई जमीन की तलाश में।

कुल मिलाकर पूरी पुस्तक कृतिकार के व्यक्तित्व व कृतित्व का आईना है। 'साहित्य समाज का दर्पण है–' उक्ति को सार्थक करती कविताएँ गागर में सागर भरती हैं।

संपर्क: 'प्रणव', 1534, सेक्टर–बी, स्कीम नं. 71, रणजीत हनुमान मंदिर के पीछे, इंदौर–452009 (म.प्र.)
मो.: 9893164637

■

रंगमंच यायावर ब.व. कारंत और भारत भवन

– रघुवीर होल्ला

कारन्त जी की कन्नड़ फिल्म 'चौमुनदुड़ी' (वर्ष 1975) से मैं उनसे जुड़ा और फिर जीवनभर उनसे जुड़ा रहा। कारन्त जी मेरे लिए मेरे पिता से अधिक अभिभावक, गुरु और उससे भी कहीं अधिक....! मेरे लिए कोई दिन ऐसा नहीं होता जिस दिन मैं कारन्त जी की चर्चा न करता हूँ–''एक तरह से कहा जाए तो कारंत जी के रहते और उनके जाने के बाद, मैं स्वयं को किसी भी क्षण उनसे पृथक नहीं कर सका, और न जीवनभर करना ही चाहता हूँ।''

भारत भवन के बारे में कारन्त जी की यह आत्मकथा कन्नड़ में सुश्री वैदेही द्वारा लिखित है जिसे हिन्दी अनुवाद के साथ यहाँ ''बाबूकोडी ब.व. कारन्त रंग प्रतिष्ठान, बैंगलुरू'' द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। –रघुवीर होल्ला

भोपाल रंगमण्डल :

मैं, भोपाल आया और यहाँ की पुरानी इमारतों को देखा। तब भारत भवन का निर्माण शुरू हुआ ही था। यदि यहाँ सब कुछ वैसा ही होता जैसी योजना बनाई गई थी तो भारत भवन एक अँधियारी गुफा की तरह बन जाता। यहाँ बाहर की ओर एक मुक्ताकाशी रंगमंच था, यह एक पक्षी की तरह दिखाई देता था जिसके पंख बाहर की ओर फैले हैं और यह अंत तक इतना संकरा हो जाता है कि एक लंगोटी की तरह दिखाई देता है। इसके ठीक नीचे झील थी। वास्तव में, यह बहुत मनोरम स्थान था। यहाँ से गुजरने वाली हवा आवाज को फैलाती थी इसलिए माइक्रोफोन और लाउड स्पीकर की आवश्यकता ही नहीं थी। यदि यहाँ कोई नाटक सफल होता है तो उसे अपनी सफलता के लिए इस झील का ऋणी होना होगा।

मैंने वास्तुकार से कहा: ''सभागार के बारे में सोचिए, क्या आपको स्टेज की फिक्र नहीं है? इसे जितना संभव हो सकता है उतना बड़ा बनाईये। आप जो भी करेंगे, अंतत: यह अपना आकार स्वयं ग्रहण कर लेगा। प्रवेश और प्रस्थान के लिए स्थान तय करने की आवश्यकता नहीं है। रंगमंच अलग तरह का होगा।''

वास्तुकार चार्ल्स कोरिया ने मेरे सभी सुझावों को स्वीकार किया। उन्होंने एक बिन्दु पर कहा कि वे झील की ओर एक दीवार बना रहे हैं। लेकिन मैंने कहा: ''नहीं, इसे न बनाईये। हम इस मसले से निपट लेंगे। आखिरकार, हम रंगमंच के लोग हैं।''

भवन के अंदर, 'अंतरंग' में छत काफी नीची थी, करीब 10 फीट ऊंची। काफी चर्चा के बाद, और बड़ी मशक्कत के बाद मंच को भूतल से करीब तीन फीट नीचे किया गया। यह मेरा स्पष्ट सिद्धांत है कि रंगमंच पर मंच कभी तैयार नहीं होना चाहिए; यह मंच तभी बनता है जब अभिनेता इसका उपयोग करते हैं। इसीलिए इसे ''रंगभूमि'' कहा जाता है, तभी तो अभिनेता जितनी जगह का उपयोग करता है, उतनी जगह ही मंच होती है।

चयन प्रक्रिया:

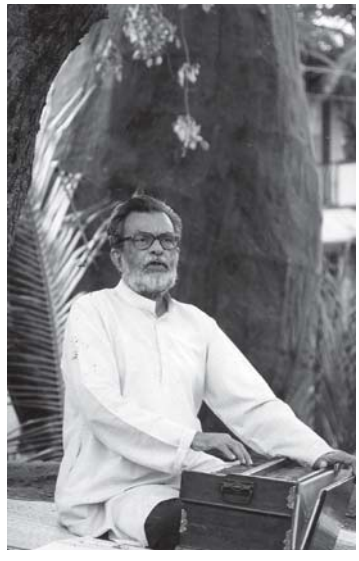

वहाँ नीलम मानसिंह काफी पहले आ चुकी थी। वही सभी कागजी कार्रवाई को पूरी कर रही थी। वह बहुत अच्छी अंग्रेजी बोलती थी, अपनी मातृभाषा पंजाबी से भी अधिक बेहतर। उसकी शिकायत थी कि मैंने नाट्य विद्यालय में उसे अधिक तवज्जो नहीं दी थी। मैं उससे कहूंगा कि वह तब प्रशिक्षण के प्रति उतनी गंभीर नहीं दिखाई देती थी। यहाँ पति उसके साथ थे जिसका भोपाल स्थानांतरण हुआ था। नीलम के अशोक वाजपेयी से बहुत अच्छे सम्बन्ध थे।

एक बार, मैं और नीलम जब अशोक के घर रात्रि भोज के लिए गए थे, तब मैंने दोनों को रंगमंडल में चयन की प्रक्रिया पर

विस्तार से अपने विचार बताए थे। एक साक्षात्कार में किसी तरह संदेह की सामग्री नहीं होनी चाहिए और यह पूरी तरह से पारदर्शी होना चाहिए। उदाहरण के लिए, जब हम प्रतिभागी से पूछें कि क्या वे नृत्य के बारे में जानते हैं और वे नृत्य कर दिखाएं तो यह वास्तविक परीक्षा होगी। चूंकि, यह प्रदर्शन आधारित होगा, इसलिए नाटक के संदर्भ में साक्षात्कार में कुछ भी रहस्य नहीं होना चाहिए। वास्तव में, एक साक्षात्कार को यह नहीं मापना चाहिए कि किसी में कितना ज्ञान है, बल्कि इसे किसी व्यक्ति की संवेदनशीलता, विशिष्ट सामर्थ्य और प्रदर्शन क्षमता को समझने का माध्यम होना चाहिए।

मौटे तौर पर, हमें लगभग 1200 आवदेन प्राप्त हुए और हमने तीन दिनों तक साक्षात्कार लिए। पहले, हमने 68 लोगों के समूह से तीन विषयों: विवाह, बहस और महाविद्यालय कार्यशाला में से किसी एक पर नाट्य भूमिका कर दिखाने को कहा। उनमें से अधिकांश ने विवाह को चुना क्योंकि इसमें निभाने के लिए कई भूमिकाएं थीं जैसे दुल्हा, दुल्हन, उनके माता-पिता और रिश्तेदार, पंडित और फोटोग्राफर आदि। सभी को 45 मिनट का समय दिया गया था। यदि वे चाहें तो अपनी भूमिका दोबारा प्रस्तुत कर सकते हैं। उसके बाद हमने उन्हें 25 सदस्यों के दो समूहों और उसके बाद तीन-तीन सदस्यों वाले तीन समूहों में बांट दिया। अंत में, प्रत्येक प्रतिभागी का पांच मिनट तक साक्षात्कार लिया गया और पांच प्रश्न पूछे गए। अंतिम दिन, हम उन्हें एक जंगल में ले गए और उन्हें पत्थरों का चूल्हे के रूप में उपयोग कर खाना पकाने के लिए कहा। यह उनकी स्थितियों से निपटने के उनके तात्कालिक कौशल को जांचने के लिए था। उन्हें वनवासियों की तरह सोचना था। हम अपने साथ बहुत आवश्यक सामग्री ही लेकर गए थे। किसी को पानी का प्रबंध करना था तो दूसरे को हरी पत्तियां एकत्रित करनी थी तथा तीसरे को इन चीजों को पत्थर पर पीसना था। भोजन के बाद, हमने उन्हें इस पर्यावरण को नाट्य रूपांतरित करने को कहा। यही उनकी वास्तविक परीक्षा थी। उनके पास कोई संवाद नहीं था, केवल रोना और शोर मचाना था। उन्होंने वहां रहने वाली तीन जनजातीय समुदायों की काल्पनिक स्थिति का मंचन किया।

इन्हें रंगमंच के सभी पहलुओं पर एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाना था। दिल्ली के नाट्य विद्यालय में प्रशिक्षण के दौरान किसी बाहरी व्यक्ति का प्रवेश वर्जित था। यहां, मैंने सोचा कि प्रशिक्षण में कोई गोपनीयता नहीं रहेगी और विद्यार्थियों को प्रशिक्षण अवधि के दौरान अपनी पसंद की कोई प्रस्तुति देनी होगी। मैंने यह विचार लोक प्रस्तुतियों, विशेष रूप ये यक्षगान से प्राप्त किया था। इसमें वास्तविक प्रस्तुति आरंभ होने के पहले मंच पर 'बाला गोपाला' की भूमिका होती है जिसमें वे यक्षगान में प्रयुक्त सभी नृत्य रूपों को प्रस्तुत करते हैं और प्रस्थान कर जाते हैं। इसका अर्थ है-'कलाकरों को दर्शकों के समक्ष ही प्रशिक्षण दिया जाएगा। इसी तरह, मैंने सोचा, दर्शकों को नाटक में भूमिका निभाने वालों के प्रशिक्षण का भी साक्षी होना चाहिए।'

मध्यप्रदेश :

मध्यप्रदेश एक बहुत बड़ा राज्य है और यह बोलियों की असीम खान है। मुझे बताया गया कि अकेला बस्तर, एक जनजातीय जिला, समूचे केरल राज्य से आकार में बड़ा है। यहां बोली जाने वाली भाषाएं भी बहुत महत्व की हैं। मध्यप्रदेश के बारे में एक लोकप्रिय मजाक इस प्रकार है: मध्यप्रदेश के निवासी अपने प्रदेश के लिए वैसा नहीं लड़ते और संघर्ष करते हैं जैसा संघर्ष पोट्टि श्रिरामुलु ने आंध्र प्रदेश के लिए किया था। आसपास के राज्यों द्वारा जिसे वे अपना मानते थे, वह सब ले लेने के बाद जो बचा था, वह मध्यप्रदेश कहलाया (असल में यह अशोक वाजपेयी का गढ़ा गया मजाक था।)। यही कारण था कि यहां कई प्रकार की बोलियां और भाषाएं हैं। यही अंतर रंगमंडल में आए विद्यार्थियों में भी देखा जा सकता था, उनकी बोली, व्यवहार, बोलने का तरीका, सब कुछ एक-दूसरे से अलग था।

आरंभ करने के लिए मैंने उनके प्रशिक्षण के रूप में कुछ नई बातों से परिचित करवाया। पंजाब में भांगड़ा, कर्नाटक में यक्षगान,

केरल में कथकली–सभी इन राज्यों में जन्मी और स्थानीय संस्कृति द्वारा पोषित हुई। इसी तरह, हम अपनी प्रस्तुतियों को स्थानीय विविध नृत्यशैलियों और स्थानीय संस्कृति पर आधारित क्यों नहीं कर सकते ? तद्नुसार, विद्यार्थियों को स्थानीय कहानियां लाने, उन्हें एकसाथ समायोजित करने तथा उनके प्रचलित तरीके से प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। उदाहरण के लिए, एक गांव के कुछ प्रतिभागियों ने वहां की प्रसिद्ध शैली में कुछ प्रस्तुत किया तो दूसरे गांव के अन्य उसी को अपने यहां की विशिष्ट वेशभूषा में प्रस्तुत करेंगे। विद्यार्थियों को आम चर्चा के माध्यम से योगा, व्यायाम, मेकअप, संगी, सज्जा और एक नाटक लिखने का पाठ्यक्रम प्रदान किया गया। इसके बाद मैंने उन्हें प्रोत्साहित किया कि उन्होंने जो सीखा है उसके आधार पर एक प्रस्तुति दें।

अंततः, जो सबसे अधिक मायने रखता है, वह है कि कोई अपने असल अनुभवों तथा प्रशिक्षण में सीखे तो अपनी प्रस्तुति में कैसे लागू करता है। हमने उन्हें प्रस्तुति का निर्माण करने वाली ऐसी कथाएं प्रदान की जिनमें व्यायाम, चित्रकारी और सर्कस को लागू किया जा सके। कुछ सीमा तक, किसी भी कथा में योगा को अच्छी तरह शामिल नहीं किया जा सका। ये प्रस्तुतियां आम जनता के लिए नहीं थीं बल्कि कुछ परिचितों को आमंत्रित किया गया।

तब, भारत भवन में निर्माण कार्य जारी था और गांधी भवन ही एकमात्र उपलब्ध भवन था। हमने इसे किराए पर लिया और अभ्यास आरंभ किया।

विद्याार्थियों और शिक्षकों में एक परिचित सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मैंने अपने विद्यार्थियों के घर जाना व उनके साथ भोजन करना आरंभ किया। मेरा यह विचार अच्छा ही था।

रिवर्स गियर :

भवन पूर्ण होने के बाद भारत भवन वास्तुकार चार्ल्स कोरिया की प्रतिभा का आदर्श नमूना साबित होने वाला था। इस भवन में चार हिस्से हैं: रंगमण्डल (नाट्य विभाग), रूपंकर (फाइन आर्ट्स विभाग), वागर्थ (साहित्य विभाग) और अलाउद्दीन अकादेमी अनहद (संगीत और नृत्य विभाग)। कुछ समय बाद अलाउद्दीन अकादेमी को भारत भवन से स्थानांतरित कर दिया गया। भारत भवन का निर्माण इस खूबसूरती के साथ किया गया था कि कोई व्यक्ति पूरे परिसर का भ्रमण कर ले तो भी वह यह पता नहीं लगा पाएगा कि इसका कार्यालय कहां था और यहां अफसरशाही की कहीं कोई छाया उपस्थित नहीं थी। यह पूरे देश में अपनी तरह का पहला प्रयास था। 13 फरवरी 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भारत भवन का उद्घाटन किया। के. एस. हरिदास भट्ट भी कार्यक्रम में उपस्थित थे। उन्होंने इस अवसर पर मेरे द्वारा निर्देशित जयशंकर प्रसाद का एक नाटक देखने के बाद टिप्पणी की थी– ''कारंत यह क्या है ? तुम रिवर्स गियर में दिखाई दे रहे हो।'' नाटक बुरी तरह से असफल रहा था। ठीक दो दिन बाद, घासीराम कोतावाल की प्रस्तुति थी और मैंने इसे एकदम अलग तरह का प्रभाव दिया था। अपने आप में यह नाटक अपशब्दों से भरा हुआ था और प्रदर्शन के बाद दर्शकों ने अनुभव किया कि मैंने उनका अपमान करने के लिए और अधिक अपशब्दों का इस्तेमाल किया था। कुछ असीम कारणों से लोगों में भारत भवन के प्रति चिड़चिड़ाहट का भाव विकसित हो गया था और वे भारत भवन से जुड़े हर कार्यक्रम में गलतियां खोज रहे थे। निःसंदेह, तब और बाद में, ऐसे लोगों के पास अपनी प्रतिक्रियाओं को सही साबित करने की पर्याप्त सामग्री थी।

नए आयाम:

मई में परीक्षाओं के पूर्ण होने के बाद मैंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय को पूरी तरह से छोड़ दिया और जुलाई में रंगमंडल में आमद दर्ज करवा दी। कुछ ही दिनों में, स्थानीय लोगों की सहायता से मैंने भोपाल के 70 शौकिया रंगकर्मियों का चयन किया और एक नाटक का मंचन किया। यह प्रेमचंद के कर्मभूमि से प्रेरित था और स्क्रीन प्ले एक स्थानीय लेखक ने लिखा था। यह मेरी गतिविधियों में स्थानीय लोगों को जोड़ने की रणनीति थी। भोपाल में बैंगलूरु के ''रवीन्द्र कला क्षेत्र'' की तरह ''टैगोर हॉल'' नामक एक रंगमंच था। यह केवल शौकिया रंगकर्म के लिए जाना जाता था और हम यहां कुछ कार्य नहीं करने वाले थे। लेकिन इस नाटक का रंगमंडल में कुछ लेना–देना नहीं था तो मैंने इस नाटक को ''टैगोर हॉल'' में किया। यह बहुत बड़ा सफल नाटक साबित हुआ और इसके चार शो किए गए। हालांकि, जब मैंने इसी नाटक का दिल्ली में मंचन किया तो जेएनयू के विद्यार्थी पूरे समय नाराजगी जताते रहे। मैं चकित था, जिस नाटक को भोपाल में इतनी बड़ी सफलता मिली थी उसे यहां ऐसी प्रतिक्रिया क्यों मिली ? यद्यपि यह रंगमंडल का एक नियमित नाटक नहीं था, लेकिन यह प्रतिक्रिया मेरे द्वारा भोपाल में किए जा रहे कार्य के प्रति एक पूर्व चेतावनी की तरह थी, मैं चिंतित हो गया। क्या मेरे विचार आंखों पर पट्टी बंधे घोड़ों की तरह एक ही दिशा में दौड़ रहे हैं ? यहां तक की भारत भवन के उद्घाटन अवसर पर प्रस्तुत जयशंकर प्रसाद का एक नाटक भी असफल हो चुका था। मैं सचमुच में बहुत निराश था। हालांकि, रंगमंडल का अगला नाटक **घासीराम कोतवाल** ने ऐसी सफलता प्राप्त की कि मैंने अपनी सारी

निराशा और चिंता को भूला दिया। लेकिन, नि:संदेह, भारत भवन को लेकर राजनीतिक नाराजगी जारी रही।

घासीराम कोतवाल के 25 शो हुए। लेकिन, जब नाटक जारी था–दर्शकों, विधायकों और पार्षदों की आवा–जाही जारी रहती। इस व्यवहार से चिढ़कर हमने एक नियम बनाया कि नाटक के आरंभ होने के पहले हर व्यक्ति को किसी भी स्थिति में अपने स्थान पर बैठना होगा। आरंभ में, झील के अलावा भोपाल में कोई मनोरम स्थान नहीं था लेकिन अब भारत भवन के रूप में एक स्थान था जो नाट्य गतिविधियों के कारण दृष्टिगोचर हो रहा था। इसलिए, लोग इसकी चर्चा करने लगे थे और यहां आने लगे थे। लोगों की भीड़ पर नियंत्रण करने के उद्देश्य से हमने भारत भवन में प्रवेश के लिए पचास पैसे का शुल्क निर्धारित किया। हालांकि, जिनके पास नाटक का टिकट होगा उन्हें इस प्रवेश शुल्क से छूट दी गई। जैसे ही हमने भारत भवन में प्रवेश के लिए शुल्क लगाने की घोषणा की इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। अखबारों में लिखा गया: ''प्रशंसकों को आने दो और वहां खुशी से बैठने दो। आप उनको लेकर ईर्ष्यालु क्यों हैं?''

बिना टिकट किसी को भी प्रस्तुति देने की अनुमति नहीं थी और हमने सभी मुफ्त पास निरस्त कर दिए। यहां तक कि अशोक वाजपेयी चार टिकट खरीदते थे–एक टिकट स्वयं का, एक पत्नी का और दो टिकट बच्चों के। केवल आमंत्रित अतिथियों को प्रवेश शुल्क से छूट दी गई थी। मेरा वेतन उतना ही था जितना राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में मिला करता था–4500 रुपए प्रतिमाह और मुझे एक नि:शुल्क आवास प्रदान किया गया था। मैंने अपने घर के बाहर बांस को इस तरह से लगाया था कि वे एक स्वागत द्वार का आभास देते थे। यह माना जाता था कि रंगकर्मी कार की जगह जीप को प्राथमिकता देते हैं, इसलिए मुझे एक जीप दी गई। जीप चालक कल्लू ने मेरे लिए अपने भीतर गहरा लगाव विकसित कर लिया था। चार बच्चों का पिता कल्लू थोड़ा–सा अवकाश मिलते ही झपकी ले लेता था। वह अंत तक मेरे साथ रहा। वह अब भी मेरे साथ है, जब भी मुझे भोपाल जाना होता है, वह मेरी सहायता के लिए आ जाता है। मेरा रसोईया रमेश था जिसके चेहरे पर हमेशा मुस्कान रहती थी। उसका बेटा अभी एनएसडी रेपेट्री में है। रघुवीर होल्ला अन्य मामलों की देखभाल करता था।

केवल नाटकों के लिए रेपेट्री का संचालन करने का यह मेरा पहला अनुभाव था। एनएसडी में रेपेट्री संचालन की पूरी जिम्मेदारी मेरी नहीं थी। लेकिन यहां, भोपाल में रेपेट्री को स्थापित करने और संचालित करने की पूरी जिम्मेदारी मेरी है। हम रंगमंडल से सम्बद्ध अभ्यास सुबह 9.00 से दोपहर 1.00 बजे तथा शाम को 4.00 से रात 9.00 बजे तक करते थे। आवाज का प्रशिक्षण, संगीत अभ्यास और विमर्श सुबह करते थे। इसमें मध्यप्रदेश के विभिन्न हिस्सों से करीब 30 विद्यार्थी थे। इनमें भोपाल से केवल 4 विद्यार्थी थे। मैं विद्यार्थियों से सभी विषयों पर बात करता था जैसे प्रचार, ब्रोशर और पोस्टर तैयार करना और इस तरह उनमें छिपी प्रतिभा को एक उपयुक्त प्रोत्साहन मिला। वे बड़े उत्साह से ये सभी कार्य करते। यहां तक कि किसी नाटक का पुनर्प्रदर्शन होने पर वे नए पोस्टर और ब्रोशर तैयार करते थे। इस तरह वहां पोस्टर–ब्रोशर संस्कृति विकसित हो रही थी।

हमने दो थिएटर बनाए थे: एक सौ दर्शकों के लिए और दूसरा चालीस दर्शकों के लिए। जब भी आवश्यकता होती, हम भूमि पर साधारण कारपेट को बिछाते और उसे 'अंतरंग' व 'बहिरंग' में तब्दील कर देते। जहां भारत भवन का भवन समूह खत्म होता था, वहां एक गड्ढा था। हमने इसे 'कूपरंग' नाम दिया और यहां नाटक करने लगे। हमने नाटक आरंभ होने के पहले के कुछ समय को 'पूर्वरंग' नाम दिया और इस समय में हम हिन्दी कविता पढ़ने, लोक नाटकों का मंचन तथा 'पंडवानी' शो का आयोजन करते और इस तरह हम भारत भवन की खूबसूरती को निहारने आने वाले लोगों को पूर्वरंग में आने के लिए आकर्षित करने का प्रयास करते। संगीत और नाट्य अकादेमी द्वारा प्रायोजित नुक्कड़ नाटक उत्सव के दौरान हमने जगहों को खोजा और भारत भवन के लगभग हर कोने में नुक्कड़ नाटक किए। समारोह में लगभग सौ नाटकों का मंचन किया गया, और कुछ दलों के पास तीन से चार नाटक थे। कुछ दलों ने तो शहर में जा कर सचमुच के नुक्कड़ पर नाटक किए।

रंगमंडल में विभिन्न कार्यों के लिए चपरासी नहीं था। यह हमारी नीति थी कि सारे काम कलाकारों द्वारा स्वयं किए जाएंगे। जैसे ही प्रदर्शन का दिन आयेगा, प्रत्येक विद्यार्थी इतना व्यस्त होगा कि उसे दोपहर के भोजन के लिए समय चुराना पड़ेगा और प्रशिक्षण के लिए लौटना होगा। हमारा विचार था कि हम प्रशिक्षण में समान स्तर के विद्यार्थी रखेंगे ताकि सभी समानता से विकसित हो सकें। इसलिए, हमारे पास ऐसा कोई विद्यार्थी नहीं था जिसने पहले कोई प्रशिक्षण लिया हो, और इस कारण से तीन को छोड़कर कोई भी एनएसडी प्रशिक्षित विद्यार्थी नहीं लिया था। यहां तक कि ये तीन विद्यार्थी भी नेपथ्य के लिए थे और आवश्यक होने पर ही मंच पर भूमिका निभाते थे।

इस अवधि के दौरान, मैंने अपनी अंतर–राज्यीय यात्राओं को

खत्म नहीं किया था। मैंने बैंगलुरु से सम्पर्क कायम रखा। एकबार जब मैं वहां गया और पांच नाटकों का निर्देशन किया। एक दिन में प्रत्येक के लिए तीन-तीन घंटे का समान समय। निश्चित ही यह मूर्खतापूर्ण था लेकिन कप्पन्ना (श्रीनिवास जी. कप्पन्ना) से दोस्ती के कारण मुझे ऐसा करना पड़ा।

अंततः अपनी स्वाभाविक राह पर

इस अवधि के दौरान मैंने अपना पूरा समय नाटक के बारे में सोचने पर व्यक्त किया, कोई और काम नहीं केवल नाटक। स्वाभाविक है कि इस कारण मेरा ध्यान इस क्षेत्र की भाषाओं और बोलियों ने आकृष्ट किया। मैंने डारियो फो के 'द एक्सीडेण्टल डेथ ऑफ एन एनार्किस्ट' और मॅलियर के 'द सर्वेण्ट ऑफ टु मास्टर' का भोपाली में अनुवाद किया और उनका मंचन किया। हालांकि, यहां कई स्थानीय भाषाएं और बोलियां थीं लेकिन मालवी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, भोपाली और समान बोलियों में कोई नाटक नहीं लिखा गया था। उर्दू बोलने वाले भोपाल का अपना स्थानीय रंग था इसलिए यह मौलियर की थीम के लिए उपयुक्त था।

अशोक वाजपेयी के मार्गदर्शन में हमने मौलियर को मध्यप्रदेश के लगभग सभी जिलों में किया। सरकार द्वारा प्रदान की गई बस में हमने पूरे माह प्रदेश के सभी प्रमुख स्थानों का दौरा किया। जब हमने बेनेविट्स के ''इंसाफ का घेरा'' (ब्रेख्त के **द काकेसियन चाक सर्कल**) को बस्तर जिले के अलग-अलग स्थानों पर किया तो आरंभ में कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। लेकिन, धीरे-धीरे, यह इतना लोकप्रिय हो गया कि प्रत्येक प्रदर्शन के दौरान चार से पांच हजार दर्शक इकट्ठा होने लगे। इनमें से अधिकांश जनजातीय महिलाएं थीं। नाटक ब्रेख्त का था, निर्देशन बेनेविट्स ने किया था और भाषा बुंदेली थी और गीत भी बुंदेली लोकगीतों से लिए गए थे। यह एक अनोखा अनुभव था।

यह मेरा सिद्धांत था कि एक बार जब कोई कलाकार रेपेट्री में कोई भूमिका करता है तो उसे वहां अटकना नहीं चाहिए तथा उसे दूसरी अन्य भूमिकाएं निभाने के लिए तैयार रहना चाहिए। परिस्थितिवश, हमने छत्तीसगढ़ से प्रत्येक भूमिका के लिए दो-तीन अभिनेता पाये थे। हालांकि, उनमें कुछ प्रशिक्षित थे और कुछ नहीं, उन्हें हबीब तनवीर के साथ काम करने का अनुभव था। उनमें से एक द्वारका बहुत अच्छा कलाकार था और वह न्यायाधीश की भूमिका में शानदार था। बेनेविट्स अक्सर कहता था-''मैं बुद्धिमान कलाकार नहीं चाहता; मैं केवल समझदार कलाकार चाहता हूं।'' द्वारका इस कथन का उत्तम उदाहरण था।

दिमाग में शहरों को ध्यान में रखते हुए मैं पहले सोचता था कि मध्य प्रदेश में नाटक के दर्शक नहीं होंगे लेकिन, दर्शक तो मैंने यहां देखे! लोगों की भीड़ दर्शकों के रूप में आती थी। हालांकि, ये दौरा सरकार आयोजित करती थी लेकिन उसे वह राशि प्राप्त हो जाती जो वह हम पर व्यय कर रही थी, बल्कि उसे खर्च से अधिक ही मिलता। यह हमारे लिए बहुत संतोषजनक था। जब भी हम आमंत्रित करते, बेनेविट्स आते और नाटक तैयार करते, वह मेरे परिवार के सदस्य की तरह मेरे घर में ठहरते थे। अंततः भारत भवन ने एक परिवार, एक समुदाय के रूप में कार्य करना आरंभ कर दिया था।

बहुस्वरों का आनंद

इस अवधि के दौरान में बहुत आनंदित था; कई प्रयोगों को सफलतापूर्वक पूर्ण करने पर आनंदित, और इससे भी महत्वपूर्ण, लोक नृत्यों और बहुस्वरों को मंच प्रदान करने की प्रसन्नता। जब मैं बुंदेली में **मालविकाग्निमित्रम्** को तैयार कर रहा था, मैंने दो परिवर्तनों को देखा: पहला भाषा से जुड़ा है, बुंदेली और संस्कृत, एक-दूसरे से बहुत अलग लेकिन साथ ले आया गया था; दूसरा, जब एक पाठ का दूसरी भाषा में पुनर्जन्म लेने की संभावना का अनुभव उत्साहजनक था। अग्निमित्र, नाटक का राजा, तीन पत्नियों के होने के बाद भी नई महिला के लिए लालसा रखता है; मैं कैसे इसे न्यायोचित ठहराता? मैंने इस नाटक को विनोदपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करने का विचार किया। मैंने तुमसे कहा था कि विनोदपूर्ण नाटक की

प्रस्तुति हमारा कार्य नहीं होता बल्कि यह समझदार दर्शकों पर निर्भर होता है। सम्भवत: इसी कारण से **मालविकाग्निमित्रम्** एक बड़ी सफलता थी।

तब तक, बुंदेली में कोई भी नाट्य परम्परा नहीं थी; और यह इस बोली में पहला नाटक था। इसमें शहादत के कथन जैसे 'खूब लड़ी मर्दानी थी/झांसी वाली रानी थी' बहुत प्रसिद्ध हुए। उत्तर प्रदेश में भी यही बोली प्रचलित थी। संस्कृत नाटकों में यदि आम जनता प्राकृत बोलते थे तो उच्च वर्ग संस्कृत बोलता था। इस परम्परा को अपनाते हुए, मैंने योगिनी से हिन्दी बुलवाई और अन्य चरित्रों से बुंदेली में बात करवाई। लेकिन मैंने इससे भी अधिक किया; मैंने अभिनय के माध्यम से चरित्रों के सामाजिक स्तर को अलग-अलग दिखाया। जैसे कि सूत्रधार, विदूषिका और सखी को राई (मध्यप्रदेश का एक लोक नृत्य) के समान अंग संचालन दिया वहीं, मालविका को शास्त्रीय नृत्य भरतनाट्यम् और कथक का मिले-जुले प्रकार का अंग संचालन दिया गया। मैंने शास्त्रीय वाद्य मृदंग का उपयोग किया। इस नाटक को वास्तव में बहुत अधिक सफलता मिली। प्रोफेसर इस बात पर सिर खुजाते रहे कि एक विशेष ध्वनि कहां से और कैसे आ रही है।

उज्जैन में, एक विशेष शब्द ने समस्या खड़ी कर दी। नाटक में एक दृश्य था, इसमें पत्नी अपने पति से कहती है -''तू तो बड़ा बदमाश है।'' कुछ विरोधियों का कहना था कि एक पत्नी के लिए यह उचित नहीं है कि वह अपने पति को 'बदमाश' कहे। तब, काशी के एक बड़े विद्वान कमलेशदत्त त्रिपाठी ने उन्हें यह कहकर चुप करवा दिया कि-''यदि संस्कृत नाटक में प्रयुक्त मूल शब्द ''षठा'' का प्रयोग किया जाता तो इसका अधिक गलत अर्थ होता।'' कम से कम 'बदमाश' शब्द को प्यार से कहा जा सकता है लेकिन 'षठा' तो पूरी तरह से घृणास्पद शब्द है।'' नाटक में केवल बुंदेली संवाद ही नहीं थे बल्कि बुंदेली गीतों, बुंदेली संगीत और यहां तक कि बुंदेली

नृत्यों का भी प्रयोग किया गया था। एक अच्छे कवि ने अनुवाद किया और एक अन्य बुंदेली कवि ने कलाकारों को गीत सुनाए।

नफरत का काला धुंआ

यहां मुझे एक नाटक '**इंसाफ का घेरा**' से सम्बन्धित घटना का उल्लेख करना पड़ेगा। जिस कवि ने 'मालविकाग्निमित्रम्' का अनुवाद किया था, उन्हींने इस नाटक का भी बुंदेली में अनुवाद किया। ध्रुव शुक्ल ने सभी गीतों का अनुवाद किया। बुंदेली बोली हिन्दी के बहुत करीब है, इसलिए अनुवाद बहुत अच्छा हुआ। मैं मानता हूँ कि भाषा और संगीत अविभाज्य नहीं है, मैंने यहां दोनों के मिश्रण का प्रयास किया। यह एक बहुत ही सफल नाटक था और मैंने 50-60 मंचन देखे। मैं जो घटना बता रहा हूं वह इस नाटक के प्रसिद्ध होने के बाद की है। मैंने पहले एक वाक्य 'सुलगता राजनीतिक असंतोष' वाक्य का उपयोग किया है, मुझे लगता है कि यह घटना उसी का परिणाम थी।

नाटक प्रशंसा बटौर रहा था और पांच-छह दिनों बाद बेनेविट्स जर्मनी चले गये। एक दिन, दस से पन्द्रह कॉलेज विद्यार्थियों ने टिकट लिए और एक साथ बैठ गए। उनकी एक मित्र को नाटक में भूमिका दी गई थी और उसने उन्हें आमंत्रित किया था। मैं प्रसन्न था कि कई युवाओं को नाटक में रुचि थी। नाटक आरंभ हुआ और मध्यांतर तक सब कुछ ठीक रहा। मध्यांतर के बाद, नाटक के दूसरे हिस्से में एक अदालत का दृश्य था जिसमें एक अमीर व्यक्ति और उसकी बहू अपने नौकर के विरुद्ध शिकायत करते हैं कि नौकर ने बहू के साथ हिंसा की है। न्यायाधीश फर्श पर एक चाकू फेंकता है और बहू से उसे उठाने के लिए कहते है। वह बहुत अभिनय के साथ चल कर चाकू उठाने जाती है, इस दौरान उसका पार्श्व भाग प्रदर्शित होता है। वह चाकू उठाती है और उसे न्यायाधीश को दे देती है। तब न्यायाधीश निर्णय सुनाते हैं कि यह बहू ही है जो अपने

व्यवहार से नौकर को उत्प्रेरित करती है और नौकर तो वास्तव में मासूम है। अमीर व्यक्ति और उसकी बहू के कोर्ट से बाहर जाने के साथ ही दृश्य का अंत होता है।

इस बिन्दु पर, सभी कॉलेज विद्यार्थी खड़े होकर चिल्लाने लगे–''इसे रोकिये। मंच पर इस तरह की अश्लीलता दिखाना अपराध है। आप असभ्यता और सदगुणों को मिला रहे हैं।''

फिर वो मांग करने लगे कि ''निर्देशक कहा हैं, उसे बुलाइये।''

''वह यहां नहीं है; वे जर्मनी लौट चुके हैं।''

''ऐसा अश्लील नाटक निर्देशित करने के बाद क्या वह जर्मनी में आनंद ले रहे हैं?''

हमने उन्हें बाहर जाने के लिए कहा और उन्हें बलपूर्वक बाहर कर दिया गया। वे नारे लगाते हुए गए –''रंगमंडल मुर्दाबाद'', ''भारत भवन मुर्दाबाद''। जब मंच पर उपस्थित कलाकारों ने दर्शकों से पूछा कि वे उस दृश्य को दोहराएं या अगला दृश्य प्रस्तुत करें। सभी दर्शकों ने एक स्वर में कहा कि दृश्य दोहराया जाना चाहिए और दृश्य दोबारा आरंभ हुआ।

मैंने '**मृच्छकटिका**' (गारा की गाड़ी) का मालवी में मंचन किया (मालवी में 'गारा' का अर्थ है मिट्टी, संभव है कन्नड शब्द 'गारे' इससे सम्बन्धित हो जिसका अर्थ होता है चूने का प्लास्टर।)। इसी तरह, 'वेटिंग फॉर गोडोट' को छत्तीसगढ़ी में तैयार किया गया। रघुवीर सहाय ने खड़ी बोली में दो नाटक लिखे: **किंग लियर** और **मिड समर नाइट्स ड्रीम** का अनुवाद। पहले नाटक में बुंदेली का ताकतवर मिश्रण था।

मैंने स्थानीय भाषा को महत्व देने और स्थानीय भाषा में नाटक तैयार करने की अभिलाषा को पोषित किया, एनसडी में था तब भी। लेकिन, फिर मुझे अहसास हुआ कि महत्वाकांक्षा तो भोपाल में अब थी। वहां शुद्ध हिन्दी में नाटक थे लेकिन इतने नहीं थे कि उनका मंचन किया जा सके। वास्तव में, मैं भी कई अन्य लोगों की तरह कहा करता था कि जयशंकर प्रसाद के नाटकों के मंचन को सफलता नहीं मिलेगी। लेकिन, बाद में, मैंने आधुनिक नाटकों की तुलना में प्रसाद और भारतेंदु के कई नाटकों का मंचन किया। सभी नाटकों में मैंने प्रसाद के अंतिम नाटक **स्कंदगुप्त** सहित कुल पांच नाटकों का निर्माण किया। स्कंदगुप्त एक साहित्यिक नाटक था और यह मंच के निर्माण के लिए नहीं था। लेकिन, इसे एक महान नाटक मानते हुए बी.ए. और एम.ए. की पाठ्य–पुस्तकों में शामिल किया गया था। वहां नाटक के लिए कई मार्गदर्शिका भी उपलब्ध थीं।

डी.एल. रॉय (बंगाली), समसा (कन्नड़) और जयशंकर प्रसाद (हिन्दी)–ये तीनों वास्तव में ऐतिहासिक नाटकों के महत्वपूर्ण भारतीय लेखक हैं। मेरे विचार में, रॉय की तुलना में प्रसाद के नाटक अधिक काव्यात्मक हैं जबकि रॉय के नाटक अधिक मंचीय हैं। प्रसाद की तरह समसा में भी हम काव्यात्मक और अलंकारिक विशेषताएं पाते हैं। उसके एक नाटक **बिरुडेम्टेम्बरा गंडा** में आपको बड़ी ऊंचाई तक ले जाने वाली नाटकीय विशेषता थी।

मेरे दिमाग में हमेशा इन तीनों के नाटक हुआ करते थे। जब मैं हिन्दी में कुछ नया करना चाहता था तो मैंने प्रसाद के **स्कंदगुप्त** को चुना और इसे व्यवस्थित रूप से किया। जैसा कि **मैकबेथ** की सफलता के पहले मेरा **किंग लिअर** असफल हुआ था, **स्कंदगुप्त** का चयन करते समय मेरे दिमाग में उद्घाटन वाले दिन प्रसाद के नाटकों की असफलता का विचार था। मैं इतने दिनों उस दिन की असफलता के कारणों का ही विश्लेषण करता रहा, नाटक को बार–बार पढ़ता रहा और अपनी कमजोरियों को लिखता रहा। लंबे अध्ययन और विश्लेषण के बाद मैंने महसूस किया कि **स्कंदगुप्त** के लिए प्रशिक्षित और अनुभवी अभिनेता और अभिनेत्रियों की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप, इस बार मैंने अपने कलाकारों को अंग संचालन, मुद्राओं, हाव–भाव और मार्शल आर्ट्स का गहन प्रशिक्षण दिया। वास्तव में, मैंने उन्हें मार्शल आर्ट में प्रशिक्षित करने के लिए एक माह का समय लिया। प्रसाद प्राथमिक रूप से एक कवि थे और इसलिए उनकी काव्य कल्पनाओं को एक विस्तृत फलक की आवश्यकता थी। एक तथ्य के रूप में, इतिहास को हमेशा दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। टैगोर ने एक बार टिप्पणी की थी कि नौ रसों अलावा एक दसवां रस भी है और यह दसवां रस 'ऐतिहासिक' रस है। कोई किरदार कितना भी छोटा क्यों न हो ऐतिहासिक संदर्भ उसे पूर्ण रूप से अलग अर्थ दे देगा। यदि आप यह मानते हैं कि प्रत्येक विषय ऐतिहासिक है तो प्रत्येक घटना का एक अलग ढ़ांचा होता है, पृथक दृष्टिकोण होता है। इस विचार ने मुझे यह महसूस करने पर प्रेरित किया कि मैं भारत भवन के 'अंतरंग' का उपयोग प्रसाद के नाटकों को दृष्टिकोण देने के लिए कर सकता था। जितना संभव हो सकता था मैंने प्रसाद की कल्पना को ऊंचाई दी। इसमें कोई अंधेरा नहीं था और केवल तीन दृश्य थे: वहां – यहां – मध्य में। मैंने उम्मीद की थी कि ये तीन दृश्य तीन विभिन्न दृष्टिकोण देंगे।

'अंतरंग' में सभी चारों दिशाओं में सीढ़ियां हैं और मंच नीचे

है; मैंने इन सीढ़ियों का उपयोग किया। रॉबिन दास (जिसे हाल ही में राष्ट्रीय अकादेमी पुरस्कार मिला है–2000) वहां थे और उन्होंने मंच का कार्य संभाला। वहां एक चोर दरवाजा और एक चबूतरा था–बस इतना ही। मैं बहुत संतुष्ट था।

नाटक में स्कंदगुप्त और देवांगना प्रेमी थे और स्कंदगुप्त का द्वंद्व प्रेम और राजा के बीच का था: दोनों को कैसे बचाया जाए? वह राजा बनना नहीं चाहता था और वह घोषणा करता है कि वह अपने चचेरे भाई के लिए अपना ताज स्वेच्छा से छोड़ देगा। मैंने यहां संवाद का एक छोटा–सा टुकड़ा जोड़ा–स्कंदगुप्त से प्रश्न किया जाता है: ''कमजोर हाथों में सत्ता देकर क्या तुम इससे पलायन नहीं कर रहे हो? कड़े संघर्ष से प्राप्त स्वतंत्रता को हम खो रहे हैं।'' वह उत्तर देता है: ''एक बार यदि में सत्ता कमजोर हाथों में दे देता हूँ तो इसकी जिम्मेदारी पूरी तरह से मेरी है।'' कहानी आगे बढ़ती है, दो प्रेमी अलग हो जाते हैं। मैंने इस दृश्य में बहुत–सी गतिविधियां डालीं। ''मुझे इस प्यार के बदले में किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है। हमने प्यार किया और यह इसका अंत है।'' इसके तुरंत बाद नाटक चंद्रगुप्त से लिया गया एक गीत ''हिमाद्री तुंग श्रुंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती'' आता है, जिसे नाटक के अंत में सैनिकों ने गाया था। प्रसाद के नाटक आपस में जुड़े होते हैं, इसलिए मैंने इस गीत को स्कंदगुप्त में लेने की स्वतंत्रता ली। यह दृश्य मुझे भावुक कर देता था। मैंने इस दृश्य में विविध तरह के द्वंद्वों को दिखाया। सेना मध्य में घूम रही है और स्कंदगुप्त उनके पीछे है। देवांगना मंच पर एक तरफ कोने में रहती है और देशभक्ति गीत में ''भारती–भारती'' दोहराती है।

स्कंदगुप्त के चरित्र में अधिक उछलकूद या ऊंचे स्वर में बोलने की आवश्यकता नहीं थी। बिपिन नामक कलाकार ने इस भूमिका को अच्छी तरह अभिनीत किया। स्कंदगुप्त का पहला संवाद था: ''सत्ता का आनंद कितना मादक होता है।'' यहीं से नाटक आरंभ होता है। मैंने बिपिन को बताया था: ''तुम्हारे लिए अधिक संवाद नहीं है। तुम्हें सब कुछ अपने हाव–भाव से ही दिखाना होगा।'' उसे यह टिप्पणी (''सत्ता का आनंद...'') तब करना थी जब सारे कलाकार मंच से जा चुके हों। ऐसा लग रहा था कि इस टिप्पणी को सुन कर लोग रोमांचित हो उठेंगे। स्वामीनाथन ने कहा था: ''कॉलेज में, मैं जब भी यह वाक्य पढ़ता था तो रोमांचित हो उठता था। लेकिन अब मैं इसे अपनी आंखों के सामने घटित होते देखूंगा।''

विभा ने इस नाटक में देवांगना की भूमिका की थी और उसने इस भूमिका के लिए आवश्यक गंभीरता को विकसित किया था। उसने इस भूमिका के बारे में मेरे अलावा अशोक वाजपेयी और विजय मोहन सिंह के साथ भी चर्चा की थी।

जहां तक अभिनय की बात है, **स्कंदगुप्त** में सभी ने अपनी भूमिका के साथ न्याय किया था। यहां तक कि सिपाहियों ने भी अच्छा अभिनय किया। नाटक देशभक्ति के बारे में था। हम देशभक्ति के बारे में आलोचक हो सकते हैं लेकिन नाटक में स्कंदगुप्त इस बारे में अलग तरह से सोचता है– यह सही है कि देशभक्ति आवश्यक है; लेकिन मुझे स्वयं को देशभक्ति का स्रोत मानने नहीं देना चाहिए। देवांगना भी इसी तरह सोचती है और उसकी चुप्पी और खड़े रहने की मुद्रा इस अर्थ को मुखरता से प्रस्तुत करती है।

स्कंदगुप्त को मंच पर बहुत अधिक सफलता मिली; लेकिन मेरे अंदर तीव्र आत्म–संदेह उठ खड़े हुए। मुझे यह अचरज होने लगा था कि मैं कहां गलत था और कहां मैं अतिनाटकीय हो गया था। आलोचकों ने मुझे चुनौती दी: ''क्या तुम इसके जैसा दूसरा नाटक तैयार कर सकते हो?'' इस प्रश्न ने मुझे परेशान करना शुरू कर दिया: इस नाटक को जरूर सफलता मिली है लेकिन क्या मैं किसी अन्य नाटक में इस सफलता को दोहरा पाऊंगा? यहां तक कि अब भी आलोचकों की यह चुनौती मेरे दिमाग में है। प्रसाद के नाटकों का मंचन करते समय किसी में भी एक अलग तरह की योग्यता की आवश्यकता होती है– वह योग्यता जो गहन अध्ययन, रचनात्मकता, धैर्य और दृढ़ता से आती है। मेरे बाद, कुछ अन्य ने प्रसाद के नाटकों का मंचन किया। एक लेखक ने वास्तव में 'प्रसाद की दृष्टि और रचानात्मकता' पर गहन अध्ययन कर एक पुस्तक लिखी। इस तरह धीरे–धीरे साहित्य का हिस्सा रहे प्रसाद के नाटकों ने स्वयं को मंचीय प्रस्तुतियों के लिए खोला।

विशेष रूप से, नाटक ने प्रसाद के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन किया। स्कंदगुप्त की सफलता ने उन लोगों को अपने मत पर दोबारा सोचने पर मजबूर किया जो यह घोषित कर बैठे थे कि प्रसाद के नाटक मंचन के लिए नहीं है। अंतत: इसके लिए पेशेवर होने की आवश्यकता थी; इसे शौकिया रंगमंडलियों द्वारा मंचित नहीं किया जा सकता है। आज जो भी जयशंकर प्रसाद या भारतेन्दु पर बात

करेगा उसे कारंत से आरंभ करना होगा। मैं ही वह व्यक्ति हूं जिसने साबित किया है कि उनके नाटकों को सफलतापूर्वक मंचित किया जा सकता है। ये रगों में जोश भरने के लिए नहीं है और मुझे किसी जोश की आवश्यकता भी नहीं है।

मैंने भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद दोनों के चार से पांच नाटक मंचित किए। मेरे अनुसार दोनों में अंतर यह है कि जहां भारतेन्दु हमेशा 'ताजा' होते हैं, वहीं जयशंकर हमेशा 'स्वप्निले' होते हैं। बुद्ध के प्रभाव से 'करुणा' भी सभी रचनाओं में व्याप्त है। उनके गीत 'करुणा कादम्बिनी बरसे' (दया की बारिश हो) का प्रयोग मैंने नाटक में किसी भी किरदार की मृत्यु पर, हर बार किया। अशोक वाजपेयी ने टिप्पणी की थी–''जिस तरह चर्च की घंटी बजा कर मृत्यु की सूचना दी जाती है, उसी तरह किसी की मृत्यु पर यह गीत गाने को विवश करेगा।'' लेकिन दु:ख की बात यह है कि हमारे साथ हर बात का अंत कार्टून की तरह होता है। उदाहरण के लिए, भजन 'रघुपति राजाराम'। यह सच है कि यह गीत गांधीजी की मृत्यु के बाद उपजे दु:ख को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त है लेकिन यह ऐसे भाव देता है कि मानो इसे शोकगीत के रूप में लिखा गया हो।

महानिर्वाण

जैसा कि आप जानते हैं, उन दिनों मैं बहुत कम अभिनय किया करता था। दिशांतर में 'खामोश, अदालत जारी है' नाटक में मैंने काशीकर की भूमिका की थी (यह पहला नाटक था जिसमें प्रेमा और मैंने साथ काम किया। इस नाटक में, प्रेमा ने श्रीमती काशीकर की भूमिका निभाई थी। अजीब ढंग से खड़े रहने और अशिष्टता से बात करना जैसे कार्य उसके लिए उपयुक्त थी। बाद में, हमने लंकेश के नाटक 'पेट्टीगे' (डिब्बा) में साथ कार्य किया; यह ऊंचे दर्जे का प्रतीकात्मक नाटक था।)।

मैंने काशीकर की भूमिका में कुछ कोमल प्रश्नों को उठाया। गुब्बी कम्पनी का प्रभाव–बल्कि अप्रत्यक्ष। जब भी मैं कम्पनी के नाटकों में किरदारों देखता था तो स्वयं से कहता था कि यदि मैं अभिनेता होता तो मैं उस भूमिका को अलग तरीके से करता आदि। अब, मैं ऐसे विचारों को व्यवहार में प्रयोग कर रहा था। कुछ बिन्दु इतने कोमल थे कि दर्शकों ने उन पर ध्यान नहीं दिया। मैं भी कुछ हद तक जल्दबाजी में होता था। इसके बाद, कहा गया कि ''यदि कोई और करता तो काशीकर की भूमिका के साथ न्याय नहीं कर सकता। कारंत को इस भूमिका पर कॉपीराइट प्राप्त है।'' प्रसन्ना ने मुझे यहां तक कहता था कि मैं स्वयं भी नहीं जानता कि मैंने इस भूमिका को कितनी अच्छी तरह निभाया है। इसी समय इस नाटक का मंचन जैसलमेर में किया गया (शिवपुरी का जन्म स्थल)। इन तीन नाटकों को बैंगलूरू के ओपन एयर थिएटर में प्रदर्शित किया गया। मैं सोचता हूं मैंने यह आपको पहले बताया है।

खामोश और महानिर्वाण इन दो नाटकों ने मुझे एक अभिनेता के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। खामोश में अभिनय के 12 वर्षों के अंतराल के बाद मैंने सतीश आलेकर के महानिर्वाण में कार्य किया जिसका रंगमंडल में निर्देशन अलखनंदन ने (आयु में मुझसे छोटा) किया था। इस नाटक में, अभिनय के अतिरिक्त, मैंने संगीत भी दिया था। तब में 56 वर्ष का था। मेरे अभिनय के संदर्भ में एक गंभीर शिकायत थी कि मैं अपने संवादों को रट नहीं सकता था और इस कारण मेरे लिए उन्हें याद रखना कठिन था। इस शिकायत में काफी सच्चाई थी और मेरी इस समस्या के कारण अन्य कलाकारों को परेशानी का सामना करना पड़ता था। मैं केवल अपने संवाद ही नहीं भूलता बल्कि कुछ दृश्य भी भूल जाता और मुझे जब याद आता मैं उन्हें तब अभिनीत करने लगता था। लेकिन महानिर्वाण में मैंने संवादों को पूरी तरह से दोबारा तैयार किया, अपने गीत गाये और निर्देशन की मंशा के अनुसार अभिनय किया (हालांकि, तब भी कुछ छोटी त्रुटियां हुई; प्रदर्शन–दर–प्रदर्शन मेरे अभिनय में बदलाव हुआ और टोपी, जूते पहनने तथा नृत्य के दृश्य प्रत्येक प्रदर्शन में बदल गए।) इस नाटक का दिल्ली में जोरदार स्वागत हुआ और प्रदर्शन के बाद बहुत से दर्शकों ने आकर मुझे गले लगा लिया और मुझे बधाई दी।

महानिर्वाण का भोपाल में कई दिनों तक प्रदर्शन जारी रहा। हमने महानिर्वाण और घासीराम कोतवाल के प्रदर्शन के दौरान सतीश आलेकर और विजय तेंदुलकर को अतिथि के रूप में आमंत्रित किया। प्रदर्शन के बाद चर्चा में तेंदुलकर ने कहा कि– ''घासीराम कोतवाल मेरा नाटक है और यह कई बार मंचित किया गया है इसलिए मैं इसके बारे में बात नहीं करूंगा। जहां तक महानिर्वाण की बात है, इसका टीम वर्क शानदार है और इसके प्रदर्शन को बड़ी सफलता मिली है।'' जैसी कि उम्मीद थी, आलेकर ने दोनों नाटकों की प्रशंसा की। उन्होंने उन दृश्यों के बारे में भी बताया जो नाटक से अलग तैयार किए गए थे और बताया कि उन दृश्यों को लिखते समय उनके मस्तिष्क में क्या था।

– सचिव, बाबूकोडी ब.व. कारन्त रंग प्रतिष्ठान, बैंगलुरू (कर्नाटक) ■

ब.व. कारन्त का जीवन वृत्त और रंगमंच की सीख

(19 सितम्बर 1929-01 सितम्बर 2002)

– रामवीर शर्मा

प्रख्यात नाट्य, रंग निर्देशक, रंगकर्मी, संगीतकार ब.व.कारन्त (बाबूकोडी वेंकटरमण कारन्त) का जन्म बाबूकोडी गाँव, उडुपी (दक्षिण कर्नाटक) में हुआ। कारन्त जी को अपने घर में बचपन से ही अपनी माँ से यक्षगान शैली में पुरन्दरदास के भजन सुनने को मिले तो वहीं कथावाचक अपने पिता से रामायण, महाभारत सहित अन्य ग्रंथों के प्रसंग। जब कारन्त जी बाल्यावस्था में ही कर्नाटक की मशहूर गुब्बी थिएटर कंपनी से जुड़ तो वहाँ उन्हें कर्नाटक की लोकप्रिय लोकशैली को जानने-समझने और सीखने का अवसर मिला तथा फ़िल्म के क्षेत्र में जी.व्ही. अय्यर और राजकुमार जैसे स्थापित और सुविख्यात कलामनीषियों का सान्निध्य भी मिला। इसके बाद कारन्त जी हिन्दी क्षेत्र की ओर आकर्षित हुए और तब वह वाराणसी (उत्तरप्रदेश) आए और वहाँ उन्हें हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी जी से हिन्दी साहित्य तथा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य कलामनीषी पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का विधिवत् 6 वर्ष सघन प्रशिक्षण प्राप्त किया। कारन्त जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस से हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि तथा वहीं से पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के सान्निध्य में हिन्दी साहित्य में शोध और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली से नाट्य कला में डिप्लोमा प्राप्त किया। कारन्त जी कई पदों पर रहे जिनमें नाट्य प्रशिक्षक, निदेशक: राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, संस्थापक निदेशक: बेनका बैंगलुरू तथा भारत भवन न्यास मण्डल के प्रथम न्यासी एवं मध्यप्रदेश रंगमण्डल के प्रथम व संस्थापक निदेशक।

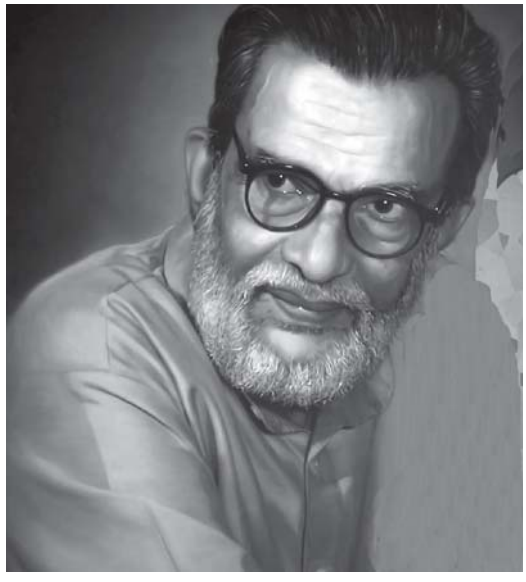

कारन्त जी ने कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, चेन्नई, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बिहार, उत्तराखण्ड, दिल्ली, असम, मणिपुर, पश्चिम बंगाल, पंजाब के अनेक प्रमुख शहरों में नाटक, नाट्य कार्यशालाएँ और रंग शिविर आयोजित किये तथा देश में जगह-जगह घूमकर रंगमंच के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण काम किया। एक तरह से कारन्त जी ने अपने भीतर समूचे देश की नाट्य परम्परा को अपने में समेट रखा था। उनके द्वारा अनेक भाषाओं में नाटक निर्देशित एवं संगीतबद्ध किये जिनमें हिन्दीभाषा के लगभग-46, कन्नड़ भाषा के लगभग-61, अन्य भाषाओं के लगभग-11, 40-बाल नाटक, अनेकों नाट्य संस्थाओं और नाट्य निर्देशकों की नाट्य प्रस्तुतियों में रंग संगीत, मध्यप्रदेश रंगमण्डल के लिए 10-11 नाटकों का निर्देशन। कारन्त जी द्वारा देश के तमाम ऐतिहासिक महत्व के स्थलों में ध्वनि, प्रकाश कार्यक्रम के लिए संगीत दिया और निर्देशन किया। संस्कृति से हिन्दी तथा कन्नड़ से हिन्दी में नाट्यानुवाद, आलोचना एवं समीक्षा: यक्षगान (शिवराम कारन्त), बच्चों के लिए नाट्य लेखन, नाट्यांतर, फिल्म एवं टीवी (कन्नड़, हिन्दी), वृत्तचित्र, दूरदर्शन के लिए नाटक, एल.पी. और ऑडियो कैसेट्स (सत्तूर नेरलू, इस्पीत राज्य), म्यूज़िक (सुमित्रानंदन पंत की कविताओं के लिए) तैयार किया। देश के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण फिल्म निर्देशकों की अनेक कन्नड़, उड़िया और बांग्ला फ़िल्मों के लिए संगीत निर्देशन किया। कारन्त जी को अनेक सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए जिनमें फिल्मों के लिए (निर्देशन एवं संगीत) राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार और राज्य पुरस्कार, लन्दन फिल्मोत्सव पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, भारत सरकार का पद्मश्री अलंकरण, कर्नाटक नाट्य अकादमी पुरस्कार, गुब्बी वीरण्णा पुरस्कार एवं मध्यप्रदेश सरकार का राष्ट्रीय कालिदास सम्मान आदि प्रमुख हैं। कारन्त जी के लिए नाटक, साहित्य, संगीत, फिल्म, लोक-नाट्य, लोक-संगीत,

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, लोक की परम्पराएँ उनकी हद और जद में थे। कारन्त जी के द्वारा पहली बार 'हयवदन' नाटक के लिए गाना गाया 'गजवदन रे रम्भा..' और इस गाने को सुनकर सभागार में उपस्थित सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध हो गये। इसके बाद यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि कारन्त जी के प्रत्येक नाटक और नाट्य-संगीत की शुरूआत 'गजवदन' गाने से ही हुई। यह स्तर और जादू था कारन्त जी की गायकी और संगीत की समझ का। कारन्त जी का मानना था कि 'कला एक गतिशील परम्परा है, यदि यह रुक गयी तो सड़ जायेगी।'

- **कारन्त जी द्वारा डायरी में 'बाबा' बनने तथा अन्य का जिक्र इस प्रकार किया है:-**

आप लोगों ने स्वेच्छा से मुझे 'बाबा' की उपाधि से विभूषित किया है। इस सम्बन्ध में मेरी आपत्ति नहीं। यद्यपि इस उपाधि को प्रदान करने से पहले आपने मेरी अनुमति नहीं ली थी। फिर भी बिन माँगी जो सहज रूप से उपाधि मिली है उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। जब मैंने 'बाबा' की उपाधि स्वीकार कर ही ली तो, मैं इस उपाधि के साथ न्याय करना चाहता हूँ। मैं सच्चे अर्थ में अब 'बाबा' ही बनना चाहता हूँ। सब बन्धनों से मुक्त किसी एक कोने में 'साधना' की रीति पर रंगमंच की सिद्धि प्राप्त करना चाहता हूँ। मैंने आज तक जो देखा है अपने आसपास और जो-जो गलतियाँ खुद मैंने की हैं उनके दोष निवारणार्थ मैं यहाँ से संन्यास लेना चाहता हूँ। कई प्रकार के बैरागी सुने हैं हमने ? क्या कोई 'रंग बैरागी' हो सकेगा ?''

- **रंगमंच के बारे में-**

1. नाटक जनसमुदाय के लिए महत्वपूर्ण और प्रबलतम अभिव्यक्ति का माध्यम है।
2. रंगमंच ही एक ऐसा माध्यम है जिसमें जनसमुदाय की जीवन संस्कृति रची जाती है। जहाँ भाषा बनती है, व्यवहार बनते हैं और नृत्य-संगीत तथा चित्रकला, साहित्य एकजुट होकर जनता के अत्यन्त निकट पहुँचते हैं।
3. रंगमंच ही प्रदेश, भाषा, व्यक्ति के मौलिक स्वरूप को संरक्षित करने में समर्थ है तथा स्थानीय होकर भी राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय हो सकता है।
4. रंगमंच ही एक ऐसा जीवन्त माध्यम है जिसमें विभिन्न वर्ग, विभिन्न रुचि, विभिन्न स्तर के लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर नाटकों का एक-सा रसास्वादन करते हैं।
5. रंगमंच ही एक माध्यम है जहाँ अलग-अलग स्थान के लोग, अलग-अलग पृष्ठभूमि से आये लोग, अलग-अलग कर्मक्षेत्र से आये लोग, अलग-अलग उद्योग के लोग एक स्थान पर रंगकार्य कर सकते हैं, साथ ही जन के कर्म-वर्ग-उद्योग प्रदेश के सांस्कृतिक स्तर को उदात्त बनाते हैं।
6. रंगमंच किसी भी समाज के भूत, भविष्य के साथ वर्तमान को सर्वाधिक नुकीलेपन से सफलता के साथ चित्रित, अभिव्यक्त करता है।

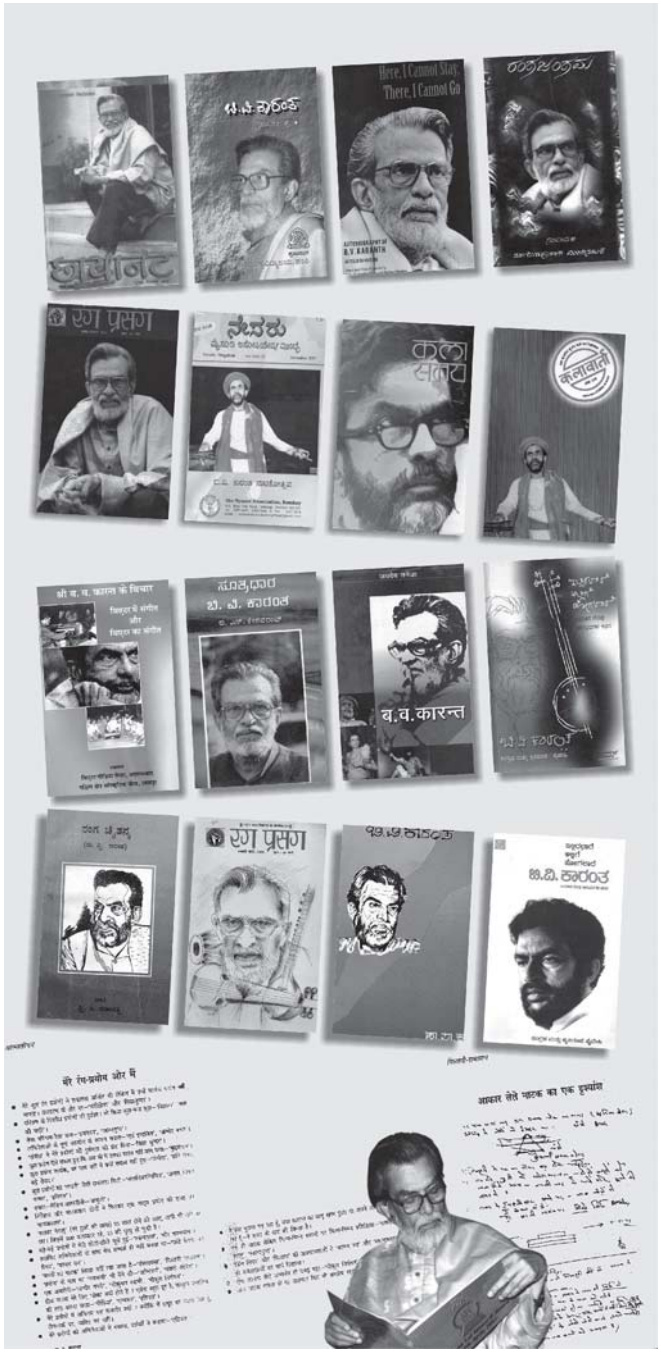

- **ध्वनियों के बारे में-**

ध्वनियों के बारे में बाबा लिखते हैं कि ''भाव, ध्वनि, मूड,

कुत्ते का भोंकना, गुनगुनाना, गरजना, क्रोध, रोना, हँसना, बड़बड़ाना, विकृत ध्वनि, मिथ्या स्वर, फटी आवाज, तुतलाना'' और इन सबकी सहज क्रियाएँ–''छींकना, खाँसना, जंभाई, डकारना, खुर्राटा लेना, हिचकी। प्रतिक्रियात्मक ध्वनियाँ– चुचकारना, कराहना, हाँफना, सिसकारना ठण्ड–गरमी, धुतकारना, खिसियाना, थूकना, नफ़रत'' से आदि। सृजनात्मक ध्वनियाँ– ''ताल, स्वर, गले के स्वर, सीटी, संगीत, भाषा के स्वर, अभ्यासार्थ स्वर, ध्वनि विधाएँ, स्वर रहित ध्वनि।'' ऐसे ही हँसने के छः प्रकार– ध्वनियों के छः प्रकार होते हैं यथा–''पूर्ण हँसित, अर्द्ध हँसित, उपहँसित, अपहँसित, अदृहँसित, ठहाका हँसित, चारित्रिक हँसी, अर्थगर्भित हँसी।'' अनुकरणात्मक–''प्राणी, पक्षी, अन्य भाषी, बेजान चीजें, तांगा, खस।'' संप्रेषक ध्वनि– ''आवाज़ देना, स्थान विशेष के आधार पर, ओहो, हेलो, अजी, ठहरो, पहाड़ी पुकार, चिल्ला करके बोलना।'' पेशेवर ध्वनियाँ–''बेचना, फेरी वाला, बर्तन, सब्जी, अखबार, दंत मंजन, दूधवाला, भिखारी, झाड़ूवाला, अजान, नेता, वार्ताकार, ढिंढोरची, रोना–रुदन, क्रन्दन, विलाप, प्रलाप, सिसकी–फूट फूट कर रोना, याचनापूर्वक ध्वनि, ताल, मेलोडी, महफिली, शरद चाँदनी।'' समूह ध्वनियाँ–''नारे लगाना, हँसना, शोर (अलग–अलग प्रकार के शोर, अलग–अलग स्तर पर), भजन, कोरस, प्रतिज्ञावाचन, वैदिक ऋचाएँ, पहाड़ी बोलना, नर्सरी राइम्स, मज़दर–अइसा, संगीत के स्वर, तबला के बोल, सियावर–श्रीराम जैसी, पुंडरीक वाचन, शुक्रिया प्रकट करना, दौड़ते हुए आवाज'' आदि।

सुमित्रानंदन पंत की कविताओं के लिए बाबा ने संगीत तैयार किया और उसकी शुरूआत में उन्होंने पुराने दरवाजे के खुलने और बन्द होने की ध्वनि का प्रयोग किया। प्रकृति, पशु–पक्षियों के तत्वों का व्यवहार तथा उनकी ध्वनियों का संगीत में प्रयोग करना बाबा के लिए ही सम्भव था। बाबा संगीत के नित नये प्रयोग करते थे जिसमें संगीत की मौलिकता, शास्त्रीयता, साहित्य को अक्षुण्ण रखते हुए एक अभिनव व विशिष्ट संगीत, ध्वनि उसके सर्वथा अनुकूल बना देते थे और यह सब बाबा ही कर सकते थे। बाबा को अपने आसपास की चीजों जैसे–गुटके की शैली, कोक की बोतल, टूटे टीन, बाल्टी, डिब्बे, पाइप, बर्तन (पीतल, मिट्टी, कांसा, लोहा आदि), बड़े–बड़े वृक्षों के पत्तों से एक अलग और अद्भुत ध्वनि की रचना कर देते थे इसलिए बाबा का संगीत हमेशा अनूठा, अलौकिक और कर्णप्रिय रहता था।

कारन्त जी ने अपने जीवन के आखिरी समय में प्रेमा जी से

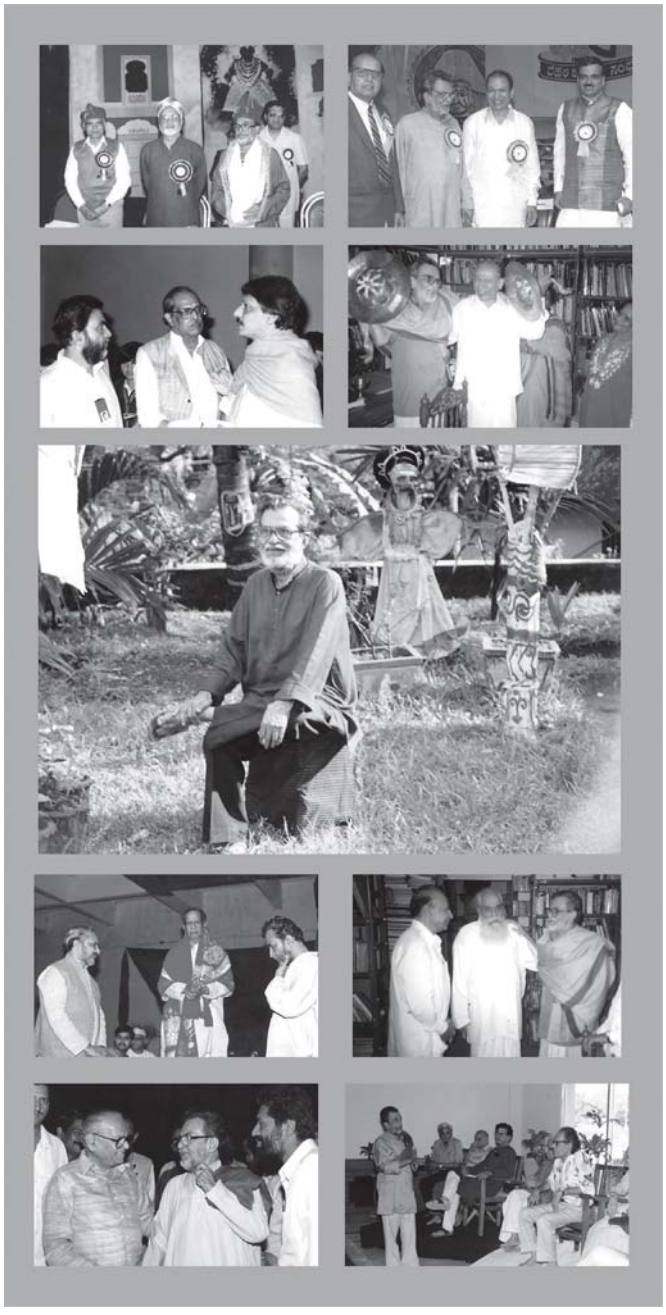

नाटक ''खड़िया का घेरा'' करने की ज़िद की और अन्ततः प्रेमा जी ने उनके कहने पर उसे तैयार भी किया। अस्पताल के डॉक्टरों द्वारा बाबा को बार–बार मना करने के बाद भी अस्पताल में अपने पलंग पर बैठे–बैठे इस नाटक के लिए 12 गीतों का संगीत रच डाला, जैसा कि बाबा कहते थे–''जब तक नाटक करता रहूँगा, तभी तक जिन्दा रहूँगा और जब तक जिन्दा रहूँगा, नाटक करता रहूँगा'' अर्थात् कला ही जीवन है को सार्थक करते हुए–''जीवन के आरम्भ से अन्त तक कला के लिए जिए।''

– लेखक: भारत भवन में वरिष्ठ संस्कृति कर्मी है।

स्मृति शेष

वरिष्ठ शास्त्रीय गायिका डॉ. दीप्ति गेडाम परमार

– सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'

4 अगस्त, 1985 – 03 दिसम्बर, 2022

शास्त्रीय संगीत को समर्पित डॉ. दीप्ति गेडाम परमार ने अपनी लगन एवं रियाज़ से गुरुजी की संगीत शिक्षा को आत्मसात किया एवं संगीत जगत में अपना स्थान पक्का किया। डॉ. दीप्ति गेडाम की माताजी श्रीमती जी इंदिरा गेडाम एवं पिता श्री प्रकाश गेडाम ने उनकी संगीत शिक्षा के लिए अच्छे से अच्छे गुरुजनों से सम्पर्क स्थापित कर संगीत शिक्षा का प्रबंध करते रहे। परिणामस्वरूप उन्हें उसे सांस्कृतिक शिक्षा केन्द्र नई दिल्ली से स्कॉलरशिप प्राप्त हुई।

डॉ. दीप्ति गेडाम परमार ने महाविद्यालयीन शिक्षा के अंतर्गत ओपन यूनिवर्सिटी युवा महोत्सव, पूना में शास्त्रीय संगीत प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

- मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित लता मंगेशकर उत्सव में सुगम संगीत प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया।
- एम.ए. संगीत की परीक्षा प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता से उत्तीर्ण की। ग्वालियर ख्याल गायिकी पर प. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' के मार्गदर्शन में शोध उपाधि (पीएच.डी.) प्राप्त की।
- डॉ. दीप्ति गेडाम परमार ने ग्वालियर ख्याल गायिकी के साथ-साथ टप्पा गायन शैली को भलीभांति आत्मसात किया एवं अधिकारपूर्वक गाया।
- शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ सुगम संगीत (गीत, गजल, भजन) गायन में भी प्रवीण थी।
- आकाशवाणी दूरदर्शन की 'बी-हाई'' श्रेणी की कलाकार थी।

- डॉ. दीप्ति गेडाम परमार आदिवासी क्षेत्र से थी। परिवार में परंपरागत संगीत के संस्कार नहीं थे। मात्र पिताजी श्री प्रकाश गेडाम संगीत में रुचि रखते हैं फिर भी डॉ. दीप्ति गेडाम ने शास्त्रीय संगीत जगत में अपना स्थान बनाया।
- डॉ. दीप्ति गेडाम ने अपनी मेहनत एवं स्वभाव से गुरुजनों का विश्वास प्राप्त कर शास्त्रीय संगीत की कठिन टप्पा शैली में प्रवीणता हासिल की।
- शास्त्रीय संगीत में कहावत है कि ''करता उस्ताद न करता शार्गिद'' अर्थात जो संगीत का निरंतर अभ्यास करता रहता है वही उस्ताद कहलाता है। जो अभ्यास नहीं करता वह कितना ही गुणी क्यों ना हो शागिर्द की श्रेणी में ही माना जाता है।

डॉ. दीप्ति गेडाम परमार ने उपरोक्त मुहावरे को चरितार्थ कर अपनी योग्यता स्थापित की एवं ईश्वर की संगीत सेवा के लम्बी ..... यात्रा पर चली गई।

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धाजंलि...

■

स्व-रोजगार, उद्यमिता भारत के डीएनए में है: वित्त मंत्री श्रीमती सीतारमण

छठवीं दत्तोपन्त ठेंगड़ी स्मृति राष्ट्रीय व्याख्यानमाला सम्पन्न

29 नवम्बर। केंद्रीय वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने कहा कि उद्यमिता, स्व-रोजगार भारत के बेसिक कैरेक्टर में है। यह इस देश के डीएनए में है। भारत की सशक्त आर्थिक व्यवस्था में छोटे, मध्यम उद्योगों का योगदान रहा है। उन्होंने कहा कि केंद्र सरकार ने श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के विचारों के अनुरूप ही फ्री मार्केट, फ्री अर्थव्यवस्था और मुक्त प्रतिस्पर्धा के लिए नीति बनाई है।

श्रीमती निर्मला सीतारमण आज रवीन्द्र भवन में दत्तोपन्त ठेंगड़ी शोध संस्थान द्वारा छठवें दत्तोपन्त ठेंगड़ी स्मृति राष्ट्रीय व्याख्यानमाला-2022 में '21वीं सदी के वैश्विक परिदृश्य में भारत का आर्थिक सामर्थ्य' विषय पर व्याख्यान दे रही थीं। श्री ठेंगड़ी के वैचारिक योगदान को याद करते हुए वित्त मंत्री ने कहा कि वे संगठन शिल्पी थे। उन्होंने उस समय सरकार के प्रोत्साहन के बिना वैचारिक धरातल पर अनेक संस्थान बनाए। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट विचारधारा के विपरीत धारा में संगठनों को खड़ा किया। 30-40 साल पहले जो नींव उन्होंने रखी थी, वह आज वटवृक्ष हो गई है। वर्ष 1985 में चीन ने भारतीय मजदूर संघ को इस नाते आमंत्रित किया कि वह कामगारों का सबसे बड़ा संगठन है। उन्होंने कहा कि भारत जब आजादी के सौ वर्ष पूर्ण करेगा, उस समय हमारी मानसिकता में भी परिवर्तन होना चाहिए। विरासत को याद करें और आत्मविश्वास के साथ आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए खड़े हों। नीति बनाते समय भारतीय ज्ञान परंपरा का भी ध्यान रखें क्योंकि यही हमारी ताकत है।

श्रीमती सीतारमण ने कहा कि विदेशों में भारत की ब्रांड में परिवर्तन आया है। आज विदेशी भी उत्साह के साथ योग दिवस मना रहे हैं। आयुर्वेद, सिद्धविद्या और हिमालयन औषधियों को दुनिया भर में स्थान मिला है। देश में अब ठेंगडी जी के विचारों के अनुरूप सभी को समान अवसर और सबको समान सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। उन्होंने लोगों से आह्वान किया कि वे प्रकृति का शोषण न करें। उसका दोहन करें और अपनी लाइफ स्टाइल को पर्यावरण के अनुरूप परिवर्तित करें।

2 साल के अंदर 108 यूनीकॉर्न

वित्त मंत्री ने कहा कि हमारे युवाओं के योगदान के कारण ही भारत में स्टार्टअप क्रांति हो रही है। आज देश में 2 साल के अंदर 108 यूनीकॉर्न खड़े हो गये हैं और यह दुनिया में तीसरी बड़ी संख्या है। उन्होंने कहा कि केंद्र सरकार ने तकनीक का उपयोग कर दो लाख करोड़ रूपये से ज्यादा की बचत की है। लोगों के खातों में सीधे लाभ पहुंचाया गया है और धोखाधड़ी की संभावनाएं समाप्त हो गई हैं। भारत का आर्थिक सामर्थ्य इसी से पता चलता है कि वह संविधान के सभी वादों को पूरा करने में समर्थ हुआ है।

ठेंगड़ी के विचार आज भी प्रासंगिक: श्री चौहान

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने कहा कि भारत ने दुनिया को ज्ञान का प्रकाश दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन से हजारों वर्ष पूर्व भारत ने 'वसुदेव कुटुंबकम' का मंत्र दिया। सभ्यता, संस्कृति और अर्थव्यवस्था में भारत को सबसे ऊपर था। 200 वर्ष पहले वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत का योगदान

तिथि से 33 से लेकर 30 प्रतिशत था। मुगल काल में भी वैश्विक अर्थ व्यवस्था में हमारी जीडीपी का योगदान 25 प्रतिशत था। लेकिन, अंग्रेजों के राज में यह घटकर 4 प्रतिशत रह गया और 1970 तक आते आते मात्र 3 प्रतिशत ही रह गया। पिछले 8 वर्षों में भारत ने बड़ी आर्थिक तरक्की की है। आज वैश्विक व्यवस्था में हमारा योगदान 9.5 प्रतिशत है। उन्होंने कहा कि दत्तोपंत ठेंगड़ी के विचार आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने ही कहा था कि मनुष्य को रोटी, कपड़ा, मकान के अलावा बुद्धि, मन और आत्मा का सुख भी चाहिए और वह समाज के लिए अनुशासित भी होना चाहिए। आज चारों ओर भारत का बढ़ता हुआ सामर्थ्य दिखाई दे रहा है। दूसरे देशों के उपग्रह हम छोड रहे है, स्वदेशी हथियार बना रहे है। उन्होंने कहा कि फाइव ट्रिलियन की इकॉनामी में मध्यप्रदेश का भी योगदान होगा। आज मध्य प्रदेश की ग्रोथ रेट 19.76% है और जीडीपी साढ़े 3 लाख करोड़ से बढ़कर साढ़े 12 लाख करोड़ हो गई है। किसी समय हमारी प्रति व्यक्ति आय 13 हजार रूपये थी, आज यह एक लाख 37 हजार रुपए है।

विषय प्रवर्तन करते हुए संस्थान के सचिव श्री दीपक शर्मा ने कहा कि भारत बदल रहा है और यह बदलाव सकारात्मक है। भारत आर्थिक रूप से सशक्त था लेकिन अंग्रेजों की लूट में वह आर्थिक तंत्र ध्वस्त हो गया। श्री ठेंगड़ी जी ने विचार दिया था कि अमेरिका जैसी व्यवस्था भी आने वाले समय में नहीं टिकेगी।

स्वागत भाषण में दत्तोपन्त ठेंगड़ी शोध संस्थान के निदेशक डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा ने कहा कि दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने आजीवन समाज की आंख पर पड़ी धूल को हटाया और भारत को स्वदेशी ज्ञान का सदा साक्षात्कार कराया।

ठेंगड़ी के विचारों पर चल रही है सरकार

वित्त मंत्री ने कहा कि सरकार की नीतियों में दत्तोपंत ठेंगड़ी के स्वदेशी विचारों को स्थान मिल रहा है। बाधाएं हटाकर आत्मनिर्भरता को बढ़ाया जा रहा है। संविधान के सभी वचनों को मोदी सरकार पूरा कर रही है। ठेंगड़ी जी द्वारा दिए गए 'सबका हित' सिद्धांत को सरकार पूरा कर रही है। विश्व की समस्याओं के समाधान का रास्ता भारत से ही निकलेगा। उनके बताए गए 'थर्ड वे' से ही रास्ता निकलेगा। युवा भारत और समर्थ भारत ही आर्थिक सामर्थ्य हैं।

– डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा, निदेशक, मो. 7388868888

डॉ. श्याम सुंदर दुबे को राष्ट्रीय कबीर सम्मान

मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग द्वारा आयोजित गणतंत्र के उत्सव 'लोकरंग–2023' के उद्घाटन अवसर पर 26 जनवरी, 2023 को रवीन्द्र भवन के अंजनी सभागृह में माननीय राज्यपाल श्री मंगुभाई पटेल के मुख्य आतिथ्य एवं माननीय संस्कृति मंत्री सुश्री उषा ठाकुर के विशेष आतिथ्य में अलंकरण समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर राष्ट्रीय कबीर सम्मान वर्ष–2021 डॉ. श्यामसुंदर दुबे–हटा को प्रदान किया गया, राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान वर्ष–2021 डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त–गोरखपुर, राष्ट्रीय इक़बाल सम्मान वर्ष–2021 सैयद तकी हसन आबिदी– हैदराबाद, राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान वर्ष –2021, डॉ. श्रीराम परिहार–खण्डवा एवं राष्ट्रीय नानाजी देशमुख सम्मान वर्ष–2021 जनजाति कल्याण केंद्र महाकौशल–डिंडौरी को प्रदान किया गया। इस अवसर पर प्रशस्ति वाचन संचालक संस्कृति श्री अदिति कुमार त्रिपाठी द्वारा किया गया। इस गरिमामय कार्यक्रम में बड़ी संख्या में शहर के गणमान्य नागरिक उपस्थित रहे।

आयोजन

प्रभा खेतान फाउंडेशन का कलम के 50वाँ सत्र का उत्सव

प्राइमटाइम थिएटर कंपनी प्रोडक्शन की नाट्य प्रस्तुति

भारतीय सिनेमा की पहली महिला देविका रानी की जीवनी परआधारित नाटक–'देविका रानी' का अभूतपूर्व सशक्त व सफल मंचन प्रभा खेतान फाउंडेशन, एहसास वीमेन, नवरस स्कूल आफ परफॉर्मिंग आर्ट्स तथा द प्राइम टाइम थिएटर कंपनी द्वारा 'कलम' का 50 वाँ सत्र पूरा होने के उपलक्ष्य में ''कलम 50 वाँ सत्र का उत्सव– चलचित्र रंगमंच– देविका रानी'' का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर भारतीय सिनेमा की पहली महिला देविका रानी की जीवनी पर आधारित प्राइमटाइम थिएटर कंपनी प्रोडक्शन की नाट्य प्रस्तुति , किश्वर देसाई लिखित व टेलीविजन तथा फिल्म कलाकार तथा प्राइम टाइम थिएटर कंपनी के निर्देशक लिलेट दुबे निर्देशित नाटक ''देविका रानी'' का सफल व सशक्त मंचन स्थानीय रविंद्र भवन में हुआ।

नाटक रजत पर्दे (सिल्वर स्क्रीन की ब्यूटीफुल गौडेस) की अति खूबसूरत ,सुंदर, आकर्षक देवी, देविका रानी की छात्रा से बॉलीवुड की सुपर स्टार तक की सजीव जीव– यात्रा के उत्कर्ष–अपकर्ष , आरोह– अवरोह से बखूबी साक्षात्कार कराता है।

नाटक की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि देविका रानी के जीवन के भावनात्मक उतार– चढ़ाव के संवेदनशील क्षणों को– हिमांशु रॉय के साथ उनका विवाह , अपने पति के साथ सुप्रतिष्ठित व बहुचर्चित बॉम्बे टॉकीज की स्थापना, फिर बॉलीवुड से उनका अवकाश और रशियन कलाकार स्वेतोस्लाव रोरीच से दूसरे विवाह आदि से रू–ब–रू कराने में कलाकारों का सशक्त व संवेदनशील हृदयस्पर्शी अभिनय पूरे ऑडिटोरियम को शांत (पिन ड्राप सायलेंश, स्पेलबाउंड सायलेंस) बनाए रखता है तथा दर्शकों को मर्माहत करने में सक्षम है। इतनी अच्छी प्रस्तुति पटना के दर्शकों को कम ही देखने को मिलती है।

मुख्य कलाकारों में इरा दुबे (देविका रानी), जॉय सेनगुप्ता (हिमांशु रॉय), प्रणव सचदेवा (अशोक कुमार), ऋषि खुराना आदि थें।

उल्लेखनीय है, प्रभा खेतान फाउंडेशन, कोलकाता (अलाभकारी संस्था) का साहित्यिक अवदान 'कलम' साहित्यिक क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ है , क्योंकि यह सुप्रतिष्ठित, बहुचर्चित बुजुर्ग व युवा साहित्यकारों को सामने लाने के लिए एक सर्वश्रेष्ठ प्लेटफार्म है । उन साहित्यकारों से साक्षात्कार कराते हुए नए युवा लेखकों को वर्नाकुलर साहित्य के प्रति लेखन से प्यार और जानने ,समझने– सीखने की प्रेरणा प्रदान करता है।

साथ ही, इसका उद्देश्य भारत और विदेशों में हिंदी साहित्य को विश्वस्तरीय पहचान, प्रतिष्ठा दिलाना, लोकप्रिय बनाना तथा अनुकूल व उचित ऑडियंस तैयार करना भी रहा है।

प्रभा खेतान फाउंडेशन ने सन् 2015 में जयपुर और पटना से शुभारंभ कर अभी तक कलम का 550 सत्रों का संचालन भारतीय और विदेशी शहरों में कर चुका है। इस दौरान पूर्व लेखकों में गीतांजलि श्री, चित्रा मुद्गल, ज्ञान चतुर्वेदी, अनंत विजय, अनामिका, मीनाक्षी नटराजन, प्रत्यक्ष सिन्हा ,मनोज मुंतशिर, यतींद्र मिश्रा जैसे कई लेखकों ने पटना में कलम के सत्रों का मान बढ़ाया है।

– बिन्देश्वर प्रसाद गुप्ता पटना (बिहार)।

■

आयोजन

राग मल्हार उत्सव- बरखा ऋतु आई

ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल की संगीत संध्या का अभूतपूर्व अविस्मरणीय आयोजन

झूला धीरे से झूलाओ बनवारी रे, साँवरिया....
कोयलिया ना बोले ...ना बोले.. ना ...
एक भूल हुई, भूले से कभी, हम तेरी तमन्ना कर बैठे...

भारतीय संस्कृति व परंपरा को सदा जीवंतता व भव्यता प्रदान करने के लिए नवरस स्कूल आफ परफॉर्मिंग आर्ट्स कई वर्षों से सांस्कृतिक कार्यक्रम करता आ रहा है। इस बार भी, स्थानीय तारामंडल सभागार में- अपना 136 वाँ कन्सर्ट- ''मल्हार उत्सव- बरखा ऋतु आई'' का एक भव्य संगीत समारोह का आयोजन किया गया जिसमें युवा सितार वादक सौमित्रा ठाकुर तथा उप-शास्त्रीय गायिका राजेश्वरी पाठक ने सांगितिक संध्या को अनुपम, अविस्मरणीय रंगीन संगीतमय बना डाला।

सर्वप्रथम संस्था के सचिव डॉ. अजीत प्रधान ने अतिथियों का स्वागत करते हुए ताना -रीरी बहनों की श्रद्धांजलि दी, जिन्होंने राग मेघ मल्हार गाकर सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक गायक मियां तानसेन की जान बचायी थी। डॉ. प्रधान ने बताया कि कैसे सम्राट अकबर के दरबारी लोग तानसेन से ईर्ष्या कर उसे जान से मारना चाहते थें। वे महान सम्राट अकबर से तानसेन को राग दीपक में गाने के लिए कहलवाया। दरबारी जानते थें कि अगर तानसेन ठीक से यह राग गाया तो उसका शरीर जलने लगेगा, क्योंकि इस राग से उत्पन्न अति तापमान होने से शरीर जलने लगता है। तब ताना गिरी बहनें ही राग मियां मल्हार में गाना गाकर तानसेन की जिंदगी बचायी थी। तब तानसेन ने घोषणा की थी कि ताना- रीरी को बिना श्रद्धांजलि दिये कोई भी मल्हार उत्सव नहीं मनाया जा सकेगा।

सुप्रसिद्ध सितार वादक सौमित्रा ठाकुर ने जो उत्तम ठाकुर जी और प्रशांत ठाकुर जी के शिष्य रह चुके हैं, सर्वप्रथम राग मियां मल्हार से ही सितार वादन आरंभकर ताना रीरी को श्रद्धांजलि दी। फिर , सूरदासी मल्हार राग में वादन किया।

तत्पश्चात देश के सर्वश्रेष्ठ उप शास्त्रीय गायिकाओं में एक स्वर्गीय शोभा गुरु के शिष्य राजश्री पाठक ने एक से बढ़कर एक राग मल्हार में उप शास्त्रीय गायन सुना कर दर्शकों का दिल जीत लिया ।

उन्होंने सर्वप्रथम राग मल्हार तथा विभिन्न प्रकार के मल्हार

में 'बरसे बदरिया सावन की' गाकर बताया। तब , वे बेगम अख्तर द्वारा गाये गये गीत- 'छा रही काली घटा ...' की बेहतरीन प्रस्तुति दी। दर्शकों के अनुरोध पर उन्होंने शमीम जयपुरी की ग़ज़ल राग यमन में ''क्यों मुझे मौत के पैगाम दिये जाते हो...'' को सुना कर पूरे सभागार को स्तब्ध कर दिया। इसके बाद... 'बारहमासा'... 'नई झुलनी' आदि कई ठुमरी, दादरा सुनायी। उन्होंने 'झूला' गाया-

''...झूला धीरे से झूलाओ बनवारी रे, सांवरिया,... झुलत झुलत मोरा जियरा डरत है, लचके कदम्बवा के डारी, सांवरिया...'' तथा ''हिंडोला'' भी गाकर मंत्र मुग्ध कर दिया-

'देखो सांवरे के रंग, मोरी झूले री हिंडोला
यमुना तीरे कदम के डरिया ...'
''बादल गरजे, पनिया बरसे, बिजुरी चमके, पनिया बरसे
बादल छाया है घनघोर/गोरी चुनरी भिंगोला ...''।
राधा आ आ, हरि राधा , देखे नयनवा,
सखी झूले, गोरी झूले री हिंडोला ''।

उन्होंने दादरा गीत भी गाया-

''कोयलिया ना बोले, ना बोले ना.... तड़प तड़प जियरा हमार, सुनि गई री/ हमारे पिया बिना/ बरखा ऋतु बैरी हमार ...''।

उन्होंने एक सदाबहार अद्भूत ग़ज़ल 'राग भैरवी' में सुनाकर लोगों को झूमने पर मजबूर कर दिया-

''एक भूल हुई , भूले से , कभी
हम तेरी तमन्ना कर बैठे
पछताता है दिल , यूँ रह-रह कर
क्या करना था, क्या कर बैठे...।
.... मालूम न था ले जाएगी ,
इस दिल की लगी, उस मंजिल तक
हम इश्क में थे रहे क्या, उसे सजदा कर बैठे...।
कल रात को महफ़िल में, नजर आये
आपकी दावत थी,
जब उनसे नजर टकरा ही गई
बल खाके, वो पर्दा कर बैठे...
ना जाने उन्हें हम क्या समझे
जो उनसे भरोसा कर बैठे
उम्मीद के झूठे वादों पर
वे नजरें तमन्ना कर बैठे।''

संगीत में, गायन के साथ संगत किया , हारमोनियम पर पंडित विश्वनाथ प्रसाद और बड़े रामदास जी के शिष्य बनारस घराना के पंडित धर्मनाथ मिश्र तथा तबला पर गोपीनाथ झा और पंडित बुलबुल महाराज के शिष्य पंडित मिथिलेश झा थें।

इतनी सुनहरी, खूबसूरत ग़ज़ल की शाम में सिने कलाकार शत्रुघ्न सिन्हा, एस. आई. एस. लिमिटेड के अध्यक्ष आर के सिन्हा, मध्य प्रदेश हाई कोर्ट के माननीय न्यायाधीश, सांसद, वरिष्ठ ब्यूरोक्रेट्स, कलाकार, साहित्यकार और विभिन्न क्षेत्रों के संगीतप्रेमी आदि भी उपस्थिति थें।

– बिन्देश्वर प्रसाद गुप्ता पटना (बिहार)

मूर्धन्य गायक गुरु पंडित मणि प्रसाद जी को संगीतमय श्रद्धांजलि

आत्मा अजर अमर है। वह केवल चोला बदलती है। विद्वान सदैव अपनी विद्या के रुप में जीवित रहते हैं। चाहे वे सशरीर न रहें, परन्तु उनकी विद्या, ज्ञान और शिक्षा सदैव इस संसार में जीवित रहती है। यह कहना है देश के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पंडित देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग' का। जो आज दिनांक 29 जनवरी 2023 गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा द्वारा संचालित नवोदित कलाकार समिति के तत्वावधान में आयोजित बसंतोत्सव संगीत समारोह कार्यक्रम के शुभारम्भ से पूर्व अपने उद्बोधन में बोल रहे थे। देवेन्द्र वर्मा ने गुरु पंडित मणि प्रसाद जी के अनेकों संस्मरणों को सबके बीच साझा किया। कथक केन्द्र के तबला गुरु डा. नागेश्वर लाल कर्ण ने भी गुरुजी के अनेकों संस्मरण सुनाये।

यह समारोह हाल ही में दिवंगत किराना घराने के मूर्धन्य गायक गुरु पंडित मणि प्रसाद जी की पावन स्मृतियों को समर्पित था। कार्यक्रम का शुभारम्भ माँ सरस्वती एवं गुरु पंडित मणि प्रसाद जी के चित्र पर मुख्य अतिथि डुमरांव घराने के ध्रुपद गायक पंडित रामजी मिश्रा एवं महामहिम राष्ट्रपति के गृह नगर, मयूरभंज, उड़ीसा से पधारे श्री जग बंधु प्रसाद द्वारा माल्यार्पण से हुआ। इसके अतिरिक्त उपस्थित सभी श्रोताओं एवं गुणीजनों ने गुरु पंडित मणि प्रसाद जी को पुष्पांजलि प्रदान की।

कार्यक्रम की पहली प्रस्तुति थी श्री शांकुमय देवनाथ का

शास्त्रीय। शांकुमय देवनाथ ने राग भटियार की सुन्दर अवतारणा करते हुये एकताल में निबद्ध बड़ा ख्याल 'उचट गई मोरी नींद', तीनताल में निबद्ध द्रुत ख्याल 'पिया मिलन के काज', एकताल में निबद्ध तराना प्रस्तुत किया। आपने अपनी प्रस्तुति का समापन राग भैरवी की सुप्रसिद्ध ठुमरी 'रस के भरे तोरे नैन' से किया। आपका अद्भुत स्वर लगाव, राग की विधिवत बढ़त, बंदिश की कहन, सुन्दर बोल बनाव तथा तानों की तैयारी सराहनीय थी। आपके साथ तबले पर श्री प्रभाकर कुमार पाण्डेय एवं पंडित देवेंद्र वर्मा ने कुशल संगत संगत करके प्रस्तुति को विशेष रंग प्रदान किया। गायन प्रस्तुति लाजवाब थी।

दूसरी प्रस्तुति थी जाने माने पखावज वादक पंडित हरीशचंद्र

पति एवं उनके सुपुत्र श्री आदिनारायण पति का युगल पखावज वादन। आप दोनों ने चारताल में छंद प्रबन्ध पद्धति के अनुरुप सर्वप्रथम गणेश स्तुति, विविध शिव स्तुतियाँ, बारह हजारी परन, विविध चक्करदार, फरमाइशी परन एवं अनेकानेक प्रकार की अन्य रचनायें भी प्रस्तुत कीं। आपकी प्रस्तुति में छंद प्रबंध परम्परा का निर्वहन आद्योपान्त दिखाई दिया। प्रस्तुति सराहनीय रही। आपके साथ हारमोनियम पर पं.देवेंद्र वर्मा ने कुशल संगत की। कार्यक्रम का कुशल संचालन भी पं.देवेंद्र वर्मा ने कुशलता से किया। कलाकारों का स्वागत श्री मोनीदीप मित्रा, पं.ज्ञानेंद्र शर्मा, पंडित हरिओम शर्मा, श्री राजेश नेगी आदि ने की। कार्यक्रम श्री बालकृष्ण अरोड़ा, श्री राजेश सिंह नेगी, श्री गणेश कुमार, श्री अमृतेश शांडिल्य, श्री प्रसेनजित अधिकारी, डा. रवि पाल, श्री अवध कुमार मौर्य आदि कलाकारों की उपस्थिति ने कार्यक्रम को गरिमा प्रदान की। अंत में श्री मोनीदीप मित्रा ने सभी आगंतुकों का आभार व्यक्त किया।

उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी की नृत्य संगीत प्रतियोगिता धूमधाम से संपन्न

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,लखनऊ द्वारा प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी प्रख्यात् संगीत संस्थान डॉ. राजेंद्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय,मथुरा के सहयोग से श्रीकृष्ण गौशाला,हाथरस के सभागार में आयोजित शास्त्रीय संगीत गायन, वादन एवं नृत्य प्रतियोगिता में प्रदेश के बाल,किशोर एवं युवा कला साधकों ने एक से एक अनूठी प्रस्तुतियां देकर उपस्थित दर्शकों की भरपूर तालियां बटोरीं। इस बेहद कठिन प्रतियोगिता में मथुरा, वृंदावन, अलीगढ़, गाजियाबाद, कासगंज, मैनपुरी आदि जनपदों के भाग्यशाली विजयी 17 प्रतिभागियों में से 5 ने प्रथम, 8 ने द्वितीय और 4 ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। परिणाम की घोषणा करते हुए संयोजक डॉ.राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल ने बताया कि प्रथम स्थान प्राप्त पांचों विजेता प्रतिभागी फाइनल मुकाबले के लिए अब लखनऊ सरकारी खर्चे पर भेजे जाएंगे। सभी विजेताओं को प्रमाण पत्र प्रदान किए गए।

प्रतियोगिता प्रारंभ होने से पूर्व लखनऊ से पधारी संगीत सर्वेक्षक रेनू श्रीवास्तव, संयोजक डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल, निर्णायक मंडल के सदस्य डॉ. निशा रावत और सर्वेश्वरशरण सहित शिप्रा गर्ग और बॉबी भाई आदि द्वारा सामूहिक रूप से दीप प्रज्ज्वलन कर विधिवत् उद्घाटन किया गया। लखनऊ से पधारे महानुभावों,

अतिथियों एवं निर्णायक मंडल का शॉल,पटुका एवं मोतीमाल्य आदि पहनाकर स्वागत किया गया। श्रीकृष्ण गौशाला की ओर से उपस्थित सभी जन के लिए प्रात: बालभोग एवं मध्याह्न प्रसाद की व्यवस्था की गई।

विजेता प्रतिभागी इस प्रकार रहे –

प्रथम स्थान : सुरम्य नारायण मैनपुरी किशोर वर्ग गायन, सुहानी मिश्रा कासगंज युवा वर्ग गायन, परम सारस्वत मथुरा बाल वर्ग तबला, सृष्टि कौशिक मथुरा किशोर वर्ग तबला, प्राची गोस्वामी अलीगढ़ युवा वर्ग तबला

द्वितीय स्थान : कृष्णप्रिया व राधिका वृंदावन बाल वर्ग गायन, हिमालय गौतम, मथुरा किशोर वर्ग ध्रुपद गायन, श्रुतिका वृंदावन युवा वर्ग गायन, कृष्णा द्विवेदी वृंदावन बाल वर्ग तबला, सोनल मिश्रा कासगंज किशोर वर्ग तबला, अन्वी अग्रवाल अलीगढ़ बाल वर्ग कथक नृत्य, नित्या भारद्वाज मथुरा किशोर वर्ग कथक नृत्य

तृतीय स्थान : संगीता वृंदावन युवा वर्ग गायन, निखिल शर्मा वृंदावन किशोर वर्ग तबला, अर्शिया जैन गाजियाबाद बाल वर्ग कथक नृत्य, तनिष्ठा सिंह अलीगढ़ बाल वर्ग कथक नृत्य।

समवेत

लोकार्पण

काव्य पुस्तक ''सूर्यांश का प्रयाण'' का लोकार्पण

मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने मध्य प्रदेश गान के रचयिता प्रख्यात पत्रकार एवं साहित्यकार श्री महेश श्रीवास्तव की काव्य पुस्तक ''सूर्यांश का प्रयाण'' का मुख्यमंत्री निवास स्थित समत्व भवन में लोकार्पण किया।

यह रचना महाभारत के विलक्षण पात्र कर्ण की देह के अंत और आत्मा के अनंत में विलय के संधिस्थल पर उसके अवचेतन में बनी अद्भुत जीवन की मार्मिक छवियों की अभिव्यक्ति है, जिनके माध्यम से आज का मनुष्य सत मे रत और असत से विरत रहने की प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

सौभाग्य और दुर्भाग्य, स्वार्थ और त्याग, वरदान और शाप, पुण्य और पाप के द्वंद्व झेलने वाला कर्ण का जीवन किसी भी मनुष्य का जीवन हो सकता है। अंतिम समय में अपनी दिव्यता में दीनता को पहचान कर निष्काम कर्मयोगी कृष्ण के प्रति समर्पित होने की छवियां हर मनुष्य को अपनी दिव्यता पहचान कर निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देती हैं।

कैलाश घनश्याम पाण्डेय द्वारा ''दिव्य दशपुर'' पुस्तक राज्यपाल मंगुभाई पटेल जी को भेंट

दिनांक 18, जनवरी, 2023 को मध्यप्रदेश के राज्यपाल महामहिम मंगुभाई पटेल साहब के करकमलों में अपनी पुस्तक ''दिव्य दशपुर'' भेंट करने का अवसर श्री कुशाभाऊ ठाकरे प्रेक्षागृह, मन्दसौर में क्षेत्र के लोकप्रिय विधायक माननीय श्री यशपाल सिंह सिसौदिया, श्रेष्ठ सांसद श्री सुधीर गुप्ता, श्रीमती रमादेवी बंसीलाल गुर्जर (नगर पालिकाध्यक्ष, मन्दसौर), श्री नरेश चन्दवानी (अध्यक्ष, जनभागीदारी, राजीवगांधी महाविद्यालय), माननीय श्री गौतमसिंह (कलेक्टर) व डॉ. श्री जे.के.जैन (प्रभारी-योजना समिति) की उपस्थिति में किया।

बसंत

फीकी लागैं सबहिं रितु,
बिनु रितुराज बसंत।
सरसों से फूले फिरें,
आवत रितु रसवंत।।
आवत रितु रसवंत,
कवी चौपाल जमावें।
हँसें ठहाके मार
चक्क श्रृंगार सुनावें।।
गायन, वादन, नृत्य
संग ठुमकें - ठुमकावें।
बिनु बसंत सब रंग
'रजक' बस फीके लागें।।

- डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

श्री राजेन्द्र गट्टानी की कृति 'एक पाव सच' का लोकार्पण

मानव मूल्यों पर आधारित हैं श्री गट्टानी के व्यंग्य: डॉ. विकास दवे

हमारे समाज के सक्रिय सदस्य वरिष्ठ व्यंग्य कवि श्री राजेन्द्र गट्टानी जी की व्यंग्य कविताओं के संग्रह ''एक पाव सच'' का गत 26 दिसंबर को दुष्यंत संग्रहालय भोपाल में लोकर्पण संपन्न हुआ ।

मध्यप्रदेश लेखक संघ के अध्यक्ष डॉ. रामवल्लभ आचार्य की अध्यक्षता, साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ.विकास दवे के मुख्य आतिथ्य, ख्यातिलब्ध व्यंग्य कवि श्री गोविन्द राठी एवं लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी के प्रमुख अभियंता श्री के के सोनगरिया के विशेष आतिथ्य में कवि श्री गोकुल सोनी ने कृति समीक्षा की और संचालन किया श्री धर्मेन्द्र सोलंकी ने ।

इस अवसर पर अपने उद्बोधन में डॉ रामवल्लभ आचार्य में हिन्दी और संस्कृत साहित्य में व्यंग्य को उद्धृत करते हुए श्री गट्टानी को कबीर की परंपरा का कवि बताया। मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग अंतर्गत साहित्य अकादमी के निदेशक डा. विकास दवे ने कहा कि केवल विसंगतियों और विद्रूपताओं पर कटाक्ष कर देने से व्यंग्य की पूर्णता नहीं होती, व्यंग्य में मानवीय मूल्यों को भी इंगित किया जाना चाहिए जो गट्टानी जी की प्राय: हर रचना में विद्यमान है। विशिष्ट अतिथि कवि गोविन्द राठी ने अपने चुटीले अंदाज़ में व्यंग्य की व्याख्या की, आज की मंचीय स्थिति पर दु:ख भी व्यक्त किया और अपनी एक सार्थक व्यंग्य रचना भी सुनाई। श्री सोनगरिया ने गट्टानी जी से अपनी गहरी मित्रता का उल्लेख करते हुए कहा कि मुझे तो इनकी भाषा शैली में ही हास्य व्यंग्य का आभास होता है। कृति समीक्षक गोकुल सोनी ने कहा कि श्री गट्टानी की रचनाएँ जहां हंसाती, गुदगुदाती हैं वहीं आत्मचिंतन को भी प्रेरित करती हैं। इस अवसर पर कृतिकार श्री राजेन्द्र गट्टानी जी ने लोकार्पित काव्य संग्रह से कुछ चुनिंदा हास्य व्यंग्य रचनाओं को सुनाकर खूब तालियां बटोरीं ।उनकी शीर्षक रचना ''एक पाव सच'' के अंश–

किसी शव यात्रा में राम नाम सत्य करने के लिए
एक पाव सच ले गया था
और उसमें से भी बचाकर वापस दे गया था
तुम ही रख लो, हम इसका क्या करेंगे
फिर ले जाएंगे जब कोई और मरेंगे

इस अंश ने तो सच की स्थिति को बयान करते हुए ऐसा झकझोरा कि पूरा सभागार वाह करते हुए तालियों से गूंज उठा।

भालू मोंढे द्वारा कला समय के अक्षर ब्रह्म विशेषांक का लोकार्पण

13 जनवरी से 15 जनवरी 2023 के बीच भारत भवन, भोपाल में हुए लिटरेचर फेस्टिवल में भालू मोंढे पद्मश्री से सम्मानित वरीष्ठ छायाकार के द्वारा उनकी प्रदर्शनी के मध्य कला समय के 'अक्षर ब्रह्म' विशेषांक का लोकार्पण पत्रिका के संपादक भँवरलाल श्रीवास द्वारा कराया गया।

रोहमिश संगीत संध्या सम्पन्न

दिनांक 4-1-2023 को राज्य संग्रहालय, भोपाल के सभागार में 'रोहमिश संगीत संध्या' कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का आरंभ दीप प्रज्ज्वलन एवं सुश्री साधना व्यास द्वारा गायक के परिचय वाचन के साथ हुआ। रोहमिश ने अपनी गायकी से नगर के संगीत प्रेमी श्रोताओं को दो घंटों तक मंत्रमग्ध रखा। पहले उन्होंने 'कल चौदहवीं की रात थी' ग़जल सुनाई फिर 'हमको किसके गम ने मारा', ''बात निकलेगी तो फिर दूर तलक जाएगी, 'रफ्ता रफ़्ता वो मेरी उल्फ़त का सामां हो गए' आदि लोकप्रिय गजलें गाईं। उन्होंने स्वयं द्वारा स्वरबद्ध स्व विश्वजीत तुलजापुर की मधुर गजल 'लाख शिकवे न साथ लाते आप' से श्रोताओं का मन मोह लिया। गजलों के अतिरिक्त कश्मीरी और पंजाबी लोकगीत तथा सूफ़ी कलाम भी पेश किये। श्रोताओं ने इन प्रस्तुतियों पर बार-बार तालियाँ बजा कर अभिनंदन किया। कार्यक्रम की अंतिम प्रस्तुति एक पंजाबी गीत 'तेरे इश्क नचाया' अत्यंत सशक्त रही। श्रोता इस गीत पर झूम उठे। कार्यक्रम का संचालन शायर ज़नाब शहाब अख़्तर

ने किया। रोहमिश मूल रूप से कश्मीर से हैं। उनका वास्तविक नाम अमित शर्मा है। उनका परिवार गत बारह वर्षों से कोलंबस (इंडियाना), अमेरिका में बसा हुआ है। सूचना प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत रोहमिश गायक, गीतकार व संगीतकार हैं। वे संगीत की विभिन्न शैलियों में हिंदी, पंजाबी, कश्मीरी, मराठी, तमिल, मलयालम, बंगाली आदि अनेक भाषाओं में गा चुके हैं।

भारतीय संस्कृति में पशु पक्षियों के प्रति दया रखने का संदेश: डॉ. व्यास

भारतीय संस्कृति में वन्य प्राणियों और पशु पक्षियों के संरक्षण पर विशेष महत्व दिया गया है। हमारे देवी देवताओं के वाहन के रूप में पशु पक्षियों को जोड़कर ऋषियों ने मनुष्य को पशु पक्षियों के प्रति दया भाव रखने और आदर करने का संदेश दिया है।

अर्चना प्रकाशन न्यास द्वारा संपन्न संगोष्ठी में विख्यात पुरातत्वविद डॉ. नारायण व्यास ने अपने उद्बोधन में यह बात कही। मुख्य अतिथि के रुप में बोलते हुए व्यास ने प्रकृति के पंच तत्वों पर प्रकाश डालते हुए प्रकृति से जुड़कर जीवन शैली अपनाने पर जोर दिया। वरिष्ठ साहित्यकार भंवरलाल श्रीवास ने विशिष्ट अतिथि के रूप में कहा कि वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण बढ़ने से मनुष्य सहित सभी पशु पक्षियों के जीवन पर संकट बढ़ा है। यह चिंता का विषय है। प्रकृति के जैविक और अजैविक सभी घटकों के साथ संतुलन बनाकर चलेंगे तो ही जीवन बचेगा।

पर्यावरण और जैव विविधता पुस्तक के लेखक एवं पर्यावरणविद् श्रीराम माहेश्वरी ने अतिथियों का स्वागत किया और पुस्तक का परिचय दिया। बाल कल्याण एवं बाल साहित्य शोध केंद्र टीटी नगर में संपन्न पुस्तक परिचर्चा में वरिष्ठ साहित्यकारों और पत्रकारों ने पुस्तक पर समीक्षात्मक विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर मुख्य अतिथि एवं वरिष्ठ पत्रकार पंकज पाठक ने कहा कि पर्यावरणीय समस्याओं से आज समूचा विश्व चिंतित है। प्रदूषण बढ़ने और अन्य कारणों से पशु पक्षियों की अनेक प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और कई प्रजातियां संकट में है। नागरिकों का नैतिक कर्तव्य है कि इनके संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाए। उन्होंने वन कटाई और शिकार रोकने पर जोर देते हुए जन जागरूकता लाने की अपील की। वरिष्ठ पत्रकार एवं विशेष अतिथि अनीता चौबे ने कहा कि बरगद, पीपल, नीम जैसे वृक्षों का रोपण करना चाहिए। श्रीराम माहेश्वरी ने संचालन किया। महेश सक्सेना ने अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

संस्मरण

आधुनिक नाट्य कला के कर्मयोगी : हबीब तनवीर

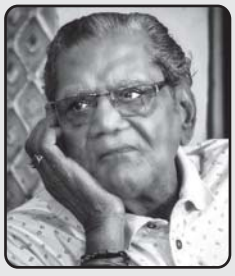

जगदीश कौशल

हबीब तनवीर एक ऐसे रंगकर्मी का नाम है जो बुद्धिजीवी वर्ग में जितना स्वीकार्य है, उतना ही आम लोगों में भी लोकप्रिय है। एक ऐसा रंगकर्मी जो भारत में नाट्य कला माध्यम की पहचान बन गया।

मेरी उनसे पहली मुलाकात वर्ष 1968 में उनके रीवा प्रवास के समय हुई थी। वह अपनी नाटक मंडली के साथ अपने विश्व प्रसिद्ध नाटक ''आगरा बाजार'' के प्रदर्शन के लिए रीवा आए थे। कृषि महाविद्यालय रीवा के ऑडिटोरियम में उनका यह नाटक प्रस्तुत किया गया था। इसी अवसर पर मुझे उनके साथ तथा उनकी बेटी नगीन के फोटो क्लिक करने और साक्षात्कार लेने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होंने बताया था कि उनकी रंगकर्मी की यात्रा 1948 में मुंबई में ''इप्टा'' इंडियन थियेटर एसोसिएशन के साथ सक्रिय जुड़ाव के साथ हुई। उस समय एक नाटक के रिहर्सल के दौरान हुए एक दिलचस्प वाक्या सुनाते हुए उन्होंने बताया था कि मैं एक डायलॉग को सही नहीं बोल पा रहा था। तब कई बार की कोशिश के बाद बलराज साहनी साहब ने मेरे गाल पर एक जोरदार तमाचा जड़ दिया था। इसके बाद मैंने एक बार में हुआ डायलॉग सही-सही बोल दिया था। तब साहनी साहब ने कहा था कि थियेटर में एक जरूरी चीज होती है ''मसल मेमोरी'' यह जो थप्पड़ तुम्हें पड़ा है यही ''मसल मेमोरी'' है जिससे तुम्हें एक बार में ही डायलॉग याद हो गया, मैं इसलिए बलराज साहनी साहब को अपना गुरु मानता हूँ।

उन्होंने आगे बताया कि वह 1954 में मुंबई से दिल्ली आ गए। यहां वह हिंदुस्तानी थियेटर क्षेत्र से जुड़ गए। यहीं उन्होंने अभिनेत्री मोनिका मिश्रा से शादी की और उसी साल अपना बहुचर्चित नाटक ''आगरा बाजार'' लिखा। हबीब तनवीर साहब 1958 में छः छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों को दिल्ली ले आए थे। जिन्होंने ''आगरा बाजार'' नाटक में काम किया था। यह पहली बार था जब छत्तीसगढ़ के लोक कलाकारों को दिल्ली के शहरी स्टेज पर प्रस्तुत किया गया था। हबीब तनवीर साहब एक कर्मयोगी की तरह नाटकों पर काम करते थे। नाटकों पर काम करते समय वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें भूख प्यास का होश नहीं रहता था। ऐसा लगता था जैसे कोई तपस्वी साधना कर रहा है। काम के समय वह पूरी तरह से प्रोफेशनल रहेते थे। उनमें एकाग्रता की विशेषता थी, वह छोटी-छोटी चीजों पर विशेष ध्यान देते थे और यही उनकी सफलता का रहस्य था।

हबीब तनवीर का थियेटर आम जनता का था। उनके लिए नाटक मात्र मनोरंजन के साधन नहीं थे। वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चेतना का आईना दिखाते थे। उनका उद्देश्य था कि दर्शक ही तय करें कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। उनका काम करने का तरीका बहुत ही अलग था। उनके नाटकों में ज्यादा बड़ा सेट नहीं दिखता था। प्रकाश, वेशभूषा और मेकअप आदि पर ज्यादा खर्च करना उन्हें पसंद नहीं था। वह कहते थे कि ''नाटक कम लागत में होना चाहिए।''

भारत सरकार ने हबीब तनवीर साहब को अपने दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान ''पद्म भूषण'' और फ्रांस सरकार ने अपने प्रतिष्ठित सम्मान ''ऑफिसर ऑफ द ऑर्डर ऑफ आर्ट्स एंड लेटर्स'' से सम्मानित किया था। इसके अलावा उन्हें 'कालिदास राष्ट्रीय सम्मान', संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं नेशनल रिसर्च प्रोफेसरशिप से नवाजा गया था।

- ई-3/20, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मो.-9425393429

■

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

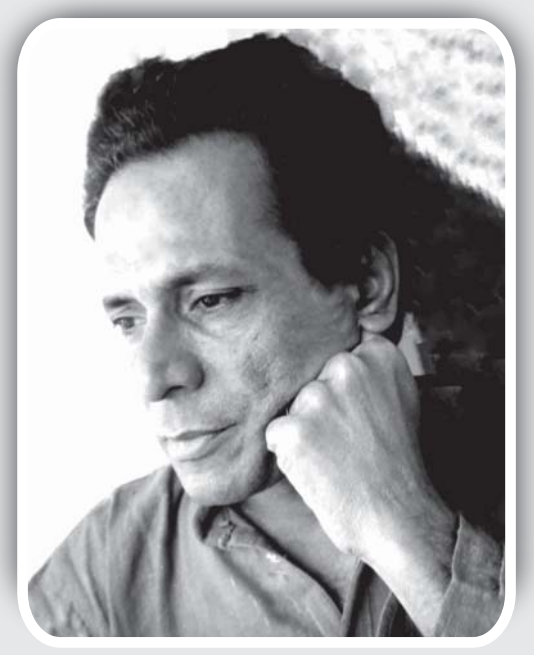

हबीब तनवीर

जन्म: 1 सितम्बर 1923 **निधन: 8 जून 2009**

सुविख्यात लेखक, नाट्य निदेशक, कवि और अभिनेता श्री हबीब तनवीर जी का जन्म 01 सितम्बर 1923 को रायपुर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा रायपुर से प्राप्त करने के बाद आपने मोरिस कॉलेज, नागपुर से बी.ए. और एम.ए. अलीगढ़ से किया। विद्यार्थी जीवन में ही आपने 'तनवीर' उपनाम से कविताएँ, नाटक लिखना और नाटकों में अभिनय और निर्देशन करना प्रारम्भ कर दिया था। 1945 में वह मुम्बई गए, वहाँ ऑल इंडिया रेडियो में बतौर निर्माता जुड़ गए। इसी दौरान उन्होंने कुछ फिल्मों में गीत लिखने साथ अभिनय भी किया। यहीं वह प्रगतशील लेखकसंघ और इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन (इप्टा) से जुड़े, 1954 में वह दिल्ली आ गए। जहाँ उन्होंने कुदेसिया जैदी के हिन्दुस्तान थिएटर के साथ काम किया। यहाँ आपने बच्चों के लिए भी कुछ नाटक किए। 1955 में तनवीर साहब इग्लैंण्ड गए, जहाँ उन्होंने रॉयल एकेडमी ऑफ ड्रामेटिक्स आर्ट्स में प्रशिक्षण प्राप्त किया।

अपनी 50 वर्षों की लम्बी रंगयात्रा में हबीब तनवीर जी ने 100 से अधिक नाटकों का मंचन व सृजन किया। उनकी नाट्य प्रस्तुतियों में लोकगीतों, लोकधुनों, लोकसंगीत व नृत्य का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। साठ के दशक में आपने दिल्ली में ''नया थियेटर'' नाट्य संस्था की स्थापना की ''आगरा बाजार'', ''चरणदास चोर'', शतरंज के मोहरे'', ''मिट्टी की गाड़ी'', ''पोंगा पंडित'' आदि नाटक उनके बहुचर्चित हुए हैं, आपने दस से अधिक फिल्मों में अभिनय किया जिनमें ''फुटपाथ'' ''गाँधी'', ''राही'', ''द राइजिंग मंगलपांडे'' प्रमुख हैं। आपको 1969 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 1983 में पद्मश्री, 1990 में कालिदास सम्मान, 1996 में संगीत नाटक अकादमी फेलोशिप, 2002 में '' पद्मभूषण'' से सम्मानित किया गया। इसके अलावा आप 1972 से 1978 तक राज्यसभा के सदस्य भी रहे।

सुप्रसिद्ध श्री हबीब तनवीर जी का यह दुर्लभ फोटो भोपाल के सुप्रसिद्ध वरिष्ठ छायाकार श्री जगदीश कौशल ने वर्ष 1968 में रीवा में क्लिक किया था, जब वह'' आगरा बाजार'' नाटक के प्रदर्शन लिए वहाँ गए थे।

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ●
● नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तो के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि की व्यवस्था है।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा भी उपलब्ध है।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन की व्यवस्था है।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 के अंतर्गत

1 जनवरी, 2023* से सभी पात्र परिवारों को

अब गेहूं और चावल का

निःशुल्क वितरण

पात्रता श्रेणी परिवार	वितरण मात्रा प्रतिमाह
अन्त्योदय अन्न योजना	35 कि.ग्रा. प्रति परिवार
प्राथमिकता	5 कि.ग्रा. प्रति सदस्य

हितग्राही को ध्यान रखने वाली बातें

- पीओएस मशीन पर अंगूठा लगाते समय आपको जारी खाद्यान्न मात्रा की आवाज को ध्यान से सुनें और मिलान करें।
- पीओएस मशीन से निकलने वाली पर्ची (रसीद) प्राप्त करें और उसमें अंकित राशन की मात्रा का मिलान करें।
- राशन की प्रदाय मात्रा का मिलान मोबाइल नंबर पर प्राप्त SMS से करें।
- निःशुल्क खाद्यान्न प्राप्त न होने या सही मात्रा में न मिलने की शिकायत सीएम हेल्पलाइन नंबर 181 पर दर्ज कराएं।

*1 जनवरी से 31 दिसम्बर 2023 तक की अवधि के लिये

खाद्य, नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2023

D-19725/22

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास